Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्ववाणी

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

फ़रवरी १९४२

संस्कृति अङ्क : दूसरा भाग

T
33/2

वार्षिक मूल्य ६) मैनेजर 'विश्ववाणी' इलाहाबाद इस अङ्क का १)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No.

Book No.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'विश्ववाणी' : संस्कृति अङ्क : पहला भाग

हिन्दी के गण्यमान्य विद्वान क्या कहते हैं

विश्ववाणी का संस्कृति अङ्क बहुत अच्छा निकला है। अध्ययन, दृष्टिकोण और सूझ की दृष्टि से सभी सामग्री बहुत अच्छी है—पण्डित माखन लाल चतुर्वेदी।

संस्कृति अङ्क बहुत बढ़िया रहा। ऐसे विशेषाङ्क गुजराती अथवा मराठी या बंगला में शायद ही निकलते होंगे। निस्सन्देह ठोस रचनाओं के ख़याल से 'विश्ववाणी' का स्थान हिन्दी के मासिक साहित्य में सर्वोच्च है—पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी।

विश्ववाणी का विशेषाङ्क बहुत अच्छा निकला। प्रायः सभी लेख मनन करने योग्य हैं। बड़ा आकर्षण है आपकी 'विश्ववाणी' में। संस्कृति पर कई निबन्ध उच्चकोटि के हैं—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

इतनी उच्चकोटि की सामग्री वाला विशेषाङ्क आजतक किसी हिन्दी पत्रिका ने नहीं निकाला—
पण्डित देवीदत्त शुक्ल, सम्पादक 'सरस्वती'

मार्च अङ्क के कुछ लेखों की सूची

१ यूरोप के किसानों की ऐतिहासिक प्रगति—डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त
२ व्यावहारिक संस्कृति—सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर
३ भारत के किसानों की समस्या—सर टी० विजयराघवाचार्य
४ भारत की औद्योगिक उन्नति—सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास
५ वर्त्तमान गुजराती साहित्य—दीवान बहादुर के० एम० झावेरी
६ वर्त्तमान उर्दू साहित्य—सर अब्दुल क़ादिर
७ हिन्दुस्तानी मुहावरे—श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय
८ गुरुदेव—प्रोफ़ैसर तान युन-शान
९ भारतीय व्यवसाय और उद्योग—श्री जमशेद मेहता
१० भारत की औद्योगिक उन्नति की समस्या—आनरेबुल श्री नलिनीरंजन सरकार।

इनके अतिरिक्त श्री महादेवी वर्मा की कविता, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी की कहानी, श्री विष्णु का एकांकी नाटक, तथा अन्य लेख और कहानियां आदि होंगी—

आज ही छै रुपये भेजकर स्थायी ग्राहक श्रेणी में नाम लिखाइये

विश्ववाणी हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्य की निर्मल गङ्गा है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषय-सूची

फ़रवरी १९४२

१—उषा (कविता) अनु०—श्री महादेवी वर्मा ··· ··· १९९
२—संस्कृति तो हो ही नहीं सकती—श्री जार्ज बर्नर्डशा ··· २००
३—विश्वशान्ति के उपासक पर (कविता) श्री केशवप्रसाद पाठक ··· २०४
४—संस्कृति का मूल आधार—श्री अलबर्ट आइनस्टाइन ··· ··· २०५
५—शिल्पी (कहानी)—श्री चिन्ता दीक्षितुल २१०
६—विज्ञान और भारतीय संस्कृति—सर चन्द्रशेखर व्यंकट रमन ··· २१४
७—जीवन का सांस्कृतिक रूप—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ··· ··· २१७
८—अन्धकार में से प्रकाश में (कविता)—श्री सुधीन्द्र ··· ··· २१९
९—चीनी संस्कृति की नव-चेतना—मैडम चियांग काईशेक ··· २२०
१०—मंगरः हलवाहा (रेखा-चित्र)—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ··· ··· २२१
११—मध्यकालीन भारत में हिन्दू-मुसलिम मेलजोल—प्रो० मोहम्मद हबीब ··· २२५
१२—फिर क्यों प्राण उदास आज रे (कविता) श्री सोहनलाल द्विवेदी ··· २३०
१३—जाति उत्थान (एकांकी नाटक)—सेठ गोविन्ददास ··· ··· २३१
१४—विजय-पथ (कविता)—डा० रामकुमार वर्मा ··· ··· २४२
१५—भारतीय संस्कृति की नव-चेतना—सर, पी. एस. शिवस्वामी अय्यर ··· २४३
१६—इस्लाम के सर्वश्रेष्ठ सन्त अब्दुलक़ादिर जीलानी—डा०, एम० हिदायत हुसेन २४६
१७—जीवन (कविता)— श्री रामप्रकाश अग्रवाल ··· ··· २४९
१८—हिन्दू-मुसलिम भ्रातृभाव—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ··· ··· २५०
१९—अडिग (कविता)—श्री 'मनोहर' ··· २५२
२०—हिन्दुस्तान के मुसलमानों का कर्तव्य—सर मिर्ज़ा इस्माइल ··· २५३
२१—सर्व धर्म समभाव—स्वामी दरबारीलाल 'सत्यभक्त' ··· ··· २५५
२२—शंगान (रेखा-चित्र)—श्री कु० प० राजगोपालन ··· ··· २६३
२३—गद्यगीत—कुमारी दिनेशनन्दिनी चोड्या २६६
२४—अन्तर्राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय संस्कृतियां श्री अलबर्ट ग्यूरार्ड ··· २६७
२५—जीवन-तृण (कविता)—श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी ··· ··· २७१
२६—फ़ासिस्ट बनाम साम्यवादी संस्कृति—श्री गोपाल हलदार ··· २७३
२७—हम पीड़ित और शोषित निग्रो और है हमारी भी संस्कृति—कुमारी ज़ोरा नील हर्सटन ··· ··· २७८
२८—दुनिया में अरबों का राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थान—श्री अलबर्ट वाइटन २८४
२९—कंकड़-पत्थर (कविता)—श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' ··· ··· २८८
३०—मानव संस्कृति और सोवियत रूस—प्रो० बुद्धदेव वसु ··· ··· २९०
३१—हिंसात्मक बनाम अहिंसात्मक संस्कृति श्री मेरिक डार्ड ··· ··· २९६
३२—गीत (कविता)—श्री गोपीकृष्ण ··· २९८
३३—सिक्ख साम्राज्य की एक झांकी—सर शफ़ातअहमद ख़ां ··· २९९
३४—बसन्त (कविता)—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ३०१
३५—संसार की नव-व्यवस्था—श्री शङ्कर गणपत राव कोकने ··· ३०२
३६—हिन्दू ला और हमारी सांस्कृतिक प्रगति सर सीताराम पाटकर ··· ३०५
३७—सन्त कवि रविदास के प्रति (कविता)—श्री 'निराला' ··· ··· ३०९
३८—संहार या संस्कार—श्री धूमकेतु ··· ३१०
३९—समालोचना और प्राप्त पुस्तकें ··· ३११
४०—अपनी बात ··· ··· ३१४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

T/33 II

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

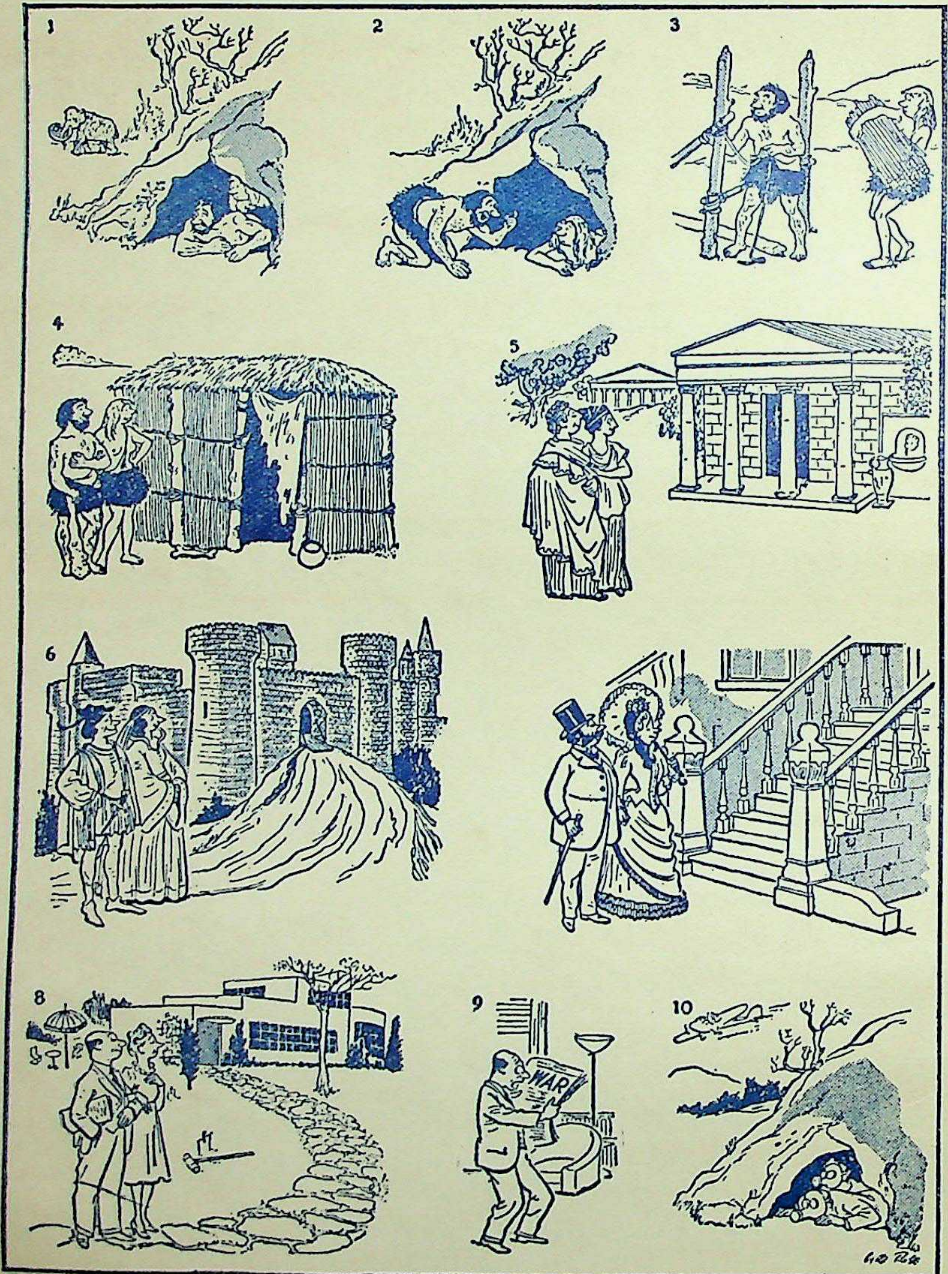

पश्चिमीय संस्कृति के अन्तर्गत मानव-प्रगति

दयारे मग़रिब के रहने वालो, .ख़ुदा की बस्ती दुकां नहीं है,
खरा जिसे तुम समझ रहे हो, वही ज़रे कम अयार होगा।
तुम्हारी तहज़ीब अपने ख़ञ्जर से, आप ही .ख़ुदकुशी करेगी,
जो शाख़े नाज़ुक पे आशियाना बना वो, नापायदार होगा!

—इक़बाल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्ववाणी

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

वर्ष २, भाग ३ | फ़रवरी, १९४२ | अङ्क २, पूरे अङ्क १४

उषा

अनु०—श्री महादेवी वर्मा

दिवजाता, शुभ्राम्बर-विलसित,
नूतन, आभा से उद्भासित,
भू-सुषमा की एक स्वामिनी,
शोभन आलोकित विहान दे !

अरुण किरण के वाजि, चन्द्र-रथ,
ले, करती जो पार क्रान्ति-पथ,
निशि-तम-हारिणि यह विभावरी,
हमें यजन-गौरव महान दे !

सुगम तुझे गति है अचलों पर,
सुतर शान्त लहरों का सागर,
निश्चित क्रम, विस्तृत पथचारिणि,
स्वतः दीप्त तू हमें मान दे !

दिन दिन नव नव छवि में आकर,
गृह गृह में आलोक बिछाकर,
ज्योतिष्मती प्रात की बेला,
ऐश्वर्यों में श्रेष्ठ दान दे !

जन न ठहरते पथ में पग धर,
खग न रुके नीड़ों में पल भर,
जिसका उदय विलोक वही,
अरुणा अब हमको सजग प्राण दे !

जागे द्विपद चतुष्पद आकुल,
दिग्दिगन्तचारी पुलकाकुल,
जिसका आगम देख, उषा वह,
कर्म-पंथ सबको समान दे !

[ऋग्वेद, उषः सूक्तों की कुछ पंक्तियां]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संस्कृति तो हो ही नहीं सकती !

श्री जार्ज बर्नर्ड शा

आज जबकि दुनिया का प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक शासन प्रणाली हिंसा और बर्बरता से जनता के दिलों और दिमाग़ों को दूषित बनाने के अथक प्रयत्न में व्यस्त है, मानव की सांस्कृतिक एकता की बात कहना सुनसान बियाबान में आवाज़ लगाने के समान है।

आज पश्चिमीय और पूर्वीय क्षितिज से एक ही ध्वनि सुनाई पड़ रही है—बदला ! भयङ्कर बदला ! रुधिर ! नदी के प्रवाह की तरह बहता हुआ मानव रुधिर ! शान्ति की बात सुनाने वाले के टुकड़े टुकड़े कर डालो ! उसे आजन्म कारावास में डाल दो ! उसे सूली पर चढ़ा दो !

कितने आश्चर्य की बात है कि घृणा के इस दावानल के बीच में जो एक व्यक्ति मानव स्वभाव की परोपकार वृत्ति पर विश्वास रखता है, वह क़ानून की दृष्टि में एक मुजरिम मात्र है ! वह भयंकर अपराधी है और आज दुनिया के किसी देश में भी जेलख़ाने या सूली के अतिरिक्त उसके लिये कोई जगह नहीं। इनसानी भेड़िये उसी के ख़ून से अपने हिंसात्मक राजपथ की लीक डालना चाहते हैं।

यदि मानव रूपी यह ख़ूंख़ार दानव केवल एक व्यक्ति या एक राजनैतिक गिरोह की आकांक्षाओं का परिणाम है, तो उस समय की भयंकरता की कल्पना कीजिये जब समस्त मानव जाति में ये आकांक्षायें अंकुरित हो उठेंगी।

आज संसार भर में हत्या की भावना सर्वव्यापी दिखाई दे रही है। इस भावना को संगठित रूप में प्रत्येक हुकूमत प्रोत्साहन देती है। जगह जगह अजायब घरों में स्प्रिट में रखे हुए नरकंकाल दिखाई देंगे। पुराने ज़माने के नरभक्षी कापालिक भी इतनी अहतियात से इनसान की खोपड़ियों को सहेज कर न रखते थे। हर अंगरेज़ का हण्टर पर स्वाभाविक विश्वास है। यहूदी क़ानून मानव-भावनाओं का ख़्याल तो रखता था और किसी को ४० से अधिक कोड़ों की सज़ा की अनुमति न देता था। किन्तु १८ वीं और १९ वीं सदी में अंग्रेज़ सैनिकों को एक एक हज़ार बेतों तक की सज़ा दी जाती थी। इङ्गलिस्तान में अब तक स्कूलों, फ़ौजी जेलों, जहाज़ों और घरों में बेतों की सज़ा का रिवाज है। इस सज़ा की भावना ने ही हमारी यह वृत्ति बना दी है कि बल प्रयोग द्वारा दूसरों को डरा कर ही अपनी बात आसानी से मनवाई जा सकती है। इस डर की प्रवृत्ति ने ही हिंसा को आज इतना सर्वव्यापी बना दिया है। देशभक्ति, सार्वजनिक राय, माता पिता के कर्तव्य, अनुशासन, धर्म और नैतिकता डराने धमकाने और हिंसा के ही मधुर और सुन्दर पर्यायवाची नाम हैं। क्रूरता, अतृप्ति और आशंका इस डर को क़ायम रखने में मदद देती हैं।

हम एक बछड़े का गला काटकर उसे उलटा लटका देते हैं कि उसका एक एक बूंद ख़ून निकल जाय ताकि हमारे क़बाबों में सफ़ेदी रहे। हम हज़ारों पक्षियों को महज़ इसलिये नष्ट कर देते हैं कि हमारी स्त्रियाँ उनके पंखों से अपने हैटों को सजा सकें। हम पालतू पशुओं को बड़े चाव से टुकड़े टुकड़े करते हैं और अपनी इस बर्बर वृत्ति से हमें मानसिक आनन्द मिलता है। अपनी विविध बीमारियों के इलाज के लिये हम पशुओं को क्रूर से क्रूर यातनाएं देकर मारते हैं, ताकि उनसे तरह तरह के इंजेक्शन तय्यार कर सकें।

मध्ययुग में अन्य मतावलम्बियों का इन्क्वीज़ीशन के द्वारा अन्त कर दिया जाता था या किसी समय उन्हें ज़िन्दा जला दिया जाता था। किन्तु इस तरह के दण्ड पाने वाले व्यक्ति दयावान और धार्मिक समझे जाते थे और समझे जाते हैं। किन्तु आज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अमरीका में केरोसिन तेल में डुबाकर जिस निग्रो को ज़िन्दा जलाया जाता है; वह बेबस निग्रो नेक व्यक्ति तक नहीं समझा जाता। सभ्य, परोपकारी, उच्चादर्श वाले नागरिकों द्वारा सूली पर चढ़ाया हुआ वह निग्रो केवल अपराधी मात्र है। हमारे नैतिक दानव आज सभ्यता के नाम पर जो कुछ कर रहे हैं उसके मुक़ाबले में सेण्ट बार्थोलोमियो के धार्मिक हत्याकाण्ड हेच हैं। इस समय की परिस्थिति को देखकर यही प्रतीत होता है कि यदि नैतिक दृष्टि से अधिक उन्नत प्राणियों ने हमारी जगह न ली तो संसार ख़ूंख़ार पशुओं के रहने की मांद मात्र रह जायगा।

इसके जवाब में हमसे यह कहा जाता है कि मनुष्य के अन्दर यह जो पशुवृत्ति जाग उठती है यह तो क्षणिक है और युद्ध के समय ही इसका प्रदर्शन होता है; और नैतिक दृष्टि से इस समय का मानव अपने पूर्वजों की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत है।

किन्तु इस तरह की निरन्तर नैतिक उन्नति के दावे को सच्चा साबित करने के लिये ठोस प्रमाण मिलने चाहियें। यदि पड़दादे से पड़पोते तक उन्नति का यह क्रम लगातार चला होता, तो पिछले हज़ार वर्ष में मानवता ने अभूतपूर्व सामाजिक उन्नति की होती। किन्तु कोई भी व्यक्ति अपने इस दावे के समर्थन में ऐसे प्रमाण नहीं पेश कर सकता, जो ज़िरह के सामने ठहर सकें।

यदि हम संसार के प्राचीन निवासियों से अपनी तुलना करें, तो हमें पता चलेगा कि बावजूद इतिहास-कारों के खोजपूर्ण वक्तव्यों के, उस काल से लेकर आज तक, नैतिक दृष्टि से हमने कोई ख़ास उन्नति नहीं की।

व्यक्तियों और कुटुम्बों की तरह राष्ट्रों ने भी उन्नति की है और उसके बाद अवनति के गर्त में गिरे हैं। पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई से निकले हुए हज़ारों वर्ष के प्राचीन घरों में सफ़ाई और स्वच्छता के वही वैज्ञानिक नियम अमल में लाये जाते थे, जो आजकल लाये जाते हैं। हम यह समझते हैं कि मानव जाति ने निरन्तर उन्नति की है और मनुष्य ने अपनी सम्पूर्ण शक्तियां मानव जाति की उन्नति में ही लगाई हैं। यह इत्तफ़ाक़ की ही बात है कि खुदाई से कुम्हार का चक्का, डाट, सेफ़्टी पिन बारूद, चुम्बक आदि वस्तुयें निकल आई हैं और यह हम जान गये हैं कि जिन वैज्ञानिक खोजों पर आज के मनुष्य को नाज़ है, वे वैज्ञानिक खोजें आज से हज़ारों वर्ष पूर्व लोग ईजाद कर चुके थे।

किन्तु क्या कोई व्यक्ति गम्भीरता के साथ इस पर विश्वास कर सकता है कि पाँच हज़ार वर्ष पूर्व रथ के एक सारथी की अपेक्षा आज के हवाई जहाज़ का एक उड़ाका नैतिक दृष्टि से कहीं अधिक उन्नत मानव है? या आज का एक प्रधान मंत्री सीज़र की अपेक्षा कहीं अधिक सुसंस्कृत शासक है: चूंकि वह हवाई जहाज़ और मोटर पर चढ़ता है और टेलीफ़ोन पर बात करता है?

तब फिर यह निरन्तर सांस्कृतिक उन्नति का दावा क्यों किया जाता है? आज का मानव जिस परिस्थिति में है, उसमें उसकी राजनीति, उसका विज्ञान, उसका धर्म, उसकी शिक्षा और उसकी कला उन्नति के मार्ग में उसे एक इञ्च भी आगे नहीं बढ़ा सकते।

यह देख कर ताज्जुब होता है कि संसार के सभ्य राष्ट्र हर तीसरे वर्ष अपने यहां की म्युनिसिपैलिटियों के क़ानूनों को तो दोहराते हैं, किन्तु सामाजिक और धार्मिक विश्वासों को ३०० वर्ष में भी नहीं दोहराते। सड़ी गली वस्तुओं से चिपटे रहने की यह भावना प्रकट करती है कि आज के मानव की नये तरह से निर्माण की ज़रूरत है।

किन्तु यह नव निर्माण किस ढङ्ग का हो? कुछ लोगों का विश्वास है कि प्राचीन कालीन जीवन का तरीक़ा ही अधिक सुखी और अधिक उपयुक्त था। कुछ लोग इसी बात का स्वप्न देखते हैं कि मशीनों को उंगली के इशारे से नचाकर जीवन को और अधिक पेचीदा बनाया जाय। कुछ लोग मशीनों को इसलिये पसन्द करते हैं कि वह हमारी मेहनत को आधा कर देती है। कुछ लोग उसे इसलिये महत्व देते हैं कि वह हर घण्टे देश की दौलत को बढ़ाती है। कुछ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोगों को यदि दो सौ पौण्ड की वार्षिक आय पर सन्तोष है, तो कुछ को ख़र्च के लिये बीस हज़ार पौण्ड वार्षिक चाहिये। कुछ लोग काम के लिये कम से कम समय देना चाहते हैं और अधिकतर समय विज्ञान, कला, अध्यात्म, दर्शन, धर्म, खेल कूद और दूसरे अन्वेषणों के लिये लगाना चाहते हैं। एक बड़ी तादाद है जो किसी तरह के झमेले में नहीं पड़ना चाहती। वह अपनी उन्नति के किसी कार्यक्रम तक को सोचना नहीं चाहती। जन साधारण की यह तादाद चाहती है कि दूसरे ही उसके लिये सोचा करें और उसे बता दिया करें कि उसे कब क्या करना चाहिये। वे निर्विचार जीवन ही बिताना पसन्द करते हैं और यदि उन्हें अपने सम्बन्ध में सोचने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया जावे, तो वे हैरान और परेशान हो जायंगे। जो व्यक्ति अपनी गली के मोड़ से बाहर निकलकर यह जानने तक की तकलीफ़ गवारा नहीं कर सकता कि दुनियाँ गोल है या चपटी, उसके लिये वैज्ञानिक अनुसन्धान का जीवन नर्क साबित होगा। अनेक लोग विभिन्नता में ही सृष्टि की एकता की बात करते हैं किन्तु कुछ लोग ऐसे हैं, जिनका यदि वश चले तो वे सृष्टि को नष्ट ही कर डालें।

मानव जाति की सांस्कृतिक उन्नति के लिये हमें कोई भी एक मध्य बिन्दु मानकर चलना होगा। इस बात पर सभी सहमत होंगे कि अशिक्षा को जड़ से दूर किया जाय और शिक्षा का एक व्यापक मापदण्ड बनाया जाय। किन्तु सब लोग इस पर राज़ी न होंगे कि शिक्षा के मापदण्ड की तरह धर्म का भी ऐसा मापदण्ड बनाया जाय, जो सबको माननीय हो। संसार से धर्म को मिटाने के जितने भी प्रयत्न किये गये, वे सब व्यर्थ साबित हुए। प्रकृति ही शायद इस सम्बन्ध में रीता रीतापन सहन नहीं कर सकती। लेकिन धर्म के मामले में समझौते की भी कोई गुंजाइश नहीं। मिसाल के तौर पर मैं अपनी ही बात कहूं। मैं प्राणियों के क्रमागत विकास पर और समाज वाद के आर्थिक सिद्धान्तों पर विश्वास करता हूँ। मैं इस तरह का भोजन पसन्द नहीं करता, जिसमें मनुष्य, मछली, पक्षी या अन्य पशुओं के मृत शरीर शामिल हों। किन्तु मेरे पड़ोसी को मुझसे मौलिक मतभेद है। उसके अनुसार प्राणियों के क्रमागत विकास पर विश्वास करने वाला प्रत्येक व्यक्ति नरक में जायगा, बच्चे बग़ैर गोमांस के क़बाब के निर्बल होकर मर जायेंगे, और बग़ैर व्यक्तिगत जायदाद के सभ्यता नष्ट हो जायगी। बचपन में अपनी धार्मिक शिक्षा के अनुसार मैं सोचा करता था कि हर रोमन कैथालिक अवश्य दोज़ख़ की आग में जलेगा और स्वर्ग प्रोटेस्टैण्टों के लिये सुरक्षित है। आज मेरा उन भावों पर विश्वास नहीं। किन्तु मेरे इस अविश्वास पर प्रोटेस्टैण्टों को तरस होगा कि मैं निश्चय ही मरने के बाद नरक में जाऊंगा। जिन विश्वासों ने इस तरह की कैफ़ियत पैदा कर रखी है, उनमें जब तक परिवर्तन नहीं होता, तब तक सांस्कृतिक आधार की बात भी नहीं सोची जा सकती। संस्कृति के आधार तो शान्ति और सहनशीलता ही हो सकते हैं।

इस समय भी इङ्गलिस्तान के सबसे ऊंचे धार्मिक व्यक्ति युद्ध को मानव कल्याण के लिये अहितकर और मूर्खतापूर्ण समझते हैं। किन्तु मसीह की तरह उन्हें इस बात की इजाज़त नहीं हो सकती कि वे फ़ौजी दस्तों के पास जाकर बाइबिल का यह वाक्य दोहराएं—"मनुष्य मात्र आपस में भाई हैं फिर एक दूसरे के प्रति अन्याय क्यों करते हो?"

मैं इस बात को मानने के लिये क़तई तय्यार नहीं कि इस युद्ध की ज़िम्मेवारी जर्मनी पर अधिक है, अथवा जर्मनी और जापान की अपेक्षा ब्रिटिश साम्राज्य या अमरीका में नागरिक स्वतन्त्रता कहीं अधिक है। हिन्दुस्तान की ही मिसाल ले लीजिये। शान्तिमय विचारों को व्यक्त करने की भी वहाँ स्वतन्त्रता नहीं। अमरीका में ऐसी सैकड़ों पुस्तकें ज़ब्त हैं, जिन्हें यूरोप की हर ज़बान में लोग ख़रीद सकते हैं।

हिटलर की सफलता का राज़ आसानी से समझा जा सकता है। वारसाई के बाद पराजित, पददलित, अपमानित और लांछित जर्मनी की मानरक्षा के बुलन्द नारे ने ही हिटलर को इतनी ज़बरदस्त शक्ति और

सफलता दी। आज जबकि देशों की सीमाएं टूट रही हैं और सिंहासन पलट रहे हैं शान्ति और सहनशीलता का प्रश्न अत्यधिक महत्व धारण कर लेता है। संसार का त्राण और उद्धार सांस्कृतिक उपायों से ही हो सकता है। नफ़रत की ज्वालामुखी सुलगाकर हम अपने ही चारों ओर नाश की वह फ़सल बो रहे हैं, जिन्हें हमें और हमारे उत्तराधिकारियों को काटना पड़ेगा। अत्याचार की प्रवृत्ति हत्या और रक्तपात को प्रोत्साहन देती है और नर हत्या एक ऐसा भयङ्कर तमाशा है, जो सभ्यता के नियमों के विरुद्ध मनुष्य के अन्दर जंगली और असभ्य भावनाओं को जाग्रत कर देता है।

मध्ययुग के पादरियों का यह विश्वास था कि यदि उन्होंने कोई बेउसूली बात की, तो मरने के बाद उन्हें किसी भयंकर विपत्ति में फंसना पड़ेगा। किन्तु आज भौतिक शिक्षा प्राप्त लोगों के हृदय से यह भय भी निकल गया है। मध्ययुग का पादरी आज के राजनीतिज्ञों की तरह कभी भी आत्माविहीन न था।

दुनिया की प्रगति के इतिहास को देखते हुए हमें यह मानना पड़ेगा कि समाज का संचालन असहनशीलता पर ही क़ायम है। इस लिहाज़ से आज के युग में और मध्ययुग की स्थिति में ज़र्रा भर भी फ़र्क़ नहीं आया। मध्ययुग में हर व्यक्ति को लाज़मी तौर पर बपतिस्मा कराना पड़ता था। आज के युग में हर व्यक्ति को लाज़मी तौर पर टीका लगाना पड़ता है। आज भी लड़ाई के ज़माने में हम बाइबिल का प्रचार बन्द कर देते हैं और सच्चे ईसाइयों को जेलख़ाने के अन्दर बन्द कर देते हैं। युद्धविरोधी बात कहने वाले पत्रों का गला घोंट देते हैं और रात को रोशनी करने वाले को सख़्त सज़ा देते हैं। इनक्वीज़ीशन की प्रथा आज भले ही बन्द हो गई हो; किन्तु उसके दूसरे महाभयंकर पर्यायवाची 'प्युनिटिव एक्सपीडिशन' और 'मार्शल ला' के नाम से जारी हैं।

सांस्कृतिक बुनियादों को पुख़्ता करने के लिये छोटे मोटे सुधारों से काम न चलेगा। जब तक जनता का दिल और दिमाग़ न बदलेगा, बड़े से बड़ा व्यक्ति भी किसी तरह के सांस्कृतिक आन्दोलन को सफल नहीं बना सकता और इस तरह का परिवर्तन तभी हो सकता है, जब जनता अपनी परिस्थिति से ऊपर उठने का फ़ैसला करे। जनता की सुरुचि, मान, न्याय, नैतिकता आदि सभी बातों के मापदण्डों को उन्नत बनाना होगा। लेकिन इसका सब में बड़ा ख़तरा यही है कि जनता ही इस तरह के आन्दोलन की सबमें बड़ी विरोधी होती है। किन्तु जब तक यह आन्दोलन सफल नहीं होता, तब तक इस युग के संचालन के आधार राजनीति और तिजारत भले ही हों संस्कृति तो हो ही नहीं सकती।

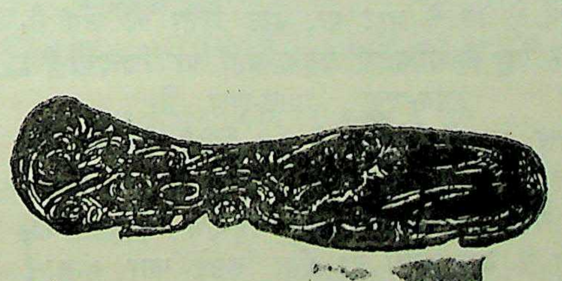

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्व-शान्ति के उपासक पर

श्री केशवप्रसाद पाठक एम. ए

कौन बोला ?
आज संसृति के शिखर से कौन बोला ?
प्रेम, कविता, धर्म, दृढ़ता, ज्योति जड़ता में समेटे;
पश्चिमी, तन्द्रिल तमिस्रा मृत्यु की चादर लपेटे;
सृष्टि को ले सो रही थी;
और मानवता स्वयं जब चेतना-सी खो रही थी;
तिमिर-छलनाएँ छिपाए चिर सजग षड्यन्त्र का क्रम;
हँस सहज फैला रही थीं मधुर सपनों का सरल भ्रम;
पूर्व में पहले प्रहर किसने सुनहला द्वार खोला ?

कौन बोला ?
आज जागृति के शिखर से कौन बोला ?
कौन अपनों को नहीं भाता, किसे प्यारा न अपना ?
हो गया सबसे अधिक प्रिय बन चुका जो एक सपना।
लुट चुका सर्वस्व जिसका;
विश्व की स्वाधीनता पर स्वर रहेगा उच्च किसका ?
सींकचों में पड़ समझता वह कि यह स्वातन्त्र्य क्या है ?
बोल पिञ्जर जड़ बता, होना कभी परतन्त्र क्या है ?
उठ कि बन्दी कीर ने भी चीर तीली उर टटोला।

कौन बोला ?
आज परिणति के शिखर से कौन बोला ?
स्वार्थ के सिक्के जहाँ पर, हाट हिंसा की लगी है;
और पशु की शक्ति की प्रभुता जहाँ पर जिन्दगी है।
हृदय-अणु विज्ञान-क्षण में;
पिघल, घुल हैं नित्य बनते नव विषैले गैस रण में।
यन्त्र में मस्तिष्क ने अपना नया आदर्श खोजा;
हो गई राष्ट्रीयता पर जब मनुजता एक बोझा;
प्राण से मानव-तुला पर बोल किसने प्यार तोला ?
कौन बोला ?
आज उन्नति के शिखर से कौन बोला ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संस्कृति का मूल आधार

श्री अलबर्ट आइन्सटाइन

किसी भी व्यक्ति का सांस्कृतिक महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि उसने अपने 'अहम्' से अपने को कितना बन्धन-मुक्त कर लिया है। दूसरों की कृपा और देन पर ही व्यक्ति का जीवन फूलता फलता है। अपने सम्पूर्ण जीवन को देख जाइये और फिर बताइये कि व्यक्ति दूसरों पर कितना निर्भर रहता है। दूसरे लोग अनाज उगाते हैं और हम उसे खाते हैं। दूसरे लोग कपड़ा बुनते हैं और हम उसे पहनते हैं! दूसरे लोग मकान बनाते हैं और हम उनमें रहते हैं! जीवन के पहले घण्टे से मृत्यु की अन्तिम घड़ी तक हम कितने निर्भर रहते हैं दूसरों पर! और यह कितने भोलेपन और अज्ञान की बात है कि अपनी निर्भरता को हम अभिमान से 'अधिकार' की बात कहते हैं और दूसरे उसे 'शोषण' के नाम से पुकारते हैं। वह व्यक्ति की संस्कृति ही है जो उसकी आत्मा को मांझकर दूसरों के उपकार के एवज़ उसे नम्र और विनत बनाती है। संस्कृति ही आत्मा के बाह्य

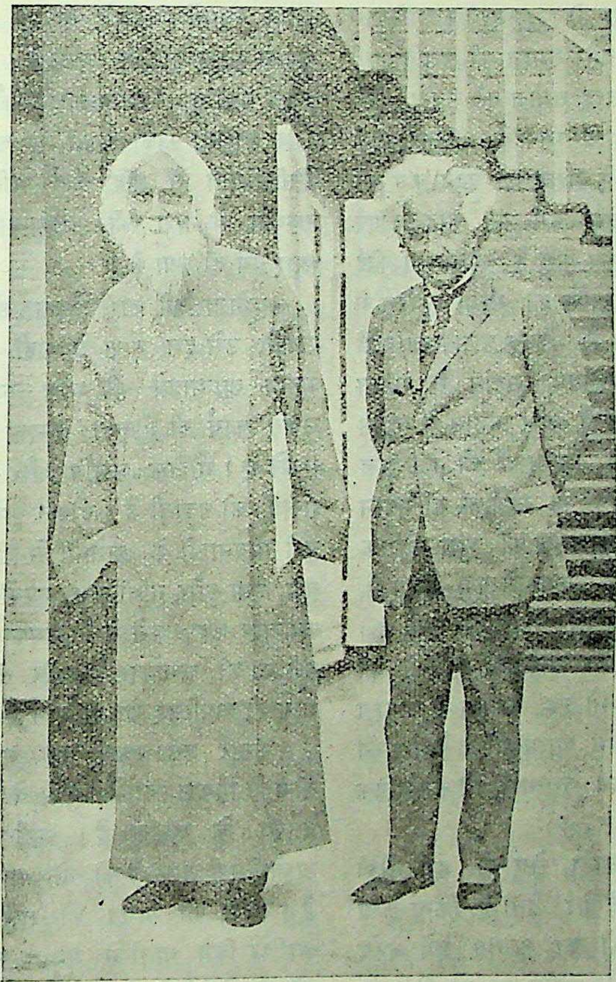

श्री आइन्सटाइन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के साथ
[बर्लिन १९३०]

सौन्दर्य को विकसित करती है। संस्कृति की कमी ही व्यक्ति को कुरूप और विकृत बना देती है। जितना जितना व्यक्ति मन क्रम वचन से दूसरों के प्रति उपकार की भावनाओं और विचारों को प्रधानता देगा, उसी अनुपात से समाज में उसका सांस्कृतिक महत्व बढ़ेगा। दूसरों के प्रति की गई भलाई अथवा बुराई को ध्यान में रखकर ही हम किसी व्यक्ति को भला या बुरा कहते हैं। सामाजिक सद्गुण ही, जिनमें दूसरों के प्रति अपना कर्तव्य पालन या परोपकार की भावना प्रमुख है, व्यक्ति की संस्कृति को प्रौढ़ बनाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि समाज ही प्रमुख है और व्यक्ति का कोई महत्व नहीं। बल्कि यदि ध्यान से देखा जाय, तो समाज में भौतिक, अध्यात्मिक और नैतिक जितनी भी उन्नति हुई है, वह सदियों के दौर में व्यक्तियों की प्रतिभा का ही परिणाम है। आग के इस्तेमाल और खेती के तरीक़े से लेकर स्टीम एञ्जिन और रेडियो के अन्वेषण सब किसी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

न किसी एक व्यक्ति की ही सूझ के परिणाम हैं।

व्यक्ति सोचता है और समाज के लिये नए मापदण्ड बनाता है। वह समाज के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाता है। व्यक्ति के सृजनशील मस्तिष्क और स्वाधीन चेतना के बग़ैर समाज की उन्नति उसी तरह असम्भव है, जिस तरह समाज की उर्वरा भूमि के बग़ैर व्यक्ति की उन्नति असम्भव है। किन्तु हमारी मौजूदा सभ्यता ने व्यक्ति के महत्व को बेहद कम कर दिया है। मौक़े-बे-मौक़े सदा हमें यह याद दिलाई जाती है कि—संस्था ही सब कुछ है व्यक्ति का कोई महत्व नहीं! बड़े से बड़े व्यक्ति को संस्था के हित में बलिदान किया जा सकता है! किन्तु प्रकृति का कोई क्या करे कि महान आत्माएं महान से महान संस्थाओं से भी महान होती हैं और महान से महान संस्थाओं के सांचे भी महान आत्माओं को नहीं ढाल सकते! व्यक्ति अपने आपे को मांझकर ही महान बनता है। लेकिन जब से आजकल की शुद्ध भौतिक सभ्यता ने महत्व पाया है, कम से कम यूरोप में, महान आत्माओं की संख्या भी घटती ही जाती है। बड़े से बड़े कूटनीतिज्ञ और निरंकुश शासकों को पैदा करने में हमारी इस भौतिक सभ्यता ने अवश्य सफलता पाई है, किन्तु महान आत्माओं के पैदा करने में नहीं। गान्धी जैसी महान आत्माएं तो सांस्कृतिक मंथन से ही पैदा होती हैं।

वैज्ञानिक और टेकनिकल क्षेत्र में हमें थोड़ी बहुत विभूतियां अवश्य दिखाई देती हैं, किन्तु कला के क्षेत्र में प्रमुख कलाकारों का अभाव हमें बेहद खटकता है। चित्रकला और संगीत का तो निश्चित रूप से ही पतन हो चुका है। जनता के मन-प्राणों को ऊपर उठाने की शक्ति ही उनकी चली गई है। राजनैतिक क्षेत्र में दूरदर्शी नेताओं का एकदम अभाव है। जनता के अन्दर से भी स्वाधीन भावना और न्याय की धारणा निरन्तर घटती जा रही है। जगह जगह स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन प्रणालियां संसार में इसलिये शक्ति संचय करके महत्वपूर्ण बन सकी हैं, चूंकि जनता के अन्दर से व्यक्ति के महत्व की भावना बेहद घट गई। भेड़ जैसी जनता को १५ दिन के अन्दर अख़बारों के ज़रिये इतना उत्तेजित किया जा सकता है कि वह राजनैतिक दलों के तुच्छ स्वार्थों के लिये अपना और दूसरों का ख़ून बहाने को तय्यार हो सकती है। व्यक्तिगत पतन की इससे बड़ी दूसरी मिसाल और कौन हो सकती है कि लोग लाज़मी फ़ौजी शिक्षा के आगे सर झुकाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई भविष्यवक्ता हमारी इस सभ्यता के नाश की भविष्यवाणी करे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

दुनिया की सारी दौलत और उसकी भौतिक उन्नति उसे इस नाश से नहीं बचा सकती। केवल महान आत्माओं की भव्य भावनाएं और उनके उन्नत कार्य ही मौजूदा सभ्यता को नाश से बचा सकते हैं। भौतिक उन्नति और दौलत हमेशा ख़ुदग़रज़ी को बढ़ाती हैं। दौलत वाले हमेशा अपनी ही बुरी भावनाओं के आसानी से शिकार हो जाते हैं। बुद्ध, ईसा और गांधी क्या रुपयों की थैलियों से यह चमत्कार कर सकते थे? उनका चमत्कार तो आत्मबल का ही चमत्कार है और संसार के कल्याण का मार्ग तो अपरिग्रह का ही मार्ग है।

संसार इस समय एक भयंकर प्रसव-वेदना के बीच से निकल रहा है। इसी वेदना में ही संसार की आशा के लक्षण हैं। यही वेदना मनुष्य को अध्यात्मिक आधारों की ओर आने को विवश करती है। इच्छा ही मानव को सृजनशील बनाती है। आख़िर किन बातों ने मनुष्य को धार्मिक आधार खोजने के लिये विवश किया? प्राचीन काल के असभ्य मानव में आशंका की भावना ने ही धर्म-रुचि पैदा की। भूख का डर, जंगली जानवरों का डर, बीमारी और मौत के डर ने उसमें एक अज्ञात शक्ति की जागरूकता पैदा की। उस समय का मानव प्रकृति के विकास-क्रम से परिचित न था; इसलिये मानव दिमाग़ ने एक ऐसी अज्ञात शक्ति की कल्पना की, जो रहस्य के परदे से इन दुर्घटनाओं का संचालन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करता है। इस अज्ञात शक्ति को ख़ुश करने के लिये उस समय के असभ्य मानव में बलिदान का रिवाज पड़ा। वे समझने लगे कि वह अज्ञात शक्ति जीव और रक्त की तृष्णा रखती है और यदि उसे जीव और रक्त देकर सन्तुष्ट कर दिया जाय, तो दैवी आपदाएं टाली जा सकती हैं। असभ्य मानव का यह धर्म भय का धर्म था। धीरे धीरे पुरोहितों के गिरोहों ने इस 'भय-धर्म' की बुनियादों को एुख़्ता बना दिया। पुरोहित व्यक्ति और अज्ञात शक्ति के बीच में ठेकेदार बन गये। इन्हीं पुरोहितों के हाथों में बाद में शासन-शक्ति भी आ गई। प्राचीन मिस्र, सुमेर और बाबुल की सभ्यताओं को देखकर पता चलता है कि हज़ारों वर्ष तक पुरोहित और राजा के कर्तव्य एक ही व्यक्ति में सीमित रहे। बाद में जब पुरोहित और राजा के पद अलग अलग हो गये, तब भी वे अपने स्वार्थों के लिये मिलकर जनता का शोषण करते रहे।

ज्यों ज्यों मनुष्य सामाजिक उन्नति करता गया, उसने देखा कि माता, पिता, पुरोहित और राजा जैसे उसके मानव हितैच्छु नश्वर देहधारी हैं, और उनसे भयंकर भूलें भी हो सकती हैं। उसने देखा कि उसकी अपनी आत्मा के अन्दर भली और बुरी दोनों भावनाएं मौजूद हैं। उसने इन भलाई और बुराई की प्रेरक शक्तियों की कल्पना करनी शुरू की और इस तरह ईश्वर की नैतिक और सामाजिक धारणा ने जन्म लिया। ईश्वर को विधाता समझा जाने लगा, ऐसा विधाता जो रक्षा करता है, जो सज़ा और जज़ा देता है, जो व्यक्ति और क़बीले और सारे मनुष्य समाज की ही रक्षा करता है, जो हर जीवधारी का पालन करता है, जो दुःख और निराशा में ढाढ़स बंधाता है और जो मृतात्माओं को शान्ति देता है। यह धर्म की सामाजिक और ईश्वर की नैतिक कल्पना है। मानव संस्कृति के विकास की यह दूसरी सीढ़ी है। समस्त सभ्य जातियों और ख़ासकर पूर्वीय जातियों के धर्म विशेष रूप से नैतिक धर्म हैं।

मानव संस्कृति के विकास की तीसरी सीढ़ी है—लौकिक धर्म भावना। इस स्थिति पर पहुंच कर मनुष्य अपने ही नैतिक आचरण को आत्मा की मुक्ति का साधन समझता है। ईश्वर की कल्पना का सहारा भी वह छोड़ देता है। बौद्धमत ने इस धर्म भावना को काफ़ी प्रधानता दी। संसार में प्रत्येक युग के महान धर्मात्मा इसी लौकिक धर्म भावना के मानने वाले हुए हैं, जो धर्म भावना न तो किसी रूढ़ि और कर्मकाण्ड को मानती है, और न मनुष्य के स्वरूप में ईश्वर की कल्पना करती है। सच पूछा जाय तो हर युग के विपथगामियों में ही हमें सर्वोच्च धार्मिक विचार वाले मिलते हैं कि जिन्हें उनके समकालीन लोग नास्तिक कहकर पुकारते हैं।

प्रश्न उठता है कि यह लौकिक धर्म भावना किस प्रकार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाई जा सकती है, जब कि वह ईश्वर का निर्गुण या सगुण कोई रूप नहीं मानती और न किसी धर्म पद्धति को ही स्वीकार करती है? मेरी सम्मति में कला और विज्ञान मनुष्य के अन्दर इस भावना को जगा सकते हैं, और जिनके अन्दर यह भावना जाग गई है, उसे अक्षुण्ण बनाये रख सकते हैं। यही विज्ञान का सबसे बड़ा उद्देश्य है। जब तक विज्ञान मानव आत्मा के इस रहस्य को सुलभ नहीं करता, तब तक उसका उद्देश्य पूरा नहीं होता।

जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से इसे देखते हैं तो यह सत्य सप्रमाण हमारे सामने आ जाता है कि विज्ञान और धर्म में कभी भी समझौता नहीं हुआ। लेकिन जो वैज्ञानिक विश्व के नियंत्रण के सूक्ष्म सिद्धान्तों से भली भांति अवगत हो चुका है, वह एक क्षण के लिये भी इस भावना को स्वीकार नहीं कर सकता कि रहस्य के परदे में कोई एक ऐसी हस्ती है, जो विश्व के नियंत्रण के स्वभाविक सिद्धान्तों में इच्छानुकूल दख़ल देने की क्षमता रखती हो।

इस तरह के वैज्ञानिक धर्म के मानने वाले को न तो भय के धर्म की आवश्यकता रहती है और न नैतिक धर्म की। जो ईश्वर इनाम और सज़ा देता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है ऐसे ईश्वर की कल्पना वह कर ही नहीं सकता। उसके अनुसार मनुष्य के कर्म वाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों से संचालित होते हैं कि जिन पर उसका कोई क़ाबू नहीं होता। जिस तरह रेणु का कोई कण पृथ्वी के अपनी कील पर घूमने में कोई दख़ल नहीं दे सकता, उसी तरह मानव भी अपनी परिस्थितियों के सामने विवश है। अपने इसी विचार के कारण विज्ञान को सदाचार की अवहेला का दोषी ठहराया जाता है। किन्तु यह इलज़ाम सर्वथा असत्य है। मनुष्य के बाह्य आचरण का आधार सामाजिक बन्धन, शिक्षा और सहानुभूति की भावना होनी चाहिये। इसके लिये धार्मिक आधार की आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिये। ऐसे मनुष्य पर हंसी आती है, भय की भावना जिसके आचरण का नियंत्रण करे, या जो मरने के बाद सद्गति के लालच से कोई काम करे। इसी स्पष्ट घोषणा के कारण धर्म का विज्ञान से घोर युद्ध होता रहा और वैज्ञानिकों को अकथनीय अत्याचार सहने पड़े। मेरी यह निश्चित धारणा है कि लौकिक धर्म भावना ने ही वैज्ञानिक अनुसन्धान को बेहद प्रोत्साहन दिया है। केपलर और न्यूटन ने जाने कितने वर्षों तक साधना की होगी, तब कहीं वे अपने अनुसन्धान में सफल हुए। सच पूछा जाय तो आज के इस भौतिक युग में गम्भीर वैज्ञानिक खोजी ही वास्तविक अर्थों में सच्चे धार्मिक मनुष्य हैं। कोई न कोई धर्म भावना प्रत्येक वैज्ञानिक का आधार होती है। किन्तु उसकी धर्म भावना जन सामान्य की धर्म भावना से भिन्न होती है। मानव संस्कृति का लक्ष्य इसी वैज्ञानिक धर्म भावना को जाग्रत करना है।

एक वैज्ञानिक के लिये भविष्य उतना ही महत्व रखता है, जितना कि अतीत। वह सदाचार और नैतिकता के अन्दर कोई धार्मिक भावना नहीं देखता। उसकी नज़रों में नैतिकता ख़ालिस मानव व्यापार है। प्रकृति के भिन्न भिन्न गुणों की समन्वयात्मक एकता को साक्षात करके वह हैरान रह जाता है। प्रकृति की इस एकता के सामने मनुष्य के समस्त विधिवत विचार कितने नगण्य मालूम होते हैं। प्रकृति का यह साक्षात्कार ही वैज्ञानिक का अपना धर्म है। प्रकृति का यह साक्षात्कार ही उसमें बड़ी से बड़ी त्याग की भावना भरता है। संसार के पुनरुत्थान में इसी त्याग की कितनी बड़ी कमी दिखाई दे रही है। यही त्याग व्यक्ति के अन्दर आध्यात्मिक भावना भरेगा। आज मानव जाति की क़िस्मत का फ़ैसला इसी अध्यात्मिक शक्ति पर है। मानव जाति इस शान्त और सुखपूर्ण स्थिति तक पहुँचना चाहती है, तो वह त्याग और नम्रता से ही पहुंच सकती है। यही मानव संस्कृति का मूल आधार है।

आज हम विचारों के चौरस्ते पर खड़े हैं। आज हमें फ़ैसला करना होगा कि हम त्याग का, शान्ति का और संस्कृति का रास्ता पकड़ें या बर्बरता के उसी पुराने रास्ते पर चलते चलें, जो रास्ता हमारी सभ्यता और हमारे लिये अत्यन्त अहितकर है। एक ओर व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समाज का कल्याण है और दूसरी ओर व्यक्ति की ग़ुलामी और सभ्यता की बरबादी है। जो भी रास्ता हम पकड़ेंगे, उसी के अनुसार हमारी क़िस्मत का फ़ैसला होगा।

आज दुनिया के लगभग समस्त राष्ट्र संसार व्यापी युद्ध में लगे हुए हैं। पिछले महायुद्ध के बाद हर राष्ट्र इस दूसरे महायुद्ध की तय्यारी करता रहा है। जब तक थोड़े से राजनीतिज्ञ दुनिया की नीति को संचालित करते रहेंगे, जब तक संकुचित राष्ट्रीय अभिमान की पूजा होती रहेगी, जब तक युद्ध-प्रेमी-भावना को महत्व दिया जाता रहेगा, तब तक हमारे युवकों को युद्ध से आकर्षण रहेगा, और तब तक संसार इन पैशाचिक युद्धों से छुटकारा नहीं पा सकेगा, और तब तक मानव संस्कृति भी अनुन्नत दशा में पड़ी रहेगी। पिछले वर्षों में एक ओर तो हम निःशस्त्रीकरण सम्मेलन करते रहे और दूसरी ओर शान्ति रक्षा के नाम पर अपने हथियारों के कारख़ाने बढ़ाते गये। सच तो यह है पिछले कई वर्षों से संसार के प्रमुख राष्ट्र शान्ति की नहीं बल्कि युद्ध की तय्यारी करते रहे। जनता धीरे धीरे करके शस्त्रों का त्याग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं करेगी। या तो संसार से शस्त्र एक बारगी मिटा दिये जायंगे या फिर बिलकुल ही न मिटेंगे। जो दल युद्ध की मशीन बराबर जारी रखना चाहते हैं, वे बेहद शक्तिशाली हैं। वे सार्वजनिक राय को अपनी ख़ूंख़ार दानवी वृत्तियों के अनुकूल बनाने में कोई कसर बाक़ी न उठा रखेंगे। जन सामान्य ही इस पतित अवस्था से संसार को उबार सकते हैं। जब तक सेनायें क़ायम रहेंगी, तब तक छोटे से छोटा उत्पात भी युद्ध का रूप धारण कर सकता है। इस सम्बन्ध में जब लोगों की आत्माएं जाग जायंगी, तब हम दुनिया की तरक़्क़ी की एक नई मंज़िल पर पहुंच जायंगे। उन्नति के उस शिखर पर पहुंच कर जनता युद्ध को अपने पूर्वजों का एक बर्बर कुकृत्य समझेगी। यह सही है कि इस समय दुनिया में ऐसे लोगों की तादाद बहुत थोड़ी है, जो अपनी आंखों से देखते हैं और अपने दिलों से महसूस करते हैं। किन्तु ऐसे ही व्यक्तियों की शक्ति इस बात का फ़ैसला करेगी कि मानव जाति कब तक उस निराशापूर्ण भयंकर अंधकार में ही पड़ी रहेगी, जिसे अन्धी जनता आज आदर्श समझ रही है।

हमारा आत्म-बल यथेच्छ साबित नहीं हुआ। आज करोड़ों व्यक्ति मौन होकर युद्ध के इस भयंकर तमाशे को देख रहे हैं। जो लोग शान्तिमय उपायों को दुनियाँ के लिये कल्याणकर समझते हैं, वे भी आज हिंसा के साथ समझौते को एक राजनैनिक दूरदर्शिता समझ रहे हैं। किन्तु उनकी दूरदर्शिता मानवता के प्रति किया गया भयंकर अपराध है। चूंकि हम स्वयं मानव हैं, इसलिये मानवता से निराश होने में हमारा कल्याण नहीं। आज भी यह बड़ी आशा की बात है कि गान्धी जैसे व्यक्ति मानवता को ख़ून के दलदल से बाहर निकलने का अथक प्रयत्न कर रहे हैं। मेरा यह विश्वास है कि यदि ५०,००० व्यक्ति एक साथ युद्ध का विरोध करें, तो उनका यह विरोध कारगर साबित होगा।

आप आज संस्कृति की बात कह रहे हैं, किन्तु संस्कृति का पौधा बेहद नाज़ुक होता है। अनेक यत्नों और सावधानियों के बाद ही वह किसी समाज में फूलता फलता है। उसके लिये व्यक्ति का अभिमान, राष्ट्र का अभिमान और क़ौम का अभिमान सबको तिलाँजलि देनी पड़ती है। मानव जाति जिस दिन संस्कृति के महत्व को समझेगी, उसी दिन वह अपनी आत्मा के साथ साक्षात्कार करने के योग्य हो सकेगी। संस्कृति न तो भौगोलिक सीमा बन्धनों को महत्व देती है और न राजनीति को ही। संस्कृति तो अखिल मानवता की सम्मिलित पूंजी है।

पुराने ज़माने में समाज का उपयोगी सदस्य बनने के लिये व्यक्ति को केवल आत्मभिमान ही छोड़ना पड़ता था, किन्तु आज उसे वर्ग और राष्ट्र का अभिमान भी छोड़ना पड़ेगा। इन थोथे अभिमानों को दूर करके ही मानव संस्कृति की ठोस बुनियादें डाली जा सकती हैं और तभी मानवता को उन्नत बनाया जा सकता है। और तभी उसका कल्याण हो सकता है।

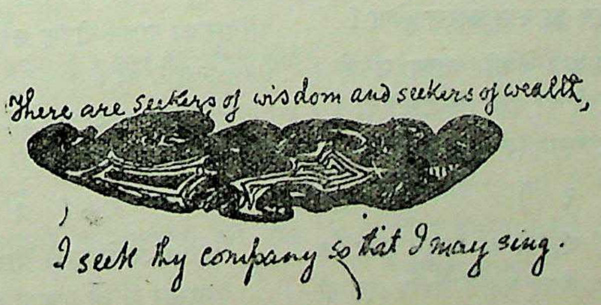

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक प्रसिद्ध तेलगू कहानी

शिल्पी

श्री चिन्ता दीक्षितुल

[अनु०—श्री व्रजनन्दन शर्मा]

(१)

प्रस्तर प्रतिमाओं और दारु-मूर्त्तियों में भगवान का साक्षात्कार करने वाली प्रजा का था वह देश। उसी तरह प्रतिमाओं में भगवत्दंश दीख पड़ने वाला युग भी था।

उस देश के शासक थे एक महाराज। ऐहिक ऐश्वर्य के साथ साथ पारमार्थिक बुद्धि भी जनता में रहे—इसका बहुत ज़्यादा ख़्याल रहता था—उनको। प्रजा भी थी—महाराज की इच्छाओं को सफल बना कर अपने को कृतार्थ मानने वाली।

पुरोहितों का आशीष-बल पाकर महाराज के सत्संकल्प मंत्रियों द्वारा सत्कार्य के रूप में प्रजा को आनन्द देते थे।

एक बार महाराज अपने परिवार और मंत्रियों के साथ सारे राज्य का पर्यटन करने निकले। प्रजा का सुख और आनन्द देखकर उनका हृदय भी पुलकायमान हुआ। लेकिन उनकी समझ में न आया कि राज्य के सारे मन्दिरों में जनता पुरुष-प्रतिमाओं की ही पूजा क्यों कर रही है? उन पुरुष मूर्तियों में अधिकाधिक मूर्तियां सुन्दर ही हैं। मगर सौन्दर्योपासक महाराज की आँखों में एक भी सुन्दर स्त्री-मूर्ति कहीं दिखाई न पड़ी। इस का क्या कारण होगा?

मंत्रियों से पूछा गया। वे भी बतला न सके। मगर गुत्थियों को सुलझाने का काम तो उन्हीं का है। अतः यह भार उन्हीं पर पड़ा।

(२)

पूछ ताछ करने पर मंत्रियों को मालूम हुआ कि उस राज्य में सुन्दर पुरुष-विग्रह बनाने वाला एक ही शिल्पी है। राज्य में जितनी सुन्दर मूर्तियाँ हैं—सब उसी की कारीगरी है।

शिल्पी अपने बड़प्पन से अपरिचित एक झोपड़े में रहता था। राजाज्ञा सुनाई गयी उसे। वह अर्ध-निमीलित नेत्रों से अपने हृदय-पट पर अंकित स्वरूप को पाषण स्तंभ पर उतारने की कोशिश में लगा हुआ था। उसके प्रयत्नों में योगी का ध्यान और भक्त का आवेश भरा था।

पूजा और ध्यान करने लायक मूर्तियां तैयार कर जनता को देना ही उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य था। शैशव से ही वह इसी सिद्धि में लगा है। पिता का अन्तिम उपदेश यही था। युवावस्था में भी उसी धर्म का निर्वाह कर रहा था वह। गुरू की आज्ञा तो यह थी ही।

उसके हाथों बने हुए हनुमान जी जनता की पूजा स्वीकार कर उन्हें वीर्यवान बना रहे थे। उसके ही करों से निर्मित श्री रामचन्द्र जी प्रजा के चढ़ौने और मन्नतें स्वीकार कर अभीष्ट फल दे रहे थे। उसी के परिश्रम के फल श्री कृष्ण भगवान लोगों के स्त्रोत्र सुन कर मुक्ति बाँट रहे थे।

उन देवताओं ने अपने निर्माता को भी संतोष धन प्रचुर मात्रा में दिया था। प्रजा ही शिल्पी के परिवार का पालन पोषण करती थी। उसके लिये यह सब चिन्ता न थी।

राजा की आज्ञा सुन कर शिल्पी राज दरबार में पहुँचा।

(३)

"इस राज्य में तुम्हीं शिल्पी हो?"

"सरकार मैं भी एक हूं।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"उस अग्रहार (ब्राह्मणों को दी हुई जागीर) का शिवलिंग तुम्हारा ही बनाया हुआ है ?"

"हां सरकार ?"

"उस ब्राह्मण टोले की श्री राम मूर्त्ति ?"

"मेरी ही बनायी है।"

"श्रीपरम् के हनुमान ?"

"महाराज मैंने ही...।"

"कलमाडु की श्रीकृष्ण की मूर्ति किसने गढ़ी ?"

"महाराज के दास ने ही"

"और दीपपुर की सूर्य प्रतिमा ?"

"इस सेवक ने ही...।"

"स्त्री-देवता की जो मूर्ति तुमने बनायी हो उसका नाम तो लो।"

"मैं...सरकार...।"

"कौन...बतलाओ।"

"मैंने...स्त्री मूर्ति...महाराज...।"

"बतलाओ"

"मैं स्त्री मूर्त्ति कैसे—"

"नहीं बनायी है ?"

"नहीं सरकार"

"एक भी नहीं ?"

"एक.....,"

"एक बनायी है ? किसकी मूर्त्ति है वह ?"

"सरकार—कहूँ ?"

"हां, कहो।"

"मेरी माता की।"

"तुम्हारी माता की मूर्त्ति, देवता-मूर्त्ति हुई ?"

"प्रजा के लिये नहीं सरकार। सिर्फ़ मेरे लिये...।"

"कहां है वह मूर्त्ति ?"

"मैं उसकी पूजा करता हूँ। प्रजा का उससे कोई सरोकार नहीं हुज़ूर।"

"अपने घर में ही रखकर पूजा करते हो ?"

"जी हां, सरकार।"

"वह मूर्त्ति भी तुम्हारी अन्य मूर्त्तियों की तरह ही है न ?"

"सुन्दरता में तो वह बराबर ही है सरकार। मगर वह मेरे लिये अमूल्य है।"

"क्या जनता को अपनी माताओं की पूजा करने की इच्छा नहीं होगी ?"

"क्यों नहीं होगी महाराज ?"

"उनकी वह अभिलाषा तो तुम्हारे ही द्वारा पूरी हो सकती है ?"

"जी सरकार....."

"तो भविष्य में उनकी अभिलाषा पूरी करोगे न ?"

"स्वामी, वह मुझसे हो सकेगा ?"

"जगज्जननी पार्वती हैं, सरस्वती हैं, लक्ष्मी हैं—जनता को भी अपनी माताओं की पूजा करने का मौक़ा नहीं दोगे ?"

"स्वामी वह मुझसे न हो सकेगा।"

"क्यों नहीं ?"

"उतना सामर्थ्य नहीं है महाराज।"

"पुरुष मूर्त्तियों में सौन्दर्य का चरम उत्कर्ष दिखाने वाले तुम ऐसा कह रहे हो!—क्या यह ईश्वर के प्रति अपराध नहीं है ?"

"जी सरकार"

"अपनी जननी की मूर्त्ति गढ़ने वाले हाथों में जगज्जननी की प्रतिमा गढ़ने की सामर्थ्य भी उपस्थित ही है।"

"जी सरकार।"

"जनता में मातृ-भक्ति बढ़ाने के लिये तीनों माताओं की मूर्त्तियाँ तैयार करो।"

"सरकार, एक विनती।"

"अनन्त काल तक तुम्हारी मूर्त्तियां मुक्ति का मार्ग प्रदर्शन करती रहेंगी।"

"सरकार, एक....."

"एक साल की अवधि"

"सरकार....."

"अब तुम जा सकते हो"

"अच्छा सरकार"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(४)

राजाज्ञा पाकर शिल्पी को राजा की कृपा और धन प्राप्त करने के लिये उस कार्य पर लग ही जाना चाहिये था। बढ़िया से बढ़िया प्रस्तर-खंड और औज़ार जमा करना चाहिये था। भय और भक्ति से काम में जुट जाना चाहिये था।

मगर बराबर शिल्प कार्य में तल्लीन रहने वाला शिल्पी राजाज्ञा पाकर लौटा तो सारा काम-धाम छोड़ कर एकान्त में बैठ गया। दिन बीतने लगे। एक महीना बीता, दूसरा महीना बीता, तीसरा भी बीत गया। वह एकान्तसेवी बना हुआ है। मन को एकाग्र करने में लगा है।

उसके परिवार की चिन्ता राजा को ही है।

महीने बीतते जा रहे हैं—मगर, शिलाखंड जमा करने की उसकी इच्छा ही नहीं हुई। औज़ार वगैरह सुधारने का मन ही नहीं हुआ।

साल पूरा होने पर आया। महाराज ने ही देश देशान्तरों से अच्छे-अच्छे पत्थर मंगाकर भिजवा दिये। कारीगरों से अच्छे अच्छे औज़ार बनवाकर शिल्पी के घर पहुँचाये गये। शिल्पी यह सब देखकर मुसकुराया। साल भर की अवधि पूरी हो गयी। दरबार में हाज़िर होने की आज्ञा मिली पुनः—शिल्पी को।

(५)

"शिल्पी"

"जी, सरकार"

"प्रतिमायें तैयार हुईं ?"

"महाराज एक विनती"

अपनी शक्ति तुमने नहीं पहचानी थी। भला पुरुष प्रतिमायें गढ़ने में निपुण हाथ क्या यहाँ भोथा हो जायगा ? क्या वह शक्ति लुप्त हो जायगी ? मूर्त्तियां अच्छी बनी हैं न ?"

"महाराज, इस सेवक को क्षमा करें।"

"क्षमा क्यों ? तुम्हें पुरस्कृत करने के लिये आज सब तैयारी हो चुकी है।"

"सरकार, मैंने महाराज के प्रति जो अपराध किया है, उसका दण्ड पाने के लिये मैं सिर झुकाये प्रस्तुत हूं।"

"क्यों दण्ड क्यों ?"

"स्वामी, एक विनती।"

"क्या है ?"

"अवधि बीत गयी। मैंने आज्ञा पालन नहीं किया।"

"तो प्रतिमायें तैयार नहीं हुई हैं ?"

"उस काम पर मैं लग ही नहीं सका सरकार"

'मतलब राजाज्ञा का उल्लंघन किया तुमने !"

"जी सरकार"

"तुम्हारे परिवार का पालन मैंने पुण्य के धन से किया है न ?"

"वह मैं जानता हूं सरकार।"

"उसके बदले तुमने राजा को क्या सेवायें दीं ?"

"सरकार, एक विनती।"

"शिल्पकला में निष्णात तुमने अब तक वह कार्य शुरू भी नहीं किया क्यों ?"

"वही सुनाने जा रहा हूं स्वामी।"

"अच्छा"

"तीनों माताओं की प्रतिमायें गढ़ने का हुज़ूर का हुक्म था।"

"हां"

"वे स्त्रियां हैं"

"हूं"

"मैं साधारण पुरुष हूं।"

"हो सकता है"

"इन्द्रियां बलवान होती हैं।"

"हां"

"फिर मेरे समान साधारण पुरुष कल्पना से परे स्त्री देवताओं की प्रतिमायें गढ़ने का साहस कैसे कर सकता है—स्वामी ?"

"तुम्हारी कारीगरी में कोई कमी नहीं है।"

"जी, प्रभु की कृपा से नहीं है।"

"करने की इच्छा और कल्पना भी है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"हां, सरकार"

"फिर ?"

"सरकार; निवेदन करता हूँ । जब तक उन देवताओं पर, पवित्र मातृभाव न उत्पन्न हो जाय, तब तक उनके अंग-प्रत्यंग कैसे गढ़ सकता हूँ ? प्रतिमा कैसे तैयार कर सकता हूँ ? मूर्ति गढ़ते वक्त अगर मेरा मन विफल हो जाय तो फिर नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा न ? जब तक मुझमें वह बल नहीं आ जाय कि उन प्रतिमाओं में भी मैं अपनी माता का रूप देख सकूं—तब तक उन शिलाखंडों को कैसे छुऊँ ? उनके अंग निर्माण करते वक्त मेरे हाथ अगर शिशु-हस्त-वत न हों, तो मैं कैसे गढ़ूं उन्हें ? जब तक वे देवियें मेरी माताएं न बन जायँ; मैं शिशु न बन जाऊँ; तब तक मैं उन्हें छू नहीं सकता। अगर छुऊँ और वह सौन्दर्य देख मेरा मन चंचल हो उठे, तो वह सौन्दर्य ही मुझे बलि स्वरूप ले लेगा। फिर वैसी मूर्तियाँ क्या प्रजा-पूजा के लायक रह जायँगी ?"

"शिल्पी और एक साल की अवधि देता हूँ।"

"जो आज्ञा सरकार"

"अपने कौशल में भक्ति को जोड़ो।"

"जी सरकार"

"प्रजा के साथ मेरा हृदय भी मातृ-पूजा के लिये आतुर हो रहा है।"

"जी सरकार"

(६)

महाराज राज्य के अन्य महत् कार्यों में व्यस्त रहने लगे। मगर शिल्पी सब कुछ छोड़कर उन तीनों माताओं में मन लगाये उनकी दया की प्रतीक्षा कर रहा है। महीनों गुज़र गये। महाराजा की दी हुई अवधि भी बीत गयी। महाराज के यहाँ से बुलाहट नहीं आयी। शिल्पी ख़ुद भी नहीं गया। साल पर साल बीतने लगे। शिल्पी की जवानी ढली। वह बूढ़ा होने लगा। मगर अब वह माताओं के प्रेम का पात्र बनने लगा था।

शरीर में झुर्रियाँ पड़ गयीं। मगर नज़र तेज़ ही रही। हाथों में कंपन नहीं आया। हां, बाह्य-दृष्टि नहीं रही।

एकान्त में बैठ वह वृद्ध शिल्पी औज़ार लेकर उन पत्थरों को गढ़ने लगा। उन माताओं का रूप हृदय में बिठाकर उन्हें उन पाषाण-खंडों पर अवतरित करने लगा। दिन-प्रतिदिन उसका शरीर जर्जर होने लगा। उन प्रतिमाओं का सौन्दर्य विकसित होने लगा। उनमें आत्मा झलकने लगी। प्रजा, पूजा के वास्ते छटपटाने लगी।

बूढ़े शिल्पी में शैशव अंकुरित होकर बढ़ने लगा। होठों में मंद हास आया। हृदय में निर्मलता आयी। हृदयान्तराल में प्रतिष्ठित उन माताओं का रूप इन पाषाण प्रतिमाओं में उतर आया और उन्हीं में निवास करने लगा।

चरों द्वारा महाराज ने सुना कि तीनों मूर्तियाँ तैयार हैं। उन्हें बहुत ख़ुशी हुई। शिल्पी को पुरस्कृत करने के वास्ते बड़े समारोह से उन मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा करने की योजना बनायी गयी।

मगर शिल्पी कहाँ है ?

उसने अपना शरीर, अपनी आत्मा उन माताओं को अर्पित कर दी। मामूली आँखों से न दिखाई पड़ने वाला वह उन मूर्तियों में ही निवास करने लगा है। बड़े समारोह से उन मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा हुई।

पंडितों ने आकर उन मूर्तियों को देखा; उनकी पूजा की। उन्होंने कहा कि उन माताओं ने इन प्रतिमाओं को अपना शास्वत निवास बना लिया है। अतः ये प्रतिमाएं नहीं—वे मातायें ही हैं। महाराज के इच्छानुसार पंडितों ने उसे शास्त्र रचना का साधन बनाया।

तभी शिल्प-कला पैदा हुई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विज्ञान और भारतीय संस्कृति

सर चन्द्रशेखर व्यङ्कट रमन

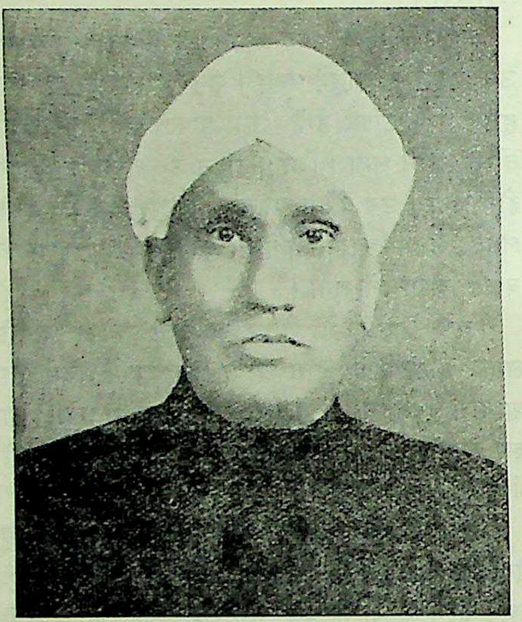

यह मेरा सौभाग्य है कि जीवन में मुझे छै बार सारी दुनिया का भ्रमण करने का अवसर मिला। अपने इस भ्रमण में दुनिया के अनेक योग्य से योग्य वैज्ञानिकों से मेरा सम्पर्क हुआ। मैडम क्यूरी, लार्ड रदरफ़ोर्ड और अनेक महान वैज्ञानिकों से पूरी तरह परिचित होने का मुझे अवसर मिला। इनके व्यक्तिगत जीवन को देखकर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि भारतीय अर्थों में ये लोग सच्चे ऋषि हैं। आर्थिक कठिनाइयों में अनेक वैज्ञानिक ऋषियों का जीवन बीतता है, किन्तु जिस तरह माइकेल एञ्जलो ने कला के क्षेत्र में अपनी बहुमूल्य थाती दुनिया के लिये छोड़ी है, उसी तरह विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया को इन ऋषियों से अमूल्य निधियां प्राप्त हुई हैं। इन वैज्ञानिकों का जीवन हमारी उन्नति का थर्मामीटर है। संसार के ज्ञान के भण्डार को इन्होंने अपनी शक्ति भर बढ़ाया है। महान वैज्ञानिक उसी भावना से काम करता है, जिस भावना से एक महान संगीतज्ञ। उसकी प्रतिध्वनित रागनियां वातावरण में गूंजती हैं, जनता को आनन्दविभोर करती हैं और संगीतज्ञ को भी सुख पहुंचाती हैं।

विज्ञान का उद्देश्य अपने आप में एक अलहदा चीज़ है। लोग किस तरह उसका सदुपयोग या दुरुपयोग करते हैं इसमें विज्ञान का दोष नहीं! समस्त वैज्ञानिक अनुसन्धानों की मौलिक प्रेरणा में प्रकृति का अध्ययन और सत्य की तलाश ही होती है। पिछले बारह वर्षों में अनेक महान वैज्ञानिक अनुसन्धान किये गये हैं। अणु और परिमाणु की रचना के सम्बन्ध में जो वैज्ञानिक खोजें हुई हैं, उनसे मानव ज्ञान की बेहद वृद्धि हुई है। अपने आप में इन खोजों से किसी को कोई नुक़सान नहीं पहुंच सकता; यह दूसरी बात है कि हज़ार व्यक्तियों में कोई बिरला ही इन्हें पूरी तरह समझ पाता है।

वैज्ञानिक खोजों के परिणामों को हमें इस दृष्टि से देखना होगा कि सब मिलाकर उनसे मानव ज्ञान की परिधि कितनी बढ़ी। उनके सर्वाङ्गीण मूल्य पर ही उनकी अच्छाई बुराई निश्चित करनी होगी। इन वैज्ञानिक परिणामों ने हमें नुक़सान पहुँचाया या नहीं अथवा इनका कोई अमली इस्तेमाल सम्भव है या नहीं, इस दृष्टि से इनकी उपयोगिता का फ़ैसला एकांगी होगा। वैज्ञानिक अनुसन्धानों को मानव भावना का उन्नति-चिन्ह समझना चाहिये। यह समझ कर हमें उन पर अभिमान और ख़ुशी होनी चाहिये कि मानव भावना इस सीमा तक सफल हुई। फैराडे, मैडम क्यूरी और रामानुजम जैसे महान वैज्ञानिक बनाए नहीं गये, बल्कि जन्म से ही वैज्ञानिक थे। वैज्ञानिक केवल कर्म की भावना से ही कर्म करते हैं। साधना उनके जीवन का नियंत्रण करती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विज्ञान क्रमानुगत ज्ञान है, किन्तु अकसर दिक़्क़त यह होती है कि वह अपने ही बोझ से नष्ट होने लगता है। आज कल वैज्ञानिक साहित्य की एक बाढ़ सी आगई है। नतीजा यह है कि विज्ञान के बाग़ में जगह जगह जंगली और कटीले पौधे उग आये हैं। कैफ़ियत यह है कि आज इन जंगली और कटीले पौधों की संख्या फूलों से कहीं अधिक है। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि वैज्ञानिकों की एक ऐसी संस्था होनी चाहिये, जो कांटों से फूलों को या भूसे से गेहूं को अलग करे। ज्ञान की सीमाएं अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज को छूती हैं। ज्ञान किसी राष्ट्र विशेष की सम्पत्ति नहीं है। यदि भारतीय राष्ट्र को विज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनने की अभिलाषा है, तो उसे विज्ञान को अपनी संस्कृति के अनुरूप ही बनाना होगा। उसे निर्दयतापूर्वक विज्ञान के क्षेत्र से ऐसे काँटों को उखाड़ कर फेंक देना होगा, जो उसकी महान संस्कृति को ठेस पहुंचाने की क्षमता रखते हों। त्यागवृत्ति वैज्ञानिकों का समूह ही इस काम को कर सकता है। ग्रेट ब्रिटेन की रायल सोसायटी और बर्लिन तथा फ्रान्स की वैज्ञानिक संस्थाओं ने यही किया है और इण्डियन एकेडेमी आफ़ साइन्स को भी यही काम करना है।

एक मौलिक प्रश्न जिसे किसी भी वैज्ञानिक को नज़र अन्दाज नहीं करना चाहिये, वह यह कि विज्ञान का महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू भी है; किन्तु यह एक इतना कठिन और पेचीदा सवाल है कि इस पर बेहद विरोधी और विपरीत रायें हैं। जहाँ तक आर्थिक फ़ायदों का सवाल है विज्ञान से कोई लाभ नहीं। इसलिये कुछ लोगों का विचार है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान में पैसा क्यों ज़ाया किया जाय? उसी पैसे को प्राथमिक शिक्षा के प्रचार में क्यों न ख़र्च किया जाय? किन्तु वैज्ञानिकों का एक दल कहता है कि उनके अनुसन्धान एक दिन सारी रक़म मय सूद के चुका देंगे। देश को विज्ञान के वास्तविक कर्तव्य को समझना चाहिये। उसे विज्ञान की आवश्यकताओं और उसकी मांगों को समझना चाहिये और वैज्ञानिकों से क्या आशा करनी चाहिये यह भी जानना चाहिये। हर व्यक्ति चूंकि समाज में रहता है इसलिये समाज के प्रति उसका कुछ कर्तव्य है। विद्वानों का धर्म है कि वे राष्ट्र निर्माण में मदद दें और जो कुछ उन्हें राष्ट्र से मिलता है, उसे किसी न किसी रूप में चुकता करें। इसे ठीक ठीक समझने के लिये हमें दूसरे देशों की परिस्थिति का अध्ययन करना होगा। नैपोलियन ने 'फ्रेंच एकेडेमी आफ़ साइन्सेज़' को पुनर्जीवित किया था और वैज्ञानिकों से उसने बारूद और लड़ाई की दूसरी वस्तुयें बनाने की बात कही थी। नैपोलियन वैज्ञानिकों के झुण्ड से घिरा रहता था, और ये वैज्ञानिक महज़ सम्राट की आज्ञाओं का पालन ही नहीं कर रहे थे। बल्कि उसी अरसे में उन्हों ने ऐसी अनेक महत्वपूर्ण खोजें कीं, जिनका सम्बन्ध 'सम्राट की कुत्सित आज्ञाओं' से ज़रा भी न था। आज डिक्टेटरों के स्वेच्छा शासन के अन्तर्गत वैज्ञानिकों से नाशकारी अनुसन्धान कराये जा रहे हैं। किन्तु भारत में इस सब की इजाज़त न होगी। भारत शुरू से एक ऐसा राष्ट्र रहा है जहां ज्ञान की आराधना की गई है और ज्ञानी को सदा आदर की दृष्टि से देखा गया है। भारत ने सदा शुद्ध ज्ञान की साधना की है और ज्ञान की उपासना ज्ञान के ख़ातिर ही की है। मेरा पूरा विश्वास है कि यदि हमारे देश के वैज्ञानिकों के साथ सहानुभूति दिखाई जाय, तो वे भारतीय संस्कृति के अनुरूप उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं।

इन बातों के कहने में मेरा यह तात्पर्य नहीं कि वैज्ञानिकों का समाज के प्रति जो कर्तव्य है, उसकी मैं अवहेलना करना चाहता हूं। मेरी राय में ऐसा वैज्ञानिक, जो समाज को भूलकर अपने सुख और संस्कृति का ही ध्यान करता है, इस भारत देश में रहने योग्य तो है ही नहीं। हम वैज्ञानिकों का यह पवित्र कर्तव्य है कि हम अपने इस अभागे देश के करोड़ों नंगे और भूखों के हितों को सर्वोपरि रखें। हमें उनकी भलाई का अपनी शक्ति भर उद्योग करना चाहिये। मेरा विश्वास है कि कर्मचेता ज्ञानी ही समाज की सब में अधिक भलाई कर सकते हैं। वैज्ञानिक द्रष्टा ही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निस्वार्थ भाव से मानवता का कल्याण कर सकते हैं। पास्टर और अन्य महान वैज्ञानिकों ने अपने अनुसन्धानों से मानव जाति की बेहद सेवा की है। उन्होंने अपने आपको मानवता के व्यापक स्वार्थों की ओर लगाया। किन्तु एक बात ध्यान में रखनी चाहिये। एक सच्चा वैज्ञानिक दूसरों के हुक्म पर नहीं नाच सकता। उसे अपने प्रयोगों के लिये पूरी स्वाधीनता चाहिये। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि भारत की उन्नति देश की वैज्ञानिक उन्नति के साथ नत्थी है। किन्तु भारत में विज्ञान का प्रधान क्षेत्र हमारे देश के सात लाख गांव होने चाहियें। जो भारतीय वैज्ञानिक महज़ शहरों के हित को दृष्टि में रखते हैं, वे अपने देश की वास्तविक स्थिति से परिचित नहीं। इस सम्बन्ध में बहस के लिये कोई गुञ्जाइश ही नहीं है।

यहां मशीन और हाथ की मेहनत के बीच में कोई स्पर्धा ही नहीं होनी चाहिये। किसान कुएं से पानी निकाल कर अपने खेतों को सींच लेता है, यह अच्छी बात है; किन्तु यदि वह बिजली इस्तेमाल करे, तो खेती की उपज बेहद बढ़ सकती है। विज्ञान जनता की समृद्धि को बढ़ाने में बहुत कुछ कर सकता है और इस दृष्टि से मानव और विज्ञान के व्यावहारिक रूप में कोई वैर या प्रतिस्पर्धा नहीं होनी चाहिये।

हमारे देश में ऐसे लोगों की एक बड़ी तादाद है, जो देश की बहुत कुछ सेवा कर सकते हैं। किन्तु इसके लिये उन्हें सुविधा नहीं मिलती और उन्हें अपना समय छोटी छोटी नौकरियों में बिताना पड़ता है। हम इन सारी शक्तियों का उचित उपयोग कर सकते हैं। यदि वैज्ञानिक अपना कर्तव्य समझ लें और जनता विज्ञान के इस दृष्टिकोण को जान ले, तो हमारे देश की अनेक समस्याएं हल हो सकती हैं।

भारतीय संस्कृति में विज्ञान की हैसियत विरोध की नहीं, बल्कि सामञ्जस्य की है।

[पृष्ठ २०४ से आगे]

कल्पना, विश्वास, करुणा, सत्य या दुख, हर्ष नाते;
एक था चेतन लिए जीवन, मरण उत्कर्ष नाते।
सङ्कुचित, सङ्कीर्णदृष्टा;
सृष्टि कर टुकड़े बनी भूगोल भी जब एक सृष्टा;
और हत्यारा गया बन आप अपना श्रेष्ठ मानव;
प्रकृति हुङ्कारी, गढ़ूंगी कृति नयी हिंसालु दानव!
यह अहिंसा, शान्ति का तब कौन ईसा, बुद्ध डोला?
कौन बोला?
आज संस्कृति के शिखर से कौन बोला?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जीवन का सांस्कृतिक रूप

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

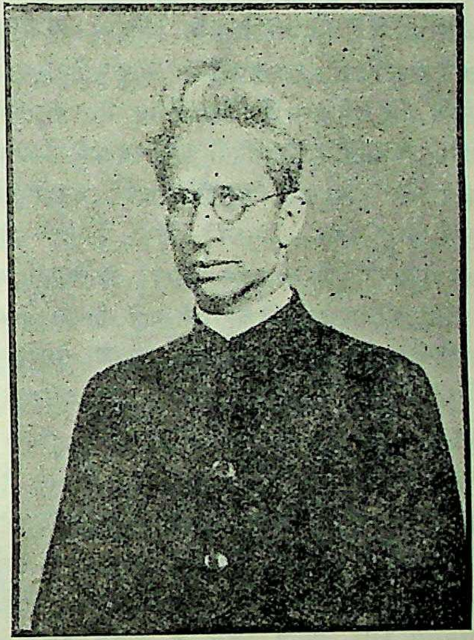

आज हम जिस युग में रह रहे हैं वह युग युद्ध, युद्ध की ज़बरदस्त तय्यारियों और उनके राजनैतिक तथा आर्थिक दुष्परिणामों का युग है। यह विचारों का नहीं शब्दों का युग है। हम बुलन्द आवाज़ में नारों को दुहराते हैं और समझते हैं कि हम सोच रहे हैं। प्रचार की कला चारों ओर से हमारे दिमाग़ों पर असर डालती रहती है। हम सिनेमा पर पलते हैं और रेडियो की शिक्षा पाते हैं। दूसरे व्यक्ति हमारे लिये सोचते हैं और हम सोच विचार की परेशानी से बच जाते हैं। हमारा जीवन बिलकुल मशीनों की तरह हो गया है। यदि कोई व्यक्ति राजनैतिक दलों द्वारा निश्चित की हुई नीति से सहमत नहीं होता और राजनीति की अपेक्षा दूसरे व्यापक सिद्धान्तों पर अधिक विश्वास रखता है, तो उसे आफ़त समझकर जड़ से उखाड़ देने की ज़रूरत समझी जाती है। यदि मैं यह कहूं कि हमारे व्यक्तित्व को ही चकनाचूर किया जा रहा है तो मैं ग़लत नहीं हूं।

व्यक्ति जीवन की अन्तिम सचाई है। समाज का उद्देश्य व्यक्ति के गुणों को उन्नत बनाना है। उसे सुसंस्कृत करना है। व्यक्ति के दिमाग़ी सदाचार, उसके स्वभाव की उदारता और दया से ही उसकी उन्नति का अन्दाज़ा लगाया जायगा। किन्तु अपने पड़ोसी के साथ उदारता के व्यवहार का यह अर्थ नहीं कि पड़ोसी को तुम अपनी तरह बना लो। उसे उसकी तरह होने का अवसर दो। वह तुमसे भिन्न व्यक्ति है। तुम्हारे दिमाग़ी वस्त्र शायद दूसरों को ठीक न बैठें और तुम्हारे अध्यात्मिक भोजन से मुमकिन है दूसरे को सन्तोष न हो। उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व है। उसे अपनी असफलताओं की तकलीफ़ और सफलताओं की ख़ुशी अनुभव करने का अवश्य मौक़ा मिलना चाहिये। उसे अपने तईं दूसरे व्यक्तियों से अनोखा और भिन्न होना चाहिये। जीवन व्यक्तित्व के साथ ही शुरू होता है और बहुत दरजे तक व्यक्तित्व के साथ ही समाप्त होता है। यदि हम किसी व्यक्ति से उसकी कल्पना और उसकी साहसपूर्ण निर्माण की क्षमता और अपने समकालीन लोगों पर उस व्यक्ति की दिमाग़ की छाप को हटालें, तो हम एक बड़ी हद तक इतिहास के रुख को ही बदल देंगे।

कलापूर्ण जीवन और मशीन जैसे जीवन में एक बड़ा अन्तर है। राजनीति और अर्थशास्त्र चाहे वे समस्त सुविधाएं एकत्रित कर दें, जो जीवन के लिये आवश्यक हैं, किन्तु हम अच्छी तरह जीवित रहना चाहते हैं। एक विशेष उद्देश्य के लिये जीवित रहने में ही जीवन का सच्चा सुख है। क्या यह मैं समझूं कि शिक्षक, कलाकार और दार्शनिक हमें जीवन की कला सिखाने और जीवन को गतिविधि देने के सम्बन्ध में राजनीतिज्ञों से भी अधिक हमारे उत्तम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पथ निर्देशक हैं और इस सम्बन्ध में हमें उनसे अधिक मदद मिलती है ?

यदि इस देश का कोई सांस्कृतिक सन्देश है, तो वह राजनीति या अर्थनीति में नहीं है, बल्कि दर्शन और धर्म में है। हमारे देश के इतिहास की विशेषताएं राजा, सम्राट, लड़ाइयें या युद्ध नहीं हैं, बल्कि ऋषि और धर्म ग्रन्थ हैं। सदा से ही भारत ने सैनिकों और राजनीतिज्ञों, या बनियों और व्यापारियों अथवा कवि और दार्शनिकों, जिन्होंने अपने शब्दों और कृत्यों से दुनिया को प्रभावित किया है, की उतनी क़द्र नहीं की, जितनी उन तपस्वी आत्माओं की, कि जिनकी महत्ता इस बात में नहीं है कि वे क्या कहते थे, बल्कि इसमें कि वे स्वयं क्या थे; ऐसे व्यक्ति जिन्होंने हमारे देश के विचारों और जीवन पर असीमता की छाप लगाई, और जिन्होंने दुनिया में भलाई के अप्रकाश्य गुणों को बढ़ाया। उन्होंने ऐसी दुनिया को, जो शक्ति और सांसारिक सुख की पुजारी है, पारलौकिक सत्य और आत्मा के रहस्य के दर्शन कराये। बावजूद अपने पतन और ग़रीबी, अपनी गुमनामी और अपने त्याग के भारत आज भी ज़बर्दस्त आत्मिक बल का प्रदर्शन कर रहा है।

ज़रा इतिहास के पन्नों को उलटाइये और फिर बताइये कि आपको उनमें क्या दिखाई देता है ? यही न कि क़ौमें और सभ्यताएं अनन्त और अनश्वर नहीं होतीं। वे फूलती हैं, फलती हैं, गिरती हैं और नष्ट हो जाती हैं। महान यूनानी सभ्यता का जीवन काल केवल ८०० वर्ष था, रोम की सभ्यता केवल ९०० वर्ष तक ही क़ायम रह सकी और बाइजेंटिटअम (पूर्वीय रोमन) सभ्यता मुश्किल से हज़ार वर्ष ज़िन्दा रही। बाइजेंटिअम सभ्यता के बाद वर्त्तमान सभ्यता के अभी से नाश के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इस सब का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ यह है कि ऐसी सभ्यताएं, जो सांस्कृतिक और धार्मिक सिद्धान्तों को अधिक महत्त्व देती हैं, वे अधिक काल तक जीवित रहती हैं और जो महज़ शक्ति, तर्क और भौतिक उन्नति पर ही ज़ोर देता हैं, वे अधिक काल तक जीवित नहीं रहतीं। ईसा ने कहा है—धन्य हैं वे नम्र आत्माएं क्योंकि संसार अन्त में उन्हीं का है। संसार पर अन्त में असंसारियों का ही प्रभुत्व होगा।

शहरों और राष्ट्रों से भी अधिक अन्य बातों का मूल्य होता है। हमारे इस देश ने सामयिक वस्तुओं को कभी महत्व नहीं दिया। अनन्त की भावनाओं को ही उसने सदा अपना लक्ष्य बनाया है। यह हमारी विशेषता है और हमारी कीर्ति का विषय है कि प्रत्येक युग में और देश के हर भाग में हमने ऐसी महान आत्माएं पैदा की हैं, जिन्होंने इस उच्च आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ किया है। आज भी हमारे देश में ऐसी महान आत्माएं मौजूद हैं, जो दावे के साथ इस बात का प्रचार करती हैं कि हिंसा की राजनीति से संसार का उद्धार तभी होगा, जब हम अनन्त पर विश्वास रखें और घृणा की जगह प्रेम के सिद्धान्त को अपनाएं।

इस तरह के व्यक्ति मौजूद हैं, जो कहते फिरते हैं कि धर्म हमारे लिये अभिशाप रहा है, हमारी मानवता पर इसने पाले का काम किया है, इसने समाज की उन्नति को रोक दिया है और जितना शीघ्र हम इस धर्म से छुटकारा पायें हमारे लिये उतना ही कल्याणकर है। ये लोग धर्म को जीवन के सिंहासन से उतार फेंकना चाहते हैं। ये लोग कहते हैं हिटलर की इस सफलता को देख कर हम धर्म पर कैसे विश्वास करें। वे प्रश्न करते हैं कि 'क्या ईश्वर कहीं है ?' 'क्या धार्मिक होने में कोई लाभ है ?' 'क्या यह उचित है कि असंख्य मनुष्य अपना आत्म विश्वास खोकर धर्म का सहारा लेकर रीढ़ की हड्डी तुड़वा लें ?' मैं केवल इसी बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि वास्तविक अर्थों में धर्म जीवन से भिन्न वस्तु नहीं है। अध्यात्म को सदा दैनिक जीवन में उतारा जा सकता है। हम जीवन के अमर सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं कर सकते। राजनैतिक परिस्थितियों और आर्थिक मांगों से उनका कहीं विरोध नहीं होता। फ़र्ज़ कीजिये हमारा आर्थिक जीवन संगठित हो जाय और म्युनिसिपैल्टियां हमारे लिये अच्छी सड़कें, मुफ़्त पानी और उम्दा रेडियो सेटों का प्रबन्ध

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर दें, तो क्या हम पूरे सुखी और संतोषी बन सकेंगे ? क्या संसार के समृद्ध और धनी मनुष्य आज सबमें ज़्यादा दुखी नहीं हैं ? अमरीका में आत्महत्या करने वालों का बहुमत धनी धोरी व्यक्तियों का होता है। धन जीवन की जिन सुविधाओं और आशाइशों को ख़रीद सकता है, उन्हें प्राप्त करते ही क्या हमारे अन्दर से ईर्षा, मूर्खता, अभिमान और नफ़रत का अन्त हो सकता है ? उस समय भी व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता को मूर्खता और स्वार्थ नष्ट कर देंगे। जीवन में आर्थिक सिद्धान्तों के अलावा और भी दूसरे सिद्धान्त हैं। भौतिक वस्तुओं की बहुतायत ही सुख की कुंजी नहीं है।

प्रत्यक्ष वस्तुओं के अतिरिक्त मनुष्य का जीवन कहीं अधिक ऊंची बातों के लिये है। सत्य की तलाश व आन्तरिक सौन्दर्य के सृजन और आत्मज्ञान के लिये मनुष्य भूख और प्यास सहता है, शरीर को कष्ट देता है और लम्बी लम्बी तीर्थ यात्राएं करता है। हम इसे उसका क्षणिक ख़ब्तीपन कह कर नहीं टाल सकते। लोगों के आराम और सुखी जीवन को ध्यान में रखते हुए जब हम दुनियाँ का संगठन करें, तो हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि हम उनके दिमाग़ में प्रेम की भावना भरें और जीवन के अमर सिद्धान्तों की ओर उनकी आस्था पैदा करें।

इसलिये मेरा यह विश्वास है कि जीवन के लिये भारतीय संस्कृति का यह श्रेष्ठ सन्देश न केवल बाहरी दुनियाँ के लिये उपयोगी है, बल्कि हमारे देश में भी इसके दोहराने की ज़रूरत है।

अन्धकार में से प्रकाश में

श्री सुधीन्द्र एम. ए.

लाओ जीवन को ज्योतिर्मय !
अन्धकार में से प्रकाश में

करुणा के जलनिधि ये जल-जल,
आज उठाते हैं क्यों बादल ?

बरसा रहे धरा पर विप्लव
गरज-गरज कर भवाकाश में।

कसक रही पीड़ा से संसृति
सिसक रही है मानव - संस्कृति

पृथिवी की सभ्यता युगों की
आज जा रही चिर विनाश में !

अपना यह ताण्डव प्रलयंकर
बन्द करो विश्वम्भर शङ्कर !

बरसाओ रस, सरसाओ जग
लाओ मूर्छित भव विकाश में !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चीनी संस्कृति की नवचेतना

मैडम चियाङ्ग काइ शेक

७ जुलाई सन् १९३७ की रात को मौजूदा चीन जापान युद्ध शुरू हुआ था। तब से चार वर्ष से अधिक हो चुके। जापानी राजनीतिज्ञों का दावा था कि तीन महीने में ही चीन आत्मसमर्पण कर देगा, किन्तु शंघाई में ही चीनी सैनिकों ने वीरता पूर्वक तीन महीने तक जापानी आक्रामकों को अटका रखा। जब हमारी सेनाओं ने दिसम्बर में नानकिङ्ग, मई में हसुचाओ और अक्तूबर सन् १९३८ में हानकाओ और कैण्टन ख़ाली कर दिया तब उस समय सभी विदेशी नीतिज्ञों की राय थी कि यदि छै महीने में नहीं तो १५ महीने में सम्पूर्ण देश जापानियों के सामने घुटने टेक देगा।

किन्तु यह सारा अन्दाज़ ग़लत निकला। यह सही है कि चार वर्ष के भयंकर युद्ध के बाद जापान ने चीन के एक बड़े भू-भाग पर क़ब्ज़ा कर लिया है, फिर भी इस युद्ध ने और हमारी शुरू की हारों ने हमारे सदियों के सोये हुए प्राणों को झकझोर कर जगा दिया है। हमारी खोई हुई चेतना मानों फिर से वापस लौट आई। यही नहीं कि हमने सम्हलकर अपने शत्रुओं से सफलता पूर्वक मोर्चा लिया, बल्कि हमने अपने राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र का लेखा जोखा किया, समय के साथ अपने क़दमों को मिलाकर ठीक किया। अपने सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक दृष्टिकोण, उद्योग-धन्धे, शिक्षा, रहन-सहन, आचार-विचार, परस्पर एकता की भावना, सैनिक संगठन आदि सभी बातों का नई स्फूर्ति और नई चेतना के साथ पुनर्सङ्गठन किया। भारत और चीन हमारे दोनों देश सबमें प्रचीन और महान हैं। हम जीवन के जिन तत्वों को महत्त्व देते हैं, उससे हमारी सभ्यताएं समय के हमलों से सुरक्षित और स्थायी रहीं। इन्हीं गुणों ने हमारे स्वभाव में एक दृढ़ता पैदा कर दी है। यह दृढ़ता ही हमारी महान पूंजी है। भौतिक वस्तुओं को हमारे जीवन में सदा गौण स्थान ही मिला है। यही नहीं हमने उनकी सदा अवज्ञा की है। जिन शक्तियों के साथ हम टकराए उन पर क़ाबू पाने के लिये यह आवश्यक था कि हम अपने अध्यात्मिक गुणों के साथ इन भौतिक वस्तुओं का समन्वय भी करते। यदि हमने यह किया होता तो संसार की शान्ति आज हमारे हाथों में सुरक्षित होती।

लेकिन आज हम जाग गये हैं। हमारी इस सांस्कृतिक नव चेतना ने वस्तुस्थिति को ठीक ठीक समझ लिया है और इसी का नतीजा है कि चीनी राष्ट्रीय जीवन का हर कल पुर्ज़ा अपनी जगह ठीक ठीक काम कर रहा है। इन चार वर्षों के भयंकर रक्तपात और नाश के बीच में ही हम भावी चीन का निर्माण कर रहे हैं। देखने वालों को भले ही हमारे प्राचीन खण्डहर दिखाई दे रहे हों, किन्तु इन्हीं खण्डहरों के नीचे जीवन का वह अक्षय कोष संचित हो रहा है, जो अखिल मानवता के शानदार भविष्य का द्योतक है।

हमने अपनी सेनाओं को इसी बीच संगठित किया है। उन्हें हथियारों से लैस किया है। दसियों गुनी उनकी तादाद बढ़ाई है। अनेक कारख़ाने और फ़ैक्टरियाँ हमने खोली हैं। सड़कों के जाल पूरे हैं। जगह जगह रेलें बिछाई हैं। विश्वविद्यालयों और शिक्षा को नई गति विधि दी है।

किन्तु ये चार वर्ष हमारे लिये ज़बर्दस्त कष्टों के वर्ष रहे हैं। करोड़ों व्यक्तियों को जिन आपदाओं का सामना करना पड़ा है वे अवर्णनीय हैं और अभी इन विपत्तियों का अन्त भी नहीं दिखाई देता। किन्तु अपने नये जीवन के लिये राष्ट्र को यह क़ीमत चुकानी तो लाज़मी है। जब तक सफलता नहीं मिलती हम यह क़ीमत बराबर चुकाते रहेंगे। सफलता हमें अवश्य मिलेगी क्योंकि इसमें न केवल चीन का बल्कि अखिल मानवता का कल्याण निहित है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मंगर : हलवाहा

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

हट्टाकट्टा शरीर। कमर में भगवा। कंधे पर हल। हाथ में पैना। आगे-आगे बैल का जोड़ा। अपनी आवाज़ के हहास से ही बैलों को भगाता, मेरे खेत की ओर सुबह-सुबह जाता, जब से मुझे होश है, मैंने मंगर को इसी रूप में देखा है।

हाँ, मुझे याद है, हल के बदले कभी-कभी मुझे भी उसके कंधे पर चढ़ने का सौभाग्य मिल चुका है। लेकिन, ऐसे मौक़े बहुत कम आये हैं। क्योंकि, न जाने क्यों, मंगर को बच्चों से वह स्वाभाविक स्नेह नहीं, जो उसके ऐसे लोगों में प्रायः देखा जाता है। उसे देखकर बच्चे भागते ही रहे हैं और आज जब मंगर अशक्य, जर्जर हो चुका है, बच्चे, मानों इसका बदला चुकाने को, अपनी छोटी छड़ियों से उसे छेड़ कर भागते हैं और जब वह झल्लाता, उन्हें मारने के लिये अपनी बुढ़ापे की लकुटिया खोजता, या खीझ कर गालियाँ बकने लगता है, तो वे खिलखिला पड़ते और उसका मुंह चिढ़ाने लगते हैं।

बच्चों से उसकी वितृष्णा क्यों हुई ? शायद इसलिये तो नहीं, कि उसे जो एक ही बच्चा नसीब हुआ, वह 'कमाऊ पूत' बनने के पहले ही, उसे दग़ा देकर चल बसा और उसकी एक बच्ची बची भी, सो, लूली; और, जिसकी शादी में उसने इतनी दरियादिली दिखलाई, लेकिन, एक बार मुसीबत काटने उसके दरवाज़े वह पहुंचा, तो दामाद ने ऐसी बेरुख़ी दिखलाई कि मंगर का स्वाभिमान उसे वहां से ज़बर्दस्ती भगा लाया।

मंगर का स्वाभिमान !—ग़रीबों में भी स्वाभिमान है, लेकिन, मंगर की ख़ूबी यही रही है। मंगर ने किसी की बात को बर्दाश्त नहीं की और शायद अपने से बड़ा किसी को, मन से, माना भी नहीं। मंगर मेरे बाबा का अदब करता, शायद उनके बुढ़ापे के कारण। सुना है, मेरे बाबू जी को बहुत चाहता—शायद उनके नेक स्वभाव के कारण। किन्तु, मेरे चाचाओं को तो उसने हमेशा अपनी बराबरी का ही समझा और मुझे तो वह कल तक 'तू' ही कहकर पुकारता था। किसकी मज़ाल जो मंगर को बदज़ुबान कहे ? हलवाहों को मिलनेवाली नितझन की गालियाँ तो दूर की बात।

ऐसा क्यों ? उसका ख़ास कारण, मंगर का यह हट्टाकट्टा शरीर और उससे भी अधिक उसका सख़्त कमाऊपन, जिसमें ईमानदारी ने चार चाँद लगा दिये थे। जितनी देर में लोगों के हल दस कट्ठा खेत मुश्किल से जोतते, मंगर पन्द्रह कट्ठा जोत लेता और वह भी ऐसा महीन कि पहली चास में ही सिराऊ मिलना मुश्किल। मंगर को यह भी बताने की ज़रूरत नहीं कि कल किस खेत में हल जायगा। वह शाम को ही खेतों की आर-आर घूम आता और जिसकी ताक होती, वहाँ हल लिये सुबह-सुबह पहुंच जाता। जुताई के वक्त किसी की देख रेख की भी ज़रूरत नहीं। आम हलवाहों के पीछे किसान जो लट्ठ लिये पड़े रहते और, तो भी वे जी चुराते, ढिलाई करते, आज का काम कल के लिये छोड़ते, यह आदत मंगर में थी ही नहीं। यों ही, रखवाली चाहे तरी फ़सल की हो, या सूखी पसही की; खलिहान में चाहे बोझों की सील हो या अनाज की रास—मंगर पर सब छोड़कर निश्चिन्त सोया जा सकता था।

दूसरा ऐसा 'जन' मिलेगा कहाँ ? फिर क्यों न उसकी क़द्र की जाय ? मेरे बाबा कहते थे, मंगर हलवाहा नहीं है, सवाँग है। वह अपने सवाँग की तरह ही कभी-कभी रूठ जाता था और जब तब लोगों को झिड़क भी देता था। उसकी झिड़क सब की सर आँखों पर; उसके रूटने, पर उसकी मिन्नतें होतीं।

कभी-कभी बातें कुछ बढ़ भी जातीं। एक दिन काफ़ी कहा सुनी हो गई। दूसरे दिन मंगर हल लेने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं आया। इधर से बुलाहट भी नहीं गई। रुपये हैं, तो हलवाहे न होंगे ? कोई नया हलवाहा लेकर जोता गया। उधर कोई दूसरा किसान जाकर मंगर से बोला—मंगर, देख उन्होंने दूसरा हलवाहा कर लिया है। उन्हें रुपये हैं, हज़ार हलवाहे मिलेंगे; तो तेरे भी शरीर है, हज़ार गृहस्थ मिलेंगे। चल, हमारा हल जोत, तू जो कहेगा, मज़दूरी दूँगा। लेकिन मेरा सिर जो दर्द कर रहा है—मंगर ने कहा और उसका यह सर-दर्द तब तक बना रहा, जब तक झख मार कर मेरे चाचा जी उसे फिर बुलाने नहीं गये। क्योंकि चार दिन में ही मालूम हो गया, मंगर क्या है ? बैल के कंधे छिल गये, पैर में फार लग गया। खेत में हल तो चला, लेकिन, न ढेला हुआ, न मिट्टी मिली। फिर, खेत की आर पर बैठकर दिन भर हलवाहे को टुकारी देते रहिये, तब कहीं दस कट्ठा ज़मीन जुते। मंगर के बिना काम चल नहीं सकता !

चाचा जी उसके दरवाज़े पर खड़े हैं। मंगर भीतर घर में बैठा है। मंगर की अर्धाङ्गिनी भकोलिया ने कहा—मालिक खड़े हैं, जाओ, मान जाओ। "कहदे, मेरा सिर दर्द कर रहा है"—मंगर ने चाचा जी को सुनाकर कहा। "मालिक, ज़रा इनके सिर पर मलकिन से तेल दिला दीजियेगा।" भकोलिया हँसते हुए बोली ! "तू मुझसे दिल्लगी करती है।" मंगर के स्वर में खीझ और नाराज़ी थी। "मंगर, चलो, आपस में कभी कुछ होही जाता है, माफ़ करो।" चाचा जी के स्वर में आरज़ू थी। "जाइये, उसी से जुतवाइये, जिससे चार दिन जुतवाया है। मुझे ले जाकर क्या होगा ? आधी रोटी की बचत भी तो होती होगी।" यों ही कुछ देर तक नोक-झोंक, आरज़ू-मिन्नत। फिर मंगर अपना हलवाही पैना हाथ में लिये आगे-आगे; चाचा जी, पीछे-पीछे !

वह आधी रोटी की बात क्या ? इसे समझा आपने ? इसे मंगर का ख़ास इज़ारा समझिये। गांव भर में हलवाहे को एक रोटी मिलती, मंगर के लिए डेढ़ रोटी जाती। वह भी रोटी गुअन्न की हो और अच्छी पकी हो। उस पर कोई तरकारी भी ज़रूर हो। क्योंकि मंगर किसी का 'कच्चा नमक' नहीं खाता। मंगर की सभी शर्तें पूरी होतीं।

लेकिन यह डेढ़ रोटी वह ख़ुद खाता, ऐसा आप नहीं समझें। क्या अपनी अर्धाङ्गिनी के लिये लाता ? नहीं। एक अपने खाता और आधी को दो टुकड़े कर दोनों बैलों को खिला देता। यों, वह आधी रोटी फिर मेरे ही घर लौट आती। लेकिन इसमें कोई काट-कपच नहीं हो सकती थी। महादेव मुंह ताकें और मैं खाऊँ, यह कैसे होगा ? मंगर के लिये ये बैल नहीं, साक्षात् महादेव थे।

एकाध बार बात बहुत बढ़ गई, तो मंगर मेरा गाँव छोड़कर चला गया। लेकिन, गांव में रहते उसने दूसरे का परिहथ नहीं पकड़ा। दूसरे गांव में भी वह जम नहीं सका। तब तीसरा गांव देखा और अन्त में मारा-मार फिर मेरे गाँव में लौटा। शायद मेरे घर ऐसा क़द्रदाँ उसे कहीं नहीं मिला।

कपड़ों से मंगर को वहशत रही है। हमेशा कमर में भगवा ही लपेटे। उसे धोतियाँ मिली हैं। हर साल, गोवर्धन-पूजा के दिन एक नई धोती लिये बिना वह बैलों की सींग में लटकन बाँधता क्या ? यों भी बाबा और चाचा साल में जब तब उसे पुरानी धोतियां दिया करते। घर में शादी-ब्याह होने पर उसे लाल धोतियां भी मिली हैं ! मेरी शादी में मंगर के लिये नया कुर्ता भी बना था। लेकिन धोतियां हमेशा ही उसके सिर का ही सिंगार रहीं, जिन्हें वह मुरेठे की तरह लपेटे रहता। और कुर्ता जब वह मेरी किसी कुटुमैती में सन्देश लेकर जाता, तभी उसकी देह ढँकता। साधारणतः वह हमेशा ही नंगधड़ंग रहता। और मैं कहूं, मुझे उसका शरीर, उस रूप में बहुत ही अच्छा लगता। आज एक कलाकार की नज़र से कहता हूं, मंगर को ख़ूबसूरत शरीर मिला था !

कालाकलूटा—फिर भी ख़ूबसूरत ?

सौन्दर्य की रंगसाज़ी और नक़्क़ाशी का मजमूआ समझने वालों की रुचि मैं नहीं समझ पाता, यह कहने की गुस्ताख़ी के लिये मैं आज भी माफ़ी माँगने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को तैयार नहीं। मंगर का वह कालाकलूटा शरीर—एक सम्पूर्ण सुविकसित मानव-पुतले का उत्कृष्ट नमूना। लगातार की मेहनत ने उसकी मांस-पेशियों को स्वाभाविक ढंग पर उभाड़ रखा था। पहलवानों की तरह उनमें अस्वाभाविक उभाड़ नहीं थी। जांघ, छाती, भुजायें—सब में जहाँ जैसी गठन और जितनी उभाड़ चाहिये, बस, उतनी ही। न कहीं मांस का लोंधा, न कहीं सूखी काठ। एक सुडौल शरीर पर स्वाभाविक ढंग से रखा एक साधारण सिर। मंगर के शरीर का ख़याल आते ही मुझे प्राकृतिक व्यायाम के हिमायती मि० मूलर की आकृति का स्मरण हो आता है। सैंडो के शैदाई उससे कुछ निराश हों, तो आश्चर्य नहीं।

लेकिन आज न वह देवी रही, न वह कड़ाह रहा। मंगर वह नहीं रहा, जो कभी था। ग़रीबी को वह अपने अक्खड़पन से हमेशा धता बताये रहा, लेकिन उम्र के प्रहारों से वह अपने को बचा नहीं सका। उसकी एक-एक चोट उसे धीरे-धीरे जर्जर बनाती रही और आज उस पर यह कहावत लागू है, "सूखी हाड़, ठाठ भई भारी, अब क्या लादोगे व्यापारी!"

उसके शरीर का मांस और मांस-पेशियां ही नहीं गल गई हैं, उसकी हड्डियां तक सूख गई हैं। आज का उसका यह शरीर उस पुराने शरीर का व्यंग्यचित्र मात्र रह गया है। बुढ़ापे के प्रहारों के लिये जो ढाल का काम करती, उस चीज़ का संग्रह मंगर ने कभी किया ही नहीं। "आज खाये औ कल को झक्खे, ताको गोरख संग न रक्खे"—का उपासक यह मंगर संग्रह का दुश्मन रहा है। कोई सन्तान भी नहीं रही, जो बुढ़ापे की लाठी बनती। उम्र ने इस निरस्त्र, कवचहीन योद्धा पर वे सभी ज़ुल्म ढाये, जो वह ढाल सकती थी।

मंगर बुढ़ापे के कारण हल चलाने के योग्य नहीं रह गया, तो कुछ दिनों तक उससे बहुत कुछ फुटकर हल्के काम लिये गये। लेकिन यह भी ज़्यादा दिनों तक नहीं चल पाया। अब एक ही उपाय रह गया था, उसे पेंसन मिले। किन्तु, हलवाहों—यथार्थ अन्नदाताओं—के लिए पेंसन की हमारे अभागे देश में कहाँ व्यवस्था? और व्यक्तिगत दया का दायरा तो हमेशा ही तंग रहा है। फिर मंगर में जली हुई रस्सी की ऐंठन ही बाक़ी नहीं है, उसकी पूरी गर्मी आज भी मौजूद है, जिससे दया का बादल हमेशा दूर-दूर ही भागता है। दया का बादल चाहता है, आशीर्वचनों की शीतल सतह और मंगर के शब्दकोष में उनका सर्वथा अभाव ही समझिये। इसके बदले आज भी वही बेलौस बातों, झड़प और झिड़कियों की आंच—जो पानी को कौन कहे, ख़ून को भी सुखा डाले। इसके बावजूद उदारता की स्वाती-बूंदे टपकती रहीं—किन्तु, पपीहे की प्यास उससे भले ही बुझे, मंगर की बुढ़ापे की मरुभूमि उससे सींची नहीं जा सकती। यह दावे के साथ कहा जा सकता है, आज मंगर की यह हड्डियों का झांझर भी हम नहीं पाते, अगर उसकी अर्द्धाङ्गिनी नहीं होती।

उसकी अर्द्धाङ्गिनी—भकोलिया! मंगर की आदर्श जोड़ी। वही जमुनिया रंग—काली कह कर मैं उसका अपमान क्यों करूँ? दो ही बच्चे हुए; इसलिये स्त्रीत्व के उस महान क्षय से वह बहुत कुछ बची रही, जो मातृत्व का सुन्दर नाम पाता है। यही कारण है, मंगर जर्जर-झर्झर हो गया, लेकिन भकोलिया अभी चलती-फिरती है, कुछ हाथ पाँव चला कर संग्रह कर लेती और दोनों प्राणियों की गुज़र बसर चला पाती है।

भकोलिया—मंगर की आदर्श जोड़ी। शारीरिक ढाँचे में ही नहीं, स्वभाव में भी। वे भी दिन थे, जब वह तमककर बोलती, झपटकर चलती। न किसी को मुंह लगाती, न किसी की हेठी बर्दाश्त करती। जिस किसी ने छेड़ा, मानो काली साँपिन के फन पर पैर रखा। लेकिन, भकोलिया में सिर्फ़ फुंकार मात्र थी—दंशन और विष का आरोप, उसके साथ महान अन्याय होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर, मर्दों की अपेक्षा औरतें अपने को परिस्थिति के सांचे में ज़्यादा और जल्द ढाल सकती हैं, इसका उदाहरण यह भकोलिया है। मंगर आज भी वही मंगर है, मुंह का बेलौस या फूहड़ कहिये। लेकिन, भकोलिया वही नहीं रही। किसी का बच्चा खेला-दिया, किसी का कुटान-पिसान कर लिया, किसी का गोबर पाथ दिया, किसी का पानी भर दिया और इनसे जो कुछ मिला, उसमें पहले मंगर को खिला-कर आप पीछे खाने बैठी। किन्तु, इतना करने पर भी वह हमेशा मंगर की फटकार ही सुनती। मंगर अब अपना सारा पित्त और पुरानी आदत उसी पर झाड़ता!

"भगवान की जैसी मर्ज़ी"—कह कर मंगर जिस भगवान के नाम पर अपनी मुसीबतों को विसर जाने का प्रयत्न करता रहा, उस भगवान ने पार साल उसकी और भी दुर्गत कर दी। मंगर को ज़ोरों से अधकपारी उठी। भकोलिया उसकी चिल्लाहट से पसीज किसी दया की मूर्त्ति से दालचीनी माँग लाई और उसे बकरी के दूध में पीस कर उसका लेप मंगर की ललाट पर कर दिया। "बाईं पुरपुरी और भौं पर भी"—मंगर ने लेप की पहली ठढाई अनुभव करते हुए कहा। भकोलिया उसका हुक्म बजा लाई। लेकिन, यह क्या? जहाँ जहाँ लेप था, वहाँ वहाँ अजीब जलन शुरू हुई। जलन ज़ख़्म में बदली और भौं के ज़ख़्म ने उसकी एक आँख ले ली। जब मैं घर गया,—"बबुआ जी, भगवान ने मेरी एक आँख ले ली, मैं काना हो गया"— कह कर मंगर रोने लगा।

मंगर को मैंने ज़िन्दगी में पहली बार रोते देखा। मैं उसे ढाढ़स दे रहा था, लेकिन, मेरा हृदय......

विपता अकेली क्यों आती?

यही पिछले माघ में मैं घर पहुंचा। सुबह धूप निकल आई थी, लेकिन, अपने चिर अभ्यास के अनुसार मैं रज़ाई से लिपटा पड़ा जाग्रत-स्वप्न के दरम्यान की तुरीयावस्था का आनन्द ले रहा था। मेरे कानों में थोड़ी थोड़ी देर के बाद, गिरने की-सी, धम धम आवाज़ आई। रज़ाई मुंह से हटा, आँखें खोलीं। देखा, सामने पुआल के टाल के नज़दीक एक काला सा अस्थिपिंजर बार-बार खड़ा होने की कोशिश करता और रह-रह कर गिर पड़ता है। यह क्या? कौन? चौंक कर उठा। रज़ाई फेंकी। उस ओर बढ़ा। अरे, यह तो मंगर है। सुना था, मंगर को अर्द्धाङ्ग मार गया है। कहा—मंगर, पड़े क्यों नहीं रहते, तुम्हें कैसी चोट लग रही होगी। "पड़े-पड़े मन ऊब जाता है, बबुआ", मंगर ने अपने अगले एक मात्र बचे पीले दांत को दिखाते कहा।

उफ़, मांस गया, मांसपेशियां गईं। ख़ून का सोता भी सूख गया। लेकिन, मानो अब भी उसमें तरंगें उठतीं और किसी सूखे सागर की तरह बालुका-तट पर सिर धुन, पछाड़ खा, गिर-गिर पड़ती हैं! कैसा करुण दृश्य!

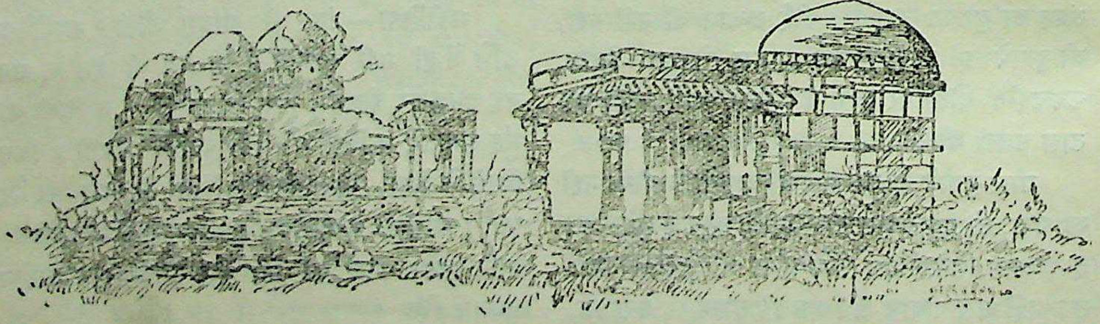

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मध्य कालीन भारत में हिन्दू मुसलिम मेल जोल

प्रोफ़ैसर मोहम्मद हबीब एम. ए., अध्यक्ष, इतिहास-विभाग, मुसलिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

हमारी मध्यकालीन भारत की शासन प्रणाली शुद्ध दुनियावी थी। शाही दबदबे की बुनियाद इसलामी क़ानून पर नहीं, बल्कि ईरानी रस्मरिवाज पर थी। देहली के बादशाहों और सुलतानों ने बहुत अहतियात से अपने कर्तव्य और व्यक्तिगत धार्मिक विश्वासों को शासन प्रबन्ध से अलग रखा। उन्होंने आम जनता के लिये बने हुये क़ानूनों में कभी इसलामी शरीयत (क़ानून) को ज़बरदस्ती प्रचलित नहीं किया। वे सिर्फ़ अमीरुल मोमनीन (मुसलमानों के शासक) ही न थे, बल्कि और बादशाहों की तरह अपनी समस्त प्रजा के साथ एकसा बर्ताव करते थे। यह बात बहुत विचार पूर्ण है। इससे एक तरफ़ तो उनकी राष्ट्रीय भावना का पता चलता है और यह प्रकट होता है कि दिल्ली की बादशाही शुद्ध दुनियावी बादशाही थी, और दूसरी तरफ़ यह पता चलता है कि दिल्ली की सल्तनत की समस्त प्रजा के प्रति वास्तविक धार्मिक सहनशीलता थी।

अपनी हिन्दू प्रजा के साथ दिल्ली के बादशाहों के सम्बन्ध धार्मिक बुनियाद पर नहीं, बल्कि राजा और प्रजा होने की बिना पर थे, जिसे दोनों अपनी अपनी जगह पर अच्छी तरह समझते थे। बादशाह को अपनी हिन्दू प्रजा के आध्यात्मिक मोक्ष से कोई सरोकार न था और न वह अपने आपको उसका ज़िम्मेवार समझता था। जब तक उसकी हिन्दू रिआया राजभक्त रहती, वह बिलकुल निश्चिन्त रहता।

हिन्दू भी राजनैतिक मामलों में बादशाह की मदद करने को तैयार रहते थे। लेकिन अपने धर्म में किसी तरह का दख़ल नहीं सह सकते थे। जब तुर्कों के हमलों की बाढ़ और उनकी विजय का काल समाप्त हो गया, तो यह बात तै हो गई कि शासन की बुनियाद सिर्फ़ सहनशीलता पर रखी जा सकती है। हिन्दुस्तान भर में जितने हिन्दुओं के मन्दिर थे, वे सुरक्षित छोड़ दिये गये। ज़ुल्म के जिन तीन चार हवालों की ओर हमारे इतिहासज्ञ, इशारा करते हैं वे उस अत्याचार को आम साबित करने के बजाय उन्हें झुठलाते हैं। कहा जाता है हिन्दुओं को घोड़े पर सवार होने और तीर वग़ैरह चलाने की इजाज़त न थी और जुलूस निकालने, नहान और पूजा पाठ करने की आम तौर पर रोक थी। मगर यह दास्तानें इतिहास के ग़लत अध्ययन से पैदा हुई हैं। मसलन ज़ियाउद्दीन बरनी अपनी "तारीख़ फ़ीरोज़शाही" में लिखता है—

'अलाउद्दीन ख़िलजी के तर्जे अमल से हिन्दू की हालत इतनी पस्त होगई थी कि न वह घोड़े पर सवार हो सकता था, न रेशमी लिबास पहन सकता था और न ईरानी कमान से तीर चला सकता था।"

बरनी के बयान को ग़ौर से पढ़ने वाले को इतमीनान हो जायगा कि उसका मतलब तमाम हिन्दुओं से नहीं, बल्कि 'हिन्दू' से उसका तात्पर्य है 'गांव के मुखिया' से। अलाउद्दीन से पहले ये मुखिया कर वसूल करने वाले कर्मचारियों को बहुत सताते थे और इन्होंने किसानों पर बहुत बेजा बोझ डाल दिया था और अपने गांव पर अपने मालिकाने का दावा करने लगे थे। मगर अलाउद्दीन ने उनका ज़ोर तोड़ दिया। बरनी यह नहीं कहता है कि उनको घोड़े पर सवार होने और रेशमी कपड़े पहनने की मनाही थी बल्कि यह कि वे इतनी ग़रीब हो गये कि इन नियामतों से लुत्फ़ उठाने की उनमें शक्ति ही न रही। बदक़िस्मती से इस वाक्य ने बड़ी ग़लतफ़हमी पैदा करदी है। मुखियाओं में बहुमत हिन्दुओं का था लेकिन इनमें मुसलमान भी थे और अलाउद्दीन का हुक्म सबके लिये एकसा था।

मलिक नामक एक हिन्दू अलाउद्दीन की फ़ौज में सेनापति था और चित्तौड़ का राना ५,००० सैनिकों के साथ उसके हरावल की कमान करता था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऐसी ऐसी बहुत सी मिसालें मौजूद हैं। तो क्या ऐसे सम्प्रदाय के लोग, जिन्हें घोड़े पर सवार होने और हथियार बांधने की मनाही रही हो, यह हैसियत हासिल कर सकते थे ?

मैं एक मिनट के लिये भी इस तरह की राय बनाना गवारा नहीं कर सकता कि सारी सल्तनत में हिन्दुओं के प्रति जो सहनशीलता थी वह केवल बादशाह का अनुग्रह था, या यह कि उसे मुसलमानों का दुराग्रही तबक़ा भी पसन्द करता था। यह सहनशीलता तो मजबूरियों और राजनैतिक आवश्यकताओं की पैदावार थी। मध्यकाल का हिन्दू सशस्त्र था और योग्य शासक था। उसके साथ सहनशीलता इसलिये बरती जाती थी कि मजबूरी थी। उसके सिवाय और कोई चारा न था।

सन् १२९१ ईस्वी में सुलतान जलालुद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर का घेरा डाला। लेकिन उसे अजेय और अभेद्य पाकर फ़ौज को हटाने का हुक्म दे दिया। बादशाह के भतीजे मलिक अहमद हबीब ने इसका विरोध किया और कहा कि "इससे शाही रोब कम हो जायगा। हुज़ूर वाला ! सुलतान महमूद और सुलतान संजर के नक़्शे क़दम (पदचिह्नों) पर क्यों नहीं चलते ?" सुलतान ने हंसकर जवाब दिया—"साहब ज़ादे ! महमूद और संजर के सिपाही और प्यादे तक मुझसे हज़ार दर्जे बेहतर और सम्माननीय थे। मैं क्या और मेरी बादशाही की शान और ताक़त क्या, जो मैं उनकी बराबरी करूं ? बेवक़ूफ़ ! तू देखता नहीं कि हिन्दू रोज़ाना मेरे महल के सामने से शंख बजाते और ढोल पीटते हुए जमुना के किनारे अपनी मूर्तियों को पूजने जाते हैं। वे मेरी आंखों के सामने अपने कुफ़्र की रस्में मनाते हैं। मेरी और मेरे शाही रोब की हतक करते हैं। शर्म है मेरे लिये और मेरी बादशाही के लिए। मेरा नाम हर जुमे के ख़ुतबे में पढ़ा जाता है। लेकिन मेरे दीन के दुश्मन हैं जो मेरी राजधानी में मेरी आंखों के सामने ऐशो इशरत और शानो शौकत से ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं और दौलत और ख़ुशहाली के कारण मुसलमानों से गुस्ताख़ी के साथ अपनी शान और घमण्ड को ज़ाहिर करते हैं। शर्म है मेरे लिये ! मैं उनको उनके ऐशो इशरत और फ़ख़ और ग़ुरूर में छोड़े हुए हूं और इन चन्द तिनकों पर सब्र किये हुए हूं जो वे ख़ैरात के तौर पर मुझे दे देते हैं।"

यह था एक ऐसे शख़्स का रोना पीटना जो इतना निर्बल था कि वह हिन्दुओं से नफ़रत तक न कर सकता था ! जलालुद्दीन जिसकी आम समझ संकुचित धार्मिक भावना से ऊपर थी, दिल्ली वापस आया, लेकिन हिन्दुओं के ख़िलाफ़ उसने कोई कार्रवाई नहीं की। महमूद ग़ज़नवी का ज़माना बीत चुका था, अब वह दोबारा वापस नहीं आ सकता था। दिल्ली के बादशाह ख़ुशी ख़ुशी या मजबूरी से इन्हीं शर्तों पर बादशाहत करते थे, जिनको हिन्दू नापसन्द नहीं करते थे।

वह असहनशीलता, जिसका जलालुद्दीन खिलजी आदेश देता था, मगर जिसपर वह स्वयं नहीं चल सकता था, वास्तव में इसलाम का कोई अङ्ग न थी। जो मुसलमान धार्मिक असहनशीलता को अपना कर्तव्य समझते थे, उन्हें मजबूरन सहनशील बनना पड़ा।

सुलतान महमूद जैसा एक विदेशी और स्वेच्छाचारी शासक, जिसके साथ एक जबर्दस्त फ़ौजी ताक़त थी, यह ज़रूर कर सकता था कि शान्तिपूर्ण शहरों को लूटकर और लूट का माल लादकर ले जाता। लेकिन दिल्ली के अन्दर रहकर बादशाहत करने वालों के लिये, जो अपनी हिन्दू रिआया के लगान और उनकी फ़ौज और उनकी दुनियावी ताक़त पर निर्भर थे, इस तरह की कोई बात करनी असम्भव थी। उनके लिये साम्प्रदायिक झगड़े सख़्त तबाही के कारण होते। मध्य भारत में अत्याचार की घटनाएं उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। लेकिन जब उनकी बारीकी से जाँच की जाय, तो उसके लिये ज़िम्मेवार हुकूमत नहीं, बल्कि कुछ व्यक्ति ठहरते हैं। कम से कम उस ज़माने के लोग तो ऐसा ही समझते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह अजीब बात है कि उस ज़माने की किताबों में एक घटना भी ऐसी नहीं मिलती कि हिन्दुओं ने मुसलमानों से कोई मुक़ाबला किया हो। इसकी वजह यह नहीं कि हिन्दू मुक़ाबले के क़ाबिल न थे। उस ज़माने के हिन्दुस्तान की एक भी लड़ाई में हमको फ़ौज का बटवारा हिन्दू और मुसलमानों के आधार पर नहीं मिलता। अफ़ग़ानी सिपाहियों का एक दस्ता तराइन की लड़ाई में राय पिथौरा के सेनापतित्व में लड़ा था। मुसलमानों की एक पैदल सेना ने पानीपत की लड़ाई में मराठों की मदद की थी। लेकिन असली हिन्दू मुसलिम लड़ाई दरअसल कभी नहीं हुई।

यदि हम मध्यकालीन भारत का इतिहास अच्छी तरह समझलें तो हम इस बेतुकी और नामाक़ूल तसवीर को एकदम से और हमेशा के लिये अपने दिमाग़ से निकालकर फेंक देंगे कि "विदेशी विजेताओं का एक दल एक शान्तिप्रिय और सीधी सादी आबादी पर हुकूमत और वज्र हुकूमत कर रहा था।" इस तरह की राय के समर्थन में यहां के उस वक्त के बाशिन्दों की ओर से कहीं एक शब्द भी नहीं पाया जाता।

इसमें शक नहीं कि मुसलमान बादशाह हिन्दू राजाओं से लड़े; लेकिन इससे कहीं ज़्यादा मर्तबा वे मुसलमान बादशाहों से लड़े।

हिन्दू मज़हब हर तरह से पूरी तरह शान्तिप्रिय था और उसके समय की हुकूमत भिन्न भिन्न सशस्त्र और युद्ध प्रिय दलों में एकता और मित्रता बनाए रखने का काम करती थी। बादशाह एक मुसलमान था और चूंकि हिन्दू धर्म जातियों और उपजातियों में बंटा हुआ था, मुसलमानों की हैसियत एक शक्तिशाली अल्पमत जैसी थी। उनकी संख्या क्षत्रियों बल्कि ब्राह्मणों से भी ज़्यादा थी। अगर हिन्दू धर्म में बराबरी और सम्मिलित जनतन्त्र की भावना मौजूद होती, जो मध्य कालीन इसलाम की सबसे बड़ी विशेषता थी, तो निस्सन्देह हालत इससे भिन्न होती।

लेकिन इन सुलतानों की सहनशीलता केवल उनके राज्य की सीमाओं तक ही परिमित थी। जहां उनकी सेना शाही सरहद के बाहर निकल जाती तो इस सारी सहनशीलता, मुरव्वत और इन्सानियत तक को भुला दिया जाता था। तास्सुब का बर्बरता-पूर्ण जोश जो सल्तनत के अन्दर ज़बरदस्ती क़ाबू में रखा जाता था सल्तनत के बाहर भड़क उठता था। सुलतान महमूद की स्वेच्छापूर्ण सख़्ती से यदि मलिक काफ़ूर के उन ज़ुल्मों की, जो उसने दक्षिण में किये तुलना की जाय, तो वे ज़्यादा नहीं तो उसके बराबर ज़रूर निकलेंगे। स्पष्ट सचाइयों से इनकार करना व्यर्थ है। मध्यकालीन भारत का एक भी मुसलमान इतिहासज्ञ ऐसा नहीं है, जिसने मन्दिरों, मूर्तियों और अद्वितीय कलापूर्ण स्मारकों की उस तबाही का वर्णन करने में कमी की हो, जो दिल्ली की विजयी सेना के पीछे होती जाती थी। वह स्वयं उस दुःखपूर्ण सफलता पर गर्व अनुभव करते थे और इसीलिये उनके छिपाने की उन्होंने कोई कोशिश नहीं की। यह बिलकुल सही है कि मन्दिरों और पूजा के स्थानों की श्रद्धा-भक्ति मुसलमानों के धार्मिक विश्वास का अङ्ग नहीं है; लेकिन यह भी सही है कि हर ज़माने की रस्में भी अलग अलग होती हैं। उस ज़माने के मुसलिम रीति रिवाजों में दुश्मन के पूजा स्थानों का मिटाना लड़ाई की जायज़ बातों में शामिल था।

जब मङ्गोलिया के ख़ानाबदोशों ने मुसलमानों की सरज़मीन एशिया, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान पर हमला किया, तो अपनी विजयों का यूं प्रदर्शन किया कि मसजिदों और पुस्तकालयों को बरबाद कर दिया। शहाबुद्दीन ग़ोरी की हिन्दुस्तान विजय या मलिक काफ़ूर का दक्षिण पर हमला, उन विनाशों से फिर भी कम है, जो सलजूक़ियों, ग़ज़नवियों और तातारियों ने ईरान के शहरों और मौजों में बरपा किया।

हिन्दू और मुसलमान दोनों तुर्क और ख़िलजी शहन्शाहों की फ़ौज में नौकर थे। दक्षिणी हिन्दुस्तान के मन्दिरों को ढाने में दोनों ने हिस्सा लिया। उस ज़माने की लूट मार की असली ग़रज़ सोने चांदी का लालच था। मूर्ति भंजन का दावा केवल फ़रेब था और बाहर वाहवाही के लिये था। अपनी सल्तनत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से बाहर निकल कर हिन्दुओं से लड़ना एक ख़ालिस आर्थिक भाग्य-परीक्षा थी। हिन्दुस्तान का व्यापार बेहद बढ़ा चढ़ा था। भारत को उससे मुद्दत से फ़ायदा हो रहा था। क़ीमती धातुएं एक बड़ी मिक़दार में भारत में आहिस्ता आहिस्ता जमा हो रही थीं। श्रद्धालु भक्तों का धन जगह जगह मन्दिरों के धर्मादे में इकट्ठा था। हिन्दुस्तान ऐसे कृषि प्रधान देश में गांव वालों को लूटने से क्या मिलता? इसलिये इन हमलों में देहात बल्कि मामूली शहर भी बिलकुल अमन की हालत में छोड़ दिये जाते थे। इस लूट की वजह धार्मिक कट्टरता नहीं, बल्कि धन का लालच था। अगर हिन्दुओं के मन्दिर भी मुसलमानों की मसजिदों की तरह सादे और मामूली होते, तो न महमूद ग़ज़नवी ही उन पर हमला करता और न अलाउद्दीन ख़िलजी ही अपनी विजयी सेना को दक्षिण भेजता।

दिल्ली के सुलतान मुल्क में केन्द्रीय सत्ता क़ायम करने में कैसे कामयाब हो गये जब कि उनसे पहले के हिन्दू यह काम न कर पाये थे? हिन्दुस्तानियों में ग़ुलाम मनोवृत्ति होना कैसा; वे तो बड़े दृढ़ और उद्दण्ड स्वभाव के थे और उनमें बड़े बड़े मनचले लोग थे। उसकी वजह यह थी कि उस ज़माने के समझदार लोग ज़ुल्म से नहीं बल्कि बदअमनी से डरते थे। पहले तो इस बात को ख़ूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि सल्तनत का प्रारम्भ ख़िलजियों की क्रान्ति के साथ शुरू हुआ। ग़ुलाम बादशाहों की हुकूमत महज़ एक धोखा और स्वांग था, या एक बुलन्द इमारत थी जिसकी बुनियाद न थी, जो अक़सर ग़ज़नी के फाटक से शुरू होती और दिल्ली के बदायूंनी दरवाज़े पर ख़त्म हो जाती थी। हिन्दुस्तान को संगठित करने का काम चंचल और ग़ुस्सैल स्वभाव के अलाउद्दीन ख़िलजी ने किया। उसके बाद से राष्ट्र की एकता का ख़याल लोगों के दिल से कभी दूर नहीं हुआ। बलवे हुए, बग़ावतें हुईं और गृह-युद्ध हुए; हम लड़े भी और हमने एक दूसरे को मारा भी; लेकिन किसी हालत में इस वास्तविकता को नहीं भूले कि हम एक ही घर के रहने वाले हैं और हमें एक हुकूमत रखनी चाहिये, चाहे उसकी कैसी ही हैसियत हो।

प्रकृति यह चाहती थी कि हिमालय के दक्षिणी हिस्से की ज़मीन एक क़िस्म के लोगों का मुल्क हो और प्रकृति का यह ध्येय धर्म और कला के ज़रिये पूरा हो गया। उत्तरी पश्चिमी पहाड़ी दर्रों को पार करके हिन्दुस्तान के उपजाऊ मैदानों में पहले पहल जिस मुसलमान ने क़दम रखा है, उससे भी सदियों पहले हमारी मानसिक और राष्ट्रीय एकता की बुनियाद रखी जा चुकी थी। यह बड़ा काम दिग्गजों के करने का था। मन्दिरों और यात्राओं के नियमों में, वेदों के रस्म रिवाज में, रामायण और महाभारत के क़िस्सों में, बौद्ध मज़हब के उदार दर्शन में और उसके क़ानून में हम वे राष्ट्रीय प्रभाव पाते हैं, जिन्होंने आर्यावर्त की भूमि को हमेशा के लिये अखण्ड बना दिया है। अगर यह महान कार्य पहले न पूरा हो गया होता, तो अकबर और अलाउद्दीन के शासन प्रबन्ध को सांस्कृतिक दृढ़ता न नसीब होती और उनकी बादशाहत भी सिकन्दर की बादशाहत की तरह चन्द-रोज़ा साबित होती।

हिन्दू और मुसलमान सूफ़ी शायद अनजान में अपने हिन्दू पूर्वजों के पद-चिह्नों पर चले। हिन्दुस्तान के मुसलमानों के साथ यह सख़्त नाइन्साफ़ी होगी कि उनका अन्दाज़ा उनके बादशाहों के चालचलन से तो किया जाय, जिनके वे किसी तरह ज़िम्मेवार न थे, लेकिन उनके धार्मिक पूर्वजों, उनके चारणों और उनके कवियों के प्रति उपेक्षा दिखाई जाय, जिनका उनपर बादशाहों से ज़्यादा असर था। उस वक़्त के आम मुसलमान (और आजकल के भी) मध्यम वर्ग से सम्बन्ध रखते थे। खोज करने वाले जिज्ञासु यदि सूफ़ियों की रचनाओं को सरसरी तौर पर भी देखें, तो उन्हें इस बात का विश्वास हो जायगा कि बादशाहों के ऐशो इशरत के जीवन के बिलकुल विपरीत ये सूफ़ी सन्त अपना जीवन बेहद तकलीफ़देह ग़रीबी में बिताते थे। उनके सरों को हमेशा छत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तक मयस्सर न थी और पेट भर खाना तो आश्चर्य की बात समझी जाती थी। यह सफलता जो इसलाम ने हिन्दुस्तान में हासिल की है, वह अपने बादशाहों और राजनीतिज्ञों के हाथों नहीं, बल्कि अपने सूफ़ियों और शेख़ों की बदौलत। इसलाम अगर इस मुल्क में ग़ज़नी के ख़ानाबदोशों की ज़िन्दगी के अलावा और कोई ज़िन्दगी नहीं अख़्तियार कर सकता, तो इस मुल्क में जड़ भी न पकड़ सकता। लेकिन इसलाम के प्रतिनिधि इनसे कहीं बेहतर और शरीफ़ थे। यानी वे लोग जो शाही दरबारों और फ़ौजी कैण्टूनमेण्टों से बहुत दूर शान्तिप्रिय लोगों की तरह विनीत जीवन व्यतीत करते थे। वे उस नबी के दिखाये हुए मार्ग पर चल रहे थे, जो ग़रीबी को अपना फ़ख़्र समझता था।

हिन्दू धर्म ने अपने विशाल और उदार दृष्टिकोण से इन मुसलमान सूफ़ियों को अपने ऋषियों में शामिल कर लिया और भाई-चारे की भावना ने बहुत जल्द एक सम्मिलित बुज़ुर्गों का सिलसिला तैयार कर दिया। यही हाल तेरहवीं सदी में भी था। और यही आज भी है।

ग़रज़ इस तरह तुर्कों की असफल कट्टरता का स्थान एक उच्चतर दर्शन ने ले लिया। चूनांचे एक सुबह को शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, जो मध्यकाल के एक बहुत बड़े सूफ़ी थे, जब अपनी ख़ानकाह की छत पर चढ़े तो कुछ हिन्दुओं को देखा कि वह मूर्ति पूजा कर रहे हैं। एक मुसलमान के लिये यह बात अजीब थी कि कोई व्यक्ति अपने द्वारा गढ़ी हुई मूर्ति की पूजा कर रहा हो। लेकिन शेख़ के फ़लसफ़े (अध्यात्म) ने काफ़िरी को भी अपनी सहनशील गोद में ले लिया। उन्होंने कहा, "हर क़ौम की (अलग अलग) एक जायज़ राह, एक धर्म और एक पूजा-स्थान है।"

यह थी मध्यकालीन भारत में हमारे मज़हबी समझौते की असली बुनियाद और यह समझौता भी ऐसा था जिसे हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शुभचिन्तकों, बड़े बड़े नीतिज्ञों और कूटनीतिज्ञों ने व्यावहारिक रूप दिया था। हममें से हिन्दू को एक अच्छे हिन्दू और मुसलमान को एक अच्छे मुसलमान होने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इसलाम इस मुल्क में एक बिलकुल नई विचार धारा थी, जो बहुत से विरोधी दृष्टिकोणों को गवारा किये हुए था। उस समय एक ऐसा समाज बन गया था, जिसकी बहुत सी शाखें हों। इन शाखों में से एक इसलाम था। यह नया मज़हब धीरे धीरे पुराने मज़हब में व्याप्त होने लगा था। मुसलमानों की साधारण श्रेणी जो हिन्दू धर्म छोड़कर मुसलमान हुई थी, मसजिद के लिये अपना मन्दिर ज़रूर छोड़ चुकी थी लेकिन अपने रस्म रिवाज छोड़ने का उसे ख़याल तक न आया। हिन्दुस्तानी मुसलमानों में आर्य जाति के रस्म और रिवाज आज दिन तक एक बदनाम वाक़या की तरह मौजूद हैं।

हिन्दुस्तान के किसी एक सम्प्रदाय के बाक़ी दूसरे सम्प्रदायों पर शासन करने की कोई ख़ास वजह न थी। चुनांचे मुसलमानों ने बढ़कर ठीक वही हैसियत अख़्तियार कर ली, जो उनसे पहले राजपूतों के हासिल थी। अगर एक मुसलमान शहनशाह अपने के शासन-प्रबन्ध और राजनीति में योग्य तथा उपयुक्त साबित कर लेता, तो हिन्दुस्तान वालों के उसकी हुकूमत और अधिकार मान लेने में कोई उज्र न होता। लेकिन बाद के दो बातों ने केन्द्रीय शासन के स्थायी और अधिक उपयुक्त बना दिया—(१) मंगोलों का हमला और (२) ग्राम पंचायतों का ढीला पड़ जाना।

ख़िलजियों के उत्थान से लगभग ६० वर्ष पहले मंगोल लोग हिन्दुस्तान की सरहद पर ख़तरे की तरह मंडरा रहे थे। उन्होंने तुर्किस्तान यानी आमोन नदी और जेक्सरीज़ नदी के बीच के इलाक़े और ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के तमाम उपजाऊ शहरों के बरबाद कर दिया था। वे पञ्जाब में लाहौर तक बढ़ आये थे। उस वक़्त हिन्दू और मुसलमान दोनों यकसां ख़तरे में थे। मंगोलिया वाले मुसलमानों के जानी दुश्मन थे। उन्होंने मुसलमानों की सभ्यता के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समस्त केन्द्रों को तबाह कर डाला था। इसी तरह वह हिन्दुओं के भी दोस्त न थे। वह जहां गये वहां की औरतों को बिला ऊंच या नीच घराने का ख़्याल किये आम तौर से उन्हें दासी बना लिया और उनकी हालत पुरुषों से भी बुरी बना डाली। वह बच्चों को बेदर्दी से क़त्ल कर डालते और क़त्लआम और रक्तपात से उन्हें ख़ुशी होती। इस तरह दो पीढ़ियों तक काले और भयानक बादल आसमान पर घिरे रहे। उस वक़्त जो व्यक्ति या जो गिरोह मंगोलों को रोक देता, वास्तव में वही सारे भारत के धन्यवाद का पात्र होता। दूसरे यह कि देहातों का पञ्चायती प्रबन्ध शहाबुद्दीन के हमले से सदियों पहले टुकड़े टुकड़े हो चुका था। क़ानून और रिवाज की जगह ज़बर्दस्ती या स्वेच्छाचारिता ने ले ली थी। ऐसे व्यापक कुशासन के ज़माने में मुखिया और मुक़द्दम लोग यह देखकर कि कोई बड़ी शक्ति उनको दबानेवाली नहीं है, गांव में ख़ुदमुख़्तार बन बैठे और ग़रीब रिआया को उन्होंने सताना शुरू कर दिया। ऐसी हालत में सिर्फ़ एक ज़बर्दस्त हुकूमत ही ग़रीब काश्तकारों को मुखियाओं के पञ्जे से छुड़ा सकती थी।

ये हिन्दू नहीं मुसलमान थे, जिन्होंने मंगोलों को मारकर भगा दिया और मुल्क की ग्राम पञ्चायतों को नये सिरे से संगठित किया। अलाउद्दीन ख़िलजी के तख़्त पर बैठने से पहले किसी वक़्त भी हिन्दुओं का एक ज़बरदस्त हमला दिल्ली की सल्तनत को ख़ाक में मिला सकता था। लेकिन अलाउद्दीन के समय में मुसलमानों ने पिछले अनुभवों को काम में लाकर मंगोलों को रोक लिया और चूंकि वे यहां के रस्म रिवाजों के फंदों से आज़ाद थे; इसलिये शासन प्रबन्ध और आर्थिक सङ्गठन की स्कीमें बनाने और उन्हें व्यवहार में लाने के वे योग्य साबित हुए और इसी की इस मुल्क को बेहद ज़रूरत थी।

हिन्दुओं की सरदारी की बाग राजपूतों के क़ब्ज़े में आ चुकी थी। जिनमें आपस में इतनी फूट थी और जो गृह युद्धों के इतने प्रेमी थे कि वे न तो हिन्दुस्तान की रक्षा के लिये लोगों को इकट्ठा कर सकते थे और न भीतरी प्रबन्ध के लिये। फिर राजपूताने का रेगिस्तान भी इस क़ाबिल न था कि वहां भारतीय साम्राज्य क़ायम होता या पामाल होता।

फिर क्यों प्राण उदास, आज रे !

पंडित सोहनलाल द्विवेदी एम. ए.

तृण तृण में उल्लास,
आज रे !
बन बन में हँसती हरियाली,
उपबन उपबन छाई लाली,
कण कण में मधुमास, आज रे !
पल्लव पल्लव में है गुंजन,
डाल डाल में सौरभ के घन,
क्षण क्षण में नवलास, आज रे !
आँगन आँगन में है उत्सव,
कानन कानन में श्री वैभव,
मन मन में उत्थान, आज रे !

तृण तृण में है गान,
आज रे !
कंठ कंठ में कोमल कूजन,
उर उर में है मादक स्पंदन,
अधर अधर मुसकान, आज रे !
बन बन में छाया है मधुबन,
दिशि दिशि में छाई सुषमा छन,
स्वर स्वर में है तान, आज रे !
कली कली में केसर अभिनव,
कुसुम कुसुम में मधु का वैभव,
फिर क्यों प्राण उदास, आज रे !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एकांकी नाटक

जाति-उत्थान

श्री सेठ गोविन्ददास एम. एल ए.

पात्र

रघ्घूमल, पीछे से रघुराज सिंह—एक कायस्थ
सत्तू परसाद, पीछे से सीताशरण—एक दूसर
मुलुआ, पीछे से मल्लिनाथ—एक नाई

स्थान

एक क़सबा
एक नगर

उपक्रम

स्थान—एक क़सबे के एक कच्चे मकान का एक कोठा

समय—प्रातःकाल

[कोठे की दीवालें देखने से मालूम होता है कि कच्ची दीवालें होने पर भी उन पर मिट्टी चढ़ा-कर उन्हें सफ़ेद कलई से पोत स्वच्छ बनाने का प्रयत्न किया गया है। पीछे की दीवाल में एक खिड़की है, जिसमें लकड़ी के सींकचे लगे हैं। दहिनी तरफ़ की दीवाल में एक दरवाज़ा है। खिड़की और दरवाज़े की चौखट किवाड़ इत्यादि देहाती लकड़ी के हैं, पर उन पर तेल पानी कर उन्हें भी स्वच्छ रखा गया है। छत में बोरे बंधे हैं, पर वे ठीक ढंग से, एक से करके, बाँधे गये हैं। ज़मीन पर साफ़ सुथरी जाजम है, उस पर एक छोटी सी गद्दी। गद्दी पर तीन मसनद और मसनदों से टिके हुए रघ्घूमल, सत्तू परसाद और मुलुआ बैठे हुए हैं। तीनों युवक हैं, अवस्था लगभग २२,२३ वर्षों के बीच में। रघ्घूमल साँवले रंग का ऊंचा पूरा मनुष्य है, सत्तू परसाद गेंहुए वर्ण का टिंगना और कुछ मोटा आदमी, मुलुआ काले रंग का साधारण उंचाई का दुबला पतला व्यक्ति। तीनों के सँवारने योग्य लंबे बाल और छोटी-छोटी मूंछें हैं। रघ्घूमल और सत्तू परसाद कोट और पाजामा पहने तथा फेल्ट केप लगाये हैं,—मुलुआ कोट और धोती पहने तथा दुपलिया टोपी लगाये है।]

रघ्घूमल—भाई, हरेक नौजवान के सामने पढ़ना लिखना ख़तम करने के बाद यही सवाल उठता है।

सत्तू परसाद—हम तीनों के सामने तो विद्यार्थी अवस्था में भी यह प्रश्न सदा उठता रहा है।

मुलुआ—और हम लोगों ने इस पर विचार भी कम नहीं किया है।

रघ्घूमल—तो उसी विचार पर हम लोग क़ायम रहना चाहते हैं ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सत्तू परसाद—मैं तो समझता हूं कि उस विचार को कार्य रूप में परिणत करने से अच्छा काम हम अपने जीवन में कर ही नहीं सकते।

मुलुआ—हाँ, अपने जाति-उत्थान से अधिक संसार में दूसरा महान और पवित्र कार्य हो ही कौन सकता है?

सत्तू परसाद—फिर रघ्घूमल जी हम दोनों हिन्दी, संस्कृत और अंगरेज़ी पढ़े हैं, आपने इन तीन भाषाओं के साथ उर्दू और फ़ारसी भी। इस प्रकार के पढ़े लिखे युवकों से ही तो देश और जाति आशा करती है।

मुलुआ—और उस आशा को पूर्ण करने के लिए हमारे हृदय में भी कार्य करने की भावनाएं हैं।

रघ्घूमल—(विचारते हुए) मैं यही सोच रहा था कि भावनाएं सच्ची और गहराई लिए हुए हैं न, सतह पर ही तो नहीं, नौजवानी का जोश तो नहीं है; क्योंकि उन भावनाओं के मुताबिक काम करने के लिए अपनी सारी ज़िन्दगी निसार कर देनी होगी, न जाने क्या-क्या क़ुर्बान करना पड़ेगा।

सत्तूपरसाद—हमारी भावनाओं की गहराई का पता तो इसी से लग जाता है कि बार बार वे ही भावनाएं हमारे हृदयों में उठती हैं।

मुलुआ—और ज़िन्दगी यदि इस काम के लिए निसार नहीं की जा सकती, क़ुर्बानियां यदि जाति-उत्थान के लिए नहीं की जा सकतीं, तो देश की उन्नति का नाम नहीं लेना चाहिए। रघ्घूमल जी, यह देश जातियों का ही तो समूह है। फिर इतनी जातियां हैं, खान पान, रीति रिवाज में इतने अन्तर हैं कि उन्नति और संघटन नहीं किया जा सकता।

सत्तूपरसाद—हाँ, इस देश की उन्नति का मार्ग ही यह है कि प्रत्येक जाति अपनी अपनी उन्नति करे। उस जाति के पढ़े-लिखे लोग उस उन्नति की दिशा निश्चित करें और उस दिशा में बढ़ने के लिए मार्ग।

मुलुआ—फिर रघ्घूमल जी, यहां तो हम तीन जातियों के कायस्थ, दूसर और नाई—तीन जातियों के तीन पढ़े लिखे युवक, जाति-भक्ति युवक, देश-भक्त युवक इकट्ठे बैठकर अपनी अपनी जाति के उत्थान की बात सोच रहे हैं, अपने अपने जीवन इस महान और पवित्र कार्य के लिए उत्सर्ग करने का स्वप्न देख रहे हैं।

रघ्घूमल—(विचार पूर्वक) हाँ, वह स्वप्न कहीं ख़्वाब ही न रह जाय, मैं यह सोच रहा हूं।

सत्तूपरसाद—यह कदापि नहीं हो सकता। हममें से प्रत्येक अपनी अपनी जाति की—सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति की क्षमता रखता है। फिर एक पर एक ग्यारह और एक, एक सौ ग्यारह होते हैं।

मुलुआ—(मुस्कराते हुए) हां, हां, यदि हम तीन मिलकर कुछ नहीं कर सकते, तो फिर संसार में कोई कुछ नहीं कर सकता।

रघ्घूमल—(विचार पूर्वक अत्यन्त गम्भीरता से) अच्छी बात है, तो तय हुआ कि हम अपनी अपनी ज़िन्दगी अपनी अपनी जाति की तरक़्क़ी के लिए निसार कर देंगे और इस काम में जितनी भी क़ुर्बानियां करनी होंगी उन्हें बख़ुशी करेंगे।

सत्तू परसाद—प्रतिज्ञा का संकल्प कीजिए, रघ्घूमल जी।

मुलुआ—(मुस्करा कर) हां, हां, यह ठीक है।

रघ्घूमल—(मुस्करा कर) आप संकल्प बोलिए सत्तू परसाद जी, मैं और मुलुआ जी उसे दोहरायेंगे।

सत्तू परसाद—अच्छी बात है। जल ले आता हूं।

[सत्तू परसाद दरवाज़े से बाहर जाता और एक देहाती पीतल के लोटे में जल्दी से जल लेकर आता है। तीनों अपने अपने दाहिने हाथों में जल लेते हैं]

सत्तू परसाद—कहिए—ॐ विष्णुः विष्णुः विष्णुः

रघ्घूमल, मुलुआ (एक साथ) ॐ विष्णुः विष्णुः विष्णुः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सत्तू परसाद—ॐ अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि

रग्घूमल, मुलुआ] ॐ अद्यैतस्य ब्रह्मणोऽह्नि

सत्तू परसाद—द्वितीय प्रहरार्द्धे

रग्घूमल, मुलुआ] द्वितीय प्रहरार्द्धे

सत्तू परसाद—श्री श्वेत बारह कल्पे

रग्घूमल, मुलुआ] श्री श्वेत बारह कल्पे

सत्तू परसाद—जम्बू द्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते

रग्घूमल, मुलुआ] जम्बू द्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते

सत्तूपरसाद—कलियुगे कलि प्रथम चरणे

रग्घूमल, मुलुआ] कलियुगे कलि प्रथम चरणे

सत्तू परसाद—पुण्य क्षेत्रे

रग्घूमल, मुलुआ] पुण्य क्षेत्रे

सत्तू परसाद—विजय नाम संवत्सरे

रग्घूमल, मुलुआ] विजय नाम संवत्सरे

सत्तू परसाद—श्री सूर्य उत्तरायणे

रग्घूमल, मुलुआ] श्री सूर्य उत्तरायणे

सत्तू परसाद—वसन्त ऋतौ

रग्घूमल, मुलुआ] वसन्त ऋतौ

सत्तू परसाद—चैत्र मासे शुभे शुक्ल पक्षे

रग्घूमल, मुलुआ] चैत्र मासे शुभे शुक्ल पक्षे

सत्तू परसाद—एकादश्यां तिथौ गुरु वासरे

रग्घूमल, मुलुआ] एकादश्यां तिथौ गुरु वासरे

सत्तू परसाद—अमुक गोत्रोत्पन्नो

मुलुआ—अमुक गोत्र ?

रग्घूमल—हाँ, भाई, गोत्र तो हमें अभी अपना अपना बनाना होगा न ?

रग्घूमल, मुलुआ] अमुक गोत्रोत्पन्नो

सत्तू परसाद—अपना-अपना नाम लीजिये सत्तूपरसादो......

रग्घूमल—भाई, नाम इसी वक्त बदल लो हमारे नाम अच्छे नहीं हैं।

मुलुआ—हाँ, यह ठीक है।

सत्तू परसाद—ऐसा ! (कुछ सोचकर) अच्छी बात है, मैं अपना नाम सीता शरण रखता हूं।

रग्घूमल—और मैं···(विचार कर) मैं रघुराज सिंह।

मुलुआ—सुन्दर । (विचार करते हुए) मैं... मैं...मैं मल्लिनाथ रख लेता हूं।

सत्तू परसाद—वाह ! वाह ! अच्छी खोज की। प्रसिद्ध टीकाकार। (कुछ रुककर) अच्छा, अपना अपना नाम लीजिये सीताशरणो हं

रग्घूमल— रघुराजसिंहो हं

मुलुआ—मल्लिनाथो हं

सीताशरण—अत्र वर्ण ?

रघुराज सिंह—यह बाद में तय करेंगे।

मल्लिनाथ—हाँ, यह ठीक है।

सीताशरण—स्वजाति उत्थान कार्यार्थ

रघुराज सिंह, मल्लिनाथ] स्व जाति उत्थान कार्यार्थ

सीताशरण—स्व जीवन समर्पणं

रघुराज सिंह, मल्लिनाथ] स्व जीवन समर्पणं

सीताशरण—करिष्ये।

रघुराज सिंह—करिष्ये।

[तीनों जल छोड़ते हैं।]

मल्लिनाथ—देखो तो, कैसा तो संवत्सर मिला—विजय, कैसा सूर्य मिला—उत्तरायण, कैसी ऋतु मिली—वसन्त, कैसी तिथि मिली—एकादशी, कैसा वार मिला—गुरू !

सीताशरण—दैवी प्रेरणा ! देखा दैवी प्रेरणा इसे कहते हैं। भगवान हमारे साथ हैं।

रघुराज सिंह—अच्छे कामों में भगवान हमेशा मददगार रहते हैं। (कुछ रुककर) अच्छा देखो, अब अपनी अपनी जाति को कौन-सी जाति बनाना है, यह तय करो।

सीताशरण—याने ?

रघुराज सिंह—याने यह कि कायस्थ समझे जाते हैं शूद्र, दूसर समझे जाते है नीचे दरजे के बानिये और नाई को तो छूकर कई लोग नहाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अगर कायस्थ शूद्र बने रहे, दूसर बनिये और नाई अछूत, तो इन जातियों की तरक्क़ी हो चुकी।

सीताशरण—हां यह तो ठीक है।

मल्लिनाथ—बिलकुल।

रघुराज सिंह—(विचार करते हुए) भाई, मैं तो कायस्थों को क्षत्रिय बनाऊंगा। क्षत्रियों की ही इस वक्त मुल्क को सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।

सीताशरण—और सच्चे ब्राह्मणों की उससे अधिक। जिस देश का सच्चा ज्ञान लुप्त हो जाता है, उसका उत्थान नहीं हो सकता। मैं दूसरों को ब्राह्मण बनाऊंगा।

मल्लिनाथ—मैं भी नाइयों को ब्राह्मण।

रघुराज सिंह—एकदम इतनी बड़ी छलांग।

मल्लिनाथ—छलांग ही मारना है तो फिर छोटी क्यों मारी जाय?

सीताशरण—और मेरी तो छलांग उतनी ही है, जितनी आपकी। आपने दो सीढ़ियां चढ़ीं—शूद्र से क्षत्रिय, मैंने भी दो सीढ़िया चढ़ीं—वैश्य से ब्राह्मण।

[तीनों कुछ देर चुप रहते हैं।]

रघुराज सिंह—देखो, सिर्फ कह देने से कि कायस्थ क्षत्रिय हैं, दूसर और नाई ब्राह्मण, काम न चलेगा। इसके लिये वेदों के, स्मृतियों के, शास्त्रों के, पुराणों के सुबूत देने होंगे, तब लोग मानेंगे।

सीताशरण—हिन्दुओं के लिए इसमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती—इतने वेद, इतनी स्मृतियां, इतने शास्त्र, इतने पुराण हैं, और फिर श्लोक बना बनाकर उनमें इतना जोड़ा जा सकता है कि किसी भी बात का प्रमाण मिल सकता है।

मल्लिनाथ—बहुत सरलता से, बहुत सरलता से।

रघुराज सिंह—फिर हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी भी हमें उन्हीं जातियों के मानिन्द बनानी होगी, जिन जातियों के हम बन रहे हैं।

सीताशरण—अवश्य।

मल्लिनाथ—सर्वथा।

रघुराज सिंह—अपने अपने गोत्र बनाने होंगे, अपनी अपनी जाति की जाति सभाएं क़ायम करनी होंगी। उन सभाओं के अख़बार निकालने होंगे, तक़रीरें करनी होंगी, शायरी लिखनी होगी। भाई बहुत...बहुत काम है।

सीताशरण—सब हो जायगा।

मल्लिनाथ—हम लोग मिलते रहें, किस प्रकार काम बढ़ रहा है, इसकी आलोचना करते रहें, आगे का कार्यक्रम निश्चित करते रहें। आपकी सम्मति हमारी पथ प्रदर्शका रहे। बस सब हो जायगा।

[कुछ देर तीनों फिर चुप रहते हैं।]

रघुराज सिंह—अच्छा तो अब आज तो...

[तीनों खड़े होते हैं।]

यवनिका

मुख्य दृश्य

स्थान—एक नगर के मकान में एक कमरा

समय—मध्याह्न

[कमरे की दीवालें कलई से पुती हुई हैं। दीवालों में कई दरवाज़े और खिड़कियां हैं, जिनके किवाड़ों में शीशे लगे हैं। छत से कई बिजली की बत्तियां और पंखे झूल रहे हैं। ज़मीन पर क़ालीन बिछा है, जिस पर बेश क़ीमती फरनीचर है। कुर्सियों पर रघुराज सिंह, सीताशरण और मल्लिनाथ बैठे हुए हैं। तीनों की अवस्था देखने से जान पड़ता है कि उपक्रम की घटना को १०, १२ वर्ष बीत चुके हैं। तीनों की वेष भूषा में बहुत परिवर्तन हो गया है। रघुराज सिंह अब बड़ा सा साफ़ा बांधे हुए हैं। कोट की जगह शेरवानी है और सादे पाजामा की जगह चूड़ीदार पाजामा। शेरवानी में छाती पर बांई ओर एक बड़ा लोहे का बैज लगा हुआ है, जिसमें भैंसे की मूर्ति बनी है। कमर में कमरपट्टा है और उसमें तलवार के सदृश लंबी एक कलम लटक रही है। सीताशरण का सिर मुँडा हुआ है, चोटी भी नहीं है और सिर पर कोई वस्त्र भी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं। शरीर पर केवल दुपट्टा और धोती है। वक्षस्थल पर मोटा यज्ञोपवीत दिखाई देता है। मल्लिनाथ का सिर भी खुला है। उसके सिर पर गोखुर के सदृश चौड़ी शिखा है। शरीर के ऊपर का भाग नंगा है और नीचे के भाग में धोती। यज्ञोपवीत वह भी धारण किये हुए है, पर यज्ञोपवीत में एक बड़ा सा अस्तुरा बंधा है। रघुराज सिंह के ललाट पर रामानन्दी तिलक, सीताशरण के त्रपुण्ड और मल्लिनाथ के सिन्दुर का विन्दु लगा हुआ है।]

रघुराज सिंह--हां, उस संकल्प को एक युग, बारह साल का पूरा एक युग ख़त्म हो गया है। आज चैत के उजले पखवाड़े की एकादशी है। आज ही के दिन बारह साल पहले हमने अपनी अपनी जाति की तरक्क़ी के लिए संकल्प लिये थे।

सीताशरण—और गत बारह वर्षों में क्या हुआ, इसकी आलोचना यद्यपि हम समय समय पर करके आगे के कार्य का कार्यक्रम तैयार करते रहे हैं, तथापि युग समाप्ति पर हमें अपनी समस्त कार्यवाही का सिंहावलोकन कर लेना चाहिये।

मल्लिनाथ--अवश्य, जिससे आगे का कार्यक्रम और भी व्यवस्थित हो सके।

सीताशरण--(रघुराज सिंह से) आप ही आरंभ करें सिन्हाँ साहब।

रघुराज सिंह--मैं ही शुरू करूं। (कुछ रुककर) अच्छी बात है। पंडितो, कायस्थ जाति ने इस एक युग में अज़हद तरक्क़ी की है। वेदों, स्मृतियों, शास्त्रों और पुराणों से यह तय पा गया कि कायस्थ शूद्र न होकर क्षत्रिय हैं। कायस्थों की पैदायश यमपुरी के बादशाह चित्रगुप्त से हुई है। चित्रगुप्त यमपुरी के तेरहवें बादशाह थे। शूद्र तो ब्रह्मा के पैरों से पैदा हुए थे। लेकिन शास्त्र कहते हैं चित्रगुप्त ब्रह्मा के तमाम बदन से। दुनियाँ की सबसे पुरानी किताब ऋग्वेद में जैसे अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण वगैरह के लिए देवसूक्त हैं, उसी तरह चित्रगुप्त के लिए। ऋग्वेद कहता है—(हाथ हिलाकर गाते हुए)

'सचित्र चित्रं चितयन्त मस्ये चित्र क्षत्रं
चित्र तमंवयोधाम् चन्द्ररविं पुरुवौ
बृहद्यं चन्द्र चन्द्रा भिर्गृणते युवस्व'

इस पर आश्वलायन ने श्रौतसूत्र में कहा है—(फिर हाथ हिलाकर गाते हुए)

'सचित्र चित्रं चितयन्तमस्ये अग्निरीशेबृहतः क्षत्रियस्य'

यजुर्वेद शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—(फिर हाथ हिलाकर गाते हुए)

'यान्यौतान देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः
सोमो - रुद्रः पर्जन्यो यमः' वगैरह वगैरह

सीता शरण—वाह! वाह! वाह! एक नहीं, दो दो वेदों के प्रमाण हैं।

मल्लिनाथ—अकाट्य प्रमाण। अकाट्य प्रमाण।

रघुराज सिंह—सिर्फ़ वेदों में नहीं, वेदों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में, फिर स्मृतियों में, उसके बाद पुराणों में सिलसिलेवार सुबूत है कि चित्रगुप्त ब्रह्मा के तमाम बदन से पैदा हुए। यमपुरी के वे तेरहवें और आख़िरी बादशाह थे। वे क्षत्रिय थे और कायस्थ जाति के वे सबसे पहले बुज़ुर्ग। एक शायर ने इस तमाम क़िस्से पर बड़ी अच्छी शायरी की है। हमारे बुज़ुर्ग बादशाह चित्रगुप्त के मुताल्लिक वह कहता है—(गाता है।)

'श्यामल अंग पितांबर शोभित
भाल विशाल त्रिपुन्दहु भाजै।
दीर्घ भुजा सुठि लोचन आनन
नाशिका चारु महा छवि छाजै।
कानन भूषण लेखनि पट्टिका
हाथ खरी मसि भाजन साजै।
रूप त्रिलोकि विरंच थके
पद पावन सुन्दर पद्म विराजै।"

सीताशरण—वाह! वाह! वाह! वाह! सुन्दर सवैया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मल्लिनाथ—कितनी सुन्दर भाषा और कितने सुन्दर भाव हैं। हाँ, व्रजभाषा का अब प्रचार कम हो चला है, इसलिये इसकी टीका करनी होगी।

सीता शरण—(मुस्कराकर) आपका नाम ही मल्लिनाथ है।

रघुराज सिंह—ऐसे फ़र्जन्द को पाकर ब्रह्मा जी बहुत ख़ुश हुए। उन्होंने कहा तुम मेरी काया में पोशीदा रहे हो इसलिये तुम्हारा नाम होगा चित्रगुप्त। और फिर तुम मेरी काया से ही पैदा हुए हो इसलिये तुम्हारी जाति होगी—कायस्थ। इस दुनिया में कुछ कर सको इसके लिये तुम्हें ताक़त चाहिये। यह ताक़त मिलेगी तपस्या से। तुम कोट नगर में जाकर, जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं, चण्ड मुण्ड नाशिनी चण्डिका देवी की पूजा करो। वालिद ब्रह्मा का हुक्म पाकर चित्रगुप्त कोट नगर गये और वहां उन्होंने बारह हज़ार साल तक, सुना बारह हज़ार साल...

सीताशरण—थोड़ी सी तपस्या से उन्हें इतनी बड़ी चढ़ी शक्ति थोड़े ही मिल सकती थी।

मल्लिनाथ—कदापि नहीं, कदापि नहीं।

रघुराज सिंह—बारह हज़ार साल तक तपस्या की और चण्डिका देवी की पूजा की। देवी ख़ुश हो गयी। शेर पर बैठकर पैदा हुईं, शेर पर...

सीताशरण—हां, हां, शक्ति देने के लिए शक्तिशाली वाहन पर बैठकर तो प्रकट होती ही।

मल्लिनाथ—अवश्य, अवश्य।

रघुराज सिंह—देवी बोली मैं तुमसे बहुत ख़ुश हो गई हूं। (गाकर)

'सांति सम्पति आयु बहु पर उपकारहि लीन।
हुइ हौ भागी सुयश के लेखकि कला प्रवीन॥'

देवी की ख़ुशी में अपनी भी ख़ुशी शामिल कर जोड़ देने के लिए फिर तो वहां ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी पैदा हुए। शायर कहता है—(गाकर)

'विधि हरि हर हर्षित भये सुनि दुर्गा के बैन।
तीनहूँ लागे मुदित मन चित्रगुप्त वर दैन॥

ब्रह्मा बोले—(गाकर)

'धर्मराज ढिग तुम रहहु करहु सहाय सुथान।
बारह यम के बीच महँ तुम हो मुख्य प्रधान॥'

विष्णु बोले—(गाकर)

'आहुति देवन संग नित पैहो अति हरषाय।
कर्म शुभा शुभ जीव के सदा लिखहु बिलगाय॥'

महेश बोले—(गाकर)

'जगत पूज्य गुण आगरे अजर अमर गुण खान।
तुम सेवत पैहैं सकल सुत वित यश कल्याण॥'

सीताशरण—धन्य है। धन्य है।

मल्लिनाथ—चित्रगुप्त महाराज की जय।

रघुराज सिंह—अब चित्रगुप्त ने यमपुरी आकर अपनी बादशाहत सँभाली। लेकिन शादी की भी तो ज़रूरत थी।

सीताशरण—अवश्य। बिना विवाह के कभी धर्म पालन हो सकता है।

मल्लिनाथ—कदापि नहीं। कदापि नहीं।

रघुराज सिंह—विवस्वान मनु के दो शाहज़ादे हुए। श्राद्धदेव और धर्मशर्मा। श्राद्धदेव के सात शाहज़ादे और एक शाहज़ादी हुई, लेकिन धर्मशर्मा के सिर्फ एक शाहज़ादी ही। श्राद्धदेव की शाहज़ादी का नाम था नंदिनी और धर्मशर्मा की शाहज़ादी के दो नाम थे—एरावती और—शुभावती। महादेव के हुक्म से इन दोनों—शाहज़ादियों की शादी बादशाह चित्रगुप्त से हुई। बादशाह चित्रगुप्त के आठ फ़र्जन्द शुभावती और चार नंदिनी से हुए। शायर कहता है—(गाकर)

'भये सकल सुत आनन्द राशी।
जनु रवि द्वादश कला प्रकाशी।
चित्रगुप्त अति आनन्द पाये।
घर घर मंगल बजत बधाये।'

सीताशरण—बधाई है। बधाई है।

मल्लिनाथ—बधाई है। बधाई है।

रघुराज सिंह—इन बारहों फ़र्जन्दों की शादियां बादशाह चित्रगुप्त ने बारह नाग कन्याओं से की।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपनी अपनी रानियों के साथ चित्रगुप्त महाराज के ये बारह फ़र्ज़न्द हिन्दुस्तान के अलग अलग जगहों में रहने के लिये आये और अपने अपने इष्ट की पूजा के साथ अपने अपने फ़र्ज़ों को अदा करना शुरू किया। शायर कहता है—(गाकर)

माथुर, गौड़, कर्ण, भटनागर।
वालमीक, अम्बष्ठ उजागर॥
सकसेना, अष्ठानहिं मानो।
शुभावती के सुत ये जानो॥
निगम, सूर, ध्वज जग जाने।
श्रीवास्तव, कुल श्रेष्ठ बखाने॥
ये सुत चार नन्दनी जाये।
सब मिल द्वादश बन्धु कहाये॥

सीताशरण—इस प्रकार कायस्थों के बारह विभाग हुए।

मल्लिनाथ—महान विभाग! महान विभाग!

रघुराज सिंह—हां, पंडितो, कायस्थ जाति ने अपने पहले बुजुर्ग को पहचान लिया है। अपने बारह फ़िर्कों को जान लिया है। उससे मालूम हो गया है कि वह शूद्र नहीं, लेकिन सच्ची क्षत्रिय जाति है। उसने अपनी जाति सभा क़ायम करली है। जाति सभा का अख़बार निकलने लगा है। हर साल जाति की सभा के जलसे होते हैं, जिसमें जाति की तरक्क़ी के लिए रिजोल्यूशन्स के बंडल के बंडल पास किये जाते हैं और उन पर आंधी के मानिन्द धुँआधार तक़रीरें होती हैं। हर कायस्थ के मकान में अब फिर से सोलह संस्कार होने लगे हैं, उनको उनके गोत्र भी मालूम हो गये हैं। चन्द्रगुप्त बादशाह की सवारी भैंसा होने के सबब हमने अपना बेज भैंसे की शक्ल का बनाया है और उनका सच्चा हथियार कलम होने के सबब हम लोग कमर में तलवार की जगह कलम बाँधते हैं। राजा रामचन्द्र जी क्षत्रिय थे इसलिए पेशानी पर हम लोग रामानदी तिलक लगाते हैं। बारह सालों का यह युग कायस्थ जाति की तारीख़ में सतयुग के नाम से सुनहले हरफ़ों में लिखा जायगा। इसी तारीख़ को लिखने के लिए चित्रगुप्तेश्वर पुराण बनाये जाने का इन्तज़ाम हो रहा है।

मल्लिनाथ—बोलो महाराज चन्द्रगुप्त की जय।

सीताशरण—सच्ची आर्य क्षत्रिय जाति कायस्थ की जय।

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

रघुराज सिंह—(सीताशरण से) अच्छा, पंडित जी, आपकी जाति ने इस एक युग में क्या किया उसका हाल आप फ़रमाइये?

सीताशरण—बहुत अच्छा। सुनिये। हमारी जाति को मालूम हो गया है कि 'दूसर' शब्द संस्कृत के वधूसर शब्द का अपभ्रंश है। यथार्थ में हमारी जाति ऋग्वेद में वर्णित महर्षि भृगु से उत्पन्न हुई है और उसका प्राचीन नाम 'वधूसर-भार्गव' है। भृगुवंश ब्राह्मण वर्ण में प्राचीनतम है। ऋग्वेद में 'भृगु' तथा बहु वचन 'भृगवः' अनेक स्थलों पर आया है। वैदिक साहित्य में महर्षि भृगु को 'वारूण' अर्थात् वरुण का पुत्र कहा गया है। उनका इतना बड़ा महत्व था कि भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं — 'महर्षीणां भृगु रहं' महर्षि भृगु की दो पत्नियां थीं। पहली का नाम था—'पौलोभा'। पौलोभा के गर्भ में जब च्यवन ऋषि थे उस समय महर्षि भृगु की अनुपस्थिति में एक दिन एक दैत्य उसे हरण कर ले गया। शोक तथा भय के कारण उनका गर्भपात हो गया और शिशु पृथ्वी पर गिर पड़ा; इसीलिये वह 'च्यवन' अर्थात् 'गिरा हुआ' कहलाया। उस शिशु के सूर्य सदृश तेज से वह दैत्य भस्म हो गया। पौलोभा जब रोती हुई शिशु को उठा महर्षि भृगु के आश्रम को लौटीं, तब उनकी अश्रुधारा से एक नदी बह चली, जिसका नाम ब्रह्मा ने 'बधुसरा' रखा। आगे चलकर इसी के किनारे च्यवन ऋषि ने अपना आश्रम बनाया। वर्तमान समय के रिवाड़ी फुलेरा कार्ड रेलवे पर बसी नारनौल नगरी से लगभग ५ मील पश्चिम की ओर यह च्यवनाश्रम था। इसके किनारे आज भी वधूसरा नदी बहती है और उसी के पास एक गाँव है जिसका नाम 'वधूसरी' है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रघुराज सिंह—च्यवन ऋषि के आश्रम का पता लग गया है ?

सीताशरण—जी सिन्हा साहब, और पते के प्रमाण हैं।

सलिलनाथ—अच्छा !

सीताशरण—देखिए पहला प्रमाण है—

'च्यवन गुफा,' दूसरा प्रमाण है 'च्यवन कुंड' और तीसरा प्रमाण है एक मन्दिर, जिसमें च्यवन ऋषि की मूर्ति स्थापित है।

रघुराज सिंह—वाह ! वाह ! इससे बड़े और क्या सुबूत हो सकते हैं।

सलिलनाथ—अकाट्य प्रमाण ! अकाट्य प्रमाण !

सीताशरण—महर्षि च्यवन का विवाह पुराणों में वर्णित राजा शर्याति की राजकुमारी सुकन्या से हुआ। परन्तु तपस्या करते करते च्यवन ऋषि वृद्ध हो गये थे। देवताओं के राजवैद्य अश्विनी कुमार ने आकर औषधियों के जल का एक कुण्ड बनाया। उसमें स्नान कर महर्षि च्यवन पुनः युवा हुए। वही कुण्ड आज इस आश्रम के निकट 'च्यवन कुंड', 'वधूसर कुंड', 'सिंह कुंड' इत्यादि के नाम से विख्यात है। च्यवन ऋषि के युवा होने के पश्चात् राजकुमारी सुकन्या से उनकी जो संतति हुई, वह वधूसर नदी के तट पर 'वधूसरी' बस्ती में रहने लगी। धीरे धीरे वधूसरा नदी और 'वधूसरी' बस्ती ढोसी गांव कहलाने लगा। यह सन्तति पहले 'वधूसर भार्गव, कहलाई और भाषा के बिगाड़ के कारण जिस प्रकार 'वधूसरा' नदी 'धूसरा' और वधूसरी' बस्ती ढोसी गाँव कहलाया, उसी प्रकार 'वधूसर भार्गव' को लोग पहले 'धूसर, और फिर ढूसर कहने लगे।

मल्लिनाथ—अनर्थ है, घोर अनर्थ। श्रेष्ठतम ब्राह्मण महर्षि भृगु के पुत्र महर्षि च्यवन की संतति वधूसर-भार्गव जाति निम्न कोटि के बनिए।

रघुराजसिंह—तभी तो इस मुल्क की यह हालत हो गई।

सीताशरण—एक कवि ने हमारी जाति का सुन्दर वर्णन किया है, सिन्हा साहब, और पंडित जी।

रघुराजसिंह—फर्माइये, फर्माइये।

मल्लिनाथ—हाँ, हाँ, अवश्य, अवश्य सुनाइये।

सीताशरण—कवि कहता है—(गाता है)

परम तपस्वी ऋषि जो कहिए।
च्यवन नाम पुनि तिन को लहिए।
पुनि ऋषि की संतान भई जो।
तिनकों ढूसर कहिए तहँ सो।
ढोसीपुर में बास जो पायो।
तासों ढूसर नाम कहायो।

मल्लिनाथ—सुन्दर वर्णन है। भाषा तो इतनी सरस है कि इसकी टीका की आवश्यकता नहीं।

सीताशरण—इस प्रकार के भार्गव मूल गोत्र में ७ गण १२ पक्ष और ८३९ वर्ग या शाखा गोत्र हैं। वर्तमान काल में इनमें कितने ही हैं और कितने ही नष्ट भी हो गये हैं। वे समस्त भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भेदों और उपभेदों में फैले हुए हैं, जिनके साथ यद्यपि आज वधूसर भार्गवों का कोई संबंध नहीं है तथापि वस्तुतः वे उनके सगोत्री बन्धु हैं।

मल्लिनाथ—उँह ! संबंध आज नहीं है, तो क्या हुआ, हो जायगा।

रघुराजसिंह—बेशक, बहुत जल्दी।

सीताशरण—वधूसर भार्गवों के ७$\frac{1}{2}$ गोत्र हैं। उनका वेद शुक्ल यजुर्वेद, शाखा माध्यंदिन, उपवेद धनुर्वेद, श्रौत सूत्र कात्यायन गृह्य सूत्र, पारस्कर, प्राचीन समयाचारिक या धर्म सूत्र कात्यायन, कुल देवता वरुण, देवियाँ शकरा आदि १८ हैं।

रघुराजसिंह—ओहो। आपने तो बड़ी बारीकी से रिसर्च किया है।

मल्लिनाथ—अवश्य।

सीताशरण—उनमें शिखा के संबंध में एक बड़ी विचित्र बात मिली है।

रघुराजसिंह—कैसी ?

सीताशरण—गोभिल्य गृह्य संग्रह परिशिष्ट में कहा है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दक्षिण कपर्दा वासिष्ठाः आत्रे यास्त्रि कपर्दिनः।
आंगिरस. पंचचूड़ा मुण्डा भृगवः शिखिनोऽन्यों

रघुराजसिंह—इसीलिये आपने चोटी मुड़ा दी है?

मल्लिनाथ—जाति भक्तों को तो शास्त्रों के बचनानुसार ही रहना चाहिए।

सीताशरण—ऐसे प्राचीन 'वधूसर भार्गव' आगे चलकर भी अपना उत्कर्ष रख सके। महाराजा जन्मेजय के राज्य काल में वे ही कुरु देश के राजाओं के पुरोहित थे। उज्जैनी के महाराजा विक्रमादित्य के भी वे पुरोहित बने। महाराजा पृथ्वीराज के वे ही पुरोहित रहे।

मल्लिनाथ—धन्य है! धन्य है!

सीताशरण—और फिर एक बात तो देखिए। जब विदेशी मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया, तब उन्होंने देश की रक्षा के लिए ब्राह्मण वृत्ति छोड़कर क्षात्र धर्म स्वीकार कर लिया और इस सम्बन्ध में उनका पूर्णोत्कर्ष हुआ महाराज हेमू विक्रमादित्य के समय में।

रघुराजसिंह—हाँ, हाँ, यह तो तारीख़ की मशहूर बात है। बदायूनी तक ने हेमू के मुताल्लिक लिखा है।

सीताशरण—सिन्हा साहब, हेमू वधूसर भार्गव ही थे। उन्होंने दिल्ली को जीता था। दिल्ली जीतकर उन्होंने विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की थी और इस प्रकार वे अन्तिम हिन्दू सम्राट माने जाने चाहिएँ। वह तो उनके सेना नायकों ने उन्हें धोखा दिया नहीं तो इस देश पर से विदेशियों की सत्ता का अंत हो ही गया था।

मल्लिनाथ—बोलो महाराजाधिराज राज राजेश्वर सम्राट् हेमू विक्रमादित्य की जय!

सीताशरण—वही परम पवित्र और परम प्रतापी वधूसर भार्गव जाति आज निम्नतम बनियों की जाति समझी जाती है। परन्तु सत्य सदा छिप नहीं सकता। उसने अपनी प्राचीन उत्पति तथा प्राचीन इतिहास को जान लिया है। भार्गव महासभा की स्थापना होगई है। प्रति वर्ष उसके अधिवेशन धूमधाम से हो रहे हैं। इन अधिवेशनों में जाति सुधार पर विचार किया जाता है। नाना प्रकार के प्रस्ताव पास होते हैं। उन पर धारावाहिक भाषण दिये जाते हैं। भार्गवों में पुनः षोडश संस्कार होने लगे हैं। इन बारह वर्षों के एक युग में जो कुछ किया गया है, वह इस जाति के पुनरुत्थान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। वह समय बहुत निकट है सिन्हा साहब और पंडित जी, जब यह जाति भारतवर्ष के ब्राह्मणों में पुनः अग्रगण्य हो भारतवर्ष को सच्चे ज्ञान का प्रकाश दिखाने में समर्थ हो सकेगी। इस समय देश को सच्चे ज्ञान की ही सबसे अधिक आवश्यकता है।

मल्लिनाथ—बोलो भार्गव जाति की जय!

[कुछ देर निस्तब्धता]

रघुराजसिंह—(मल्लिनाथ से) अच्छा, पंडितजी, अब आप अपनी जाति की तरक्क़ी का हाल बताइये?

मल्लिनाथ—(गला साफ़ करते हुए) हमारी जाति उत्थान के उस शिखर पर तो अब तक नहीं पहुँच सकी है, जिस पर आप लोगों की जातियाँ इस एक युग में ही पहुंच गईं, किन्तु उत्कर्ष का कार्य आरंभ अच्छी प्रकार हो गया है, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

रघुराजसिंह—हाँ, इसमें तो क्या शक हो सकता है?

मल्लिनाथ—हम लोगों ने सबसे पहले तो अपनी जाति के नाम में ही संशोधन किया। पाणिनी के व्याकरण के अनुसार नाई शब्द का कोई अर्थ ही नहीं निकलता था।

सीताशरण—सर्वथा नहीं।

मल्लिनाथ—और निरर्थक शब्द संस्कृत के सदृश भाषा में हो नहीं सकता।

सीताशरण—कदापि नहीं।

मल्लिनाथ—हमने नाई शब्द का न्यायी शुद्ध रूप बना दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रघुराज सिंह—बिलकुल ठीक, लफ़्ज में इतना रद्दोबदल तो आसानी से हो सकता है।

सीताशरण—न्यायी शब्द ही बिगड़ कर नाई बन गया है, इसमें सन्देह का स्थान ही नहीं।

मल्लिनाथ—फिर हमने अपने आदि पुरुष नाभिक को ढूंढ़ निकाला और जब पीढ़ियों का मिलान किया, तो स्पष्ट हो गया कि नाभिक विष्णु जी का भाई था।

रघुराज सिंह—जब यह पता लग गया, जब तो फिर इसके दूसरे सुबूतों की ज़रूरत नहीं रह सकती कि नाई दर असल में न्यायी ब्राह्मण हैं, क्योंकि विष्णु तो शूद्र होने से रहे।

सीताशरण—बिलकुल ठीक।

मल्लिनाथ—इसके पश्चात् हमने क्षौर कर्म किस जाति का कर्म है, इसका पता लगाया और हमें अथर्ववेद में लिखा मिल गया—येन वाह्मणो वपत्। अर्थात् उस्तरे से ब्राह्मण लोग क्षौर करें। अतएव क्षौर कर्म ब्राह्मण कर्म है।

रघुराज सिंह—वाह! वाह! वाह! वाह अथर्ववेद के सूत्र से ज़्यादा बड़ा सुबूत और कहाँ मिल सकता है?

मल्लिनाथ—इसीलिये सिन्हा साहब और पंडित जी, उस्तरे को हम लोगों ने यज्ञोपवीत के साथ बांधना आरंभ किया है। (अपनी यज्ञोपवीत में बंधे हुए उस्तरे को दिखा कर) इस प्रकार।

रघुराज सिंह—(विचार करते हुए) यह तो ठीक है, लेकिन इससे··इससे किसी वक्त एक्सीडेंट का डर है।

मल्लिनाथ—नहीं, नहीं, हम लोग ऐसे उस्तरे बांधते हैं जिनमें धार नहीं रहती।

रघुराज सिंह—तब··तब ठीक है। तब कोई हर्ज नहीं।

मल्लिनाथ—हमारी सभा न्यायी ब्राह्मण सभा के नाम से स्थापित हो गई है। हमारी जाति में भी यज्ञोपवीत होने लगे हैं। हमारे एक कवि ने भी हमारी सारी कथा पर सुन्दर कविता की रचना की है।

सीताशरण—अवश्य सुनाइये। अवश्य सुनाइये।

रघुराज सिंह—ज़रूर, ज़रूर।

मल्लिनाथ—भाषा की ओर ध्यान न दीजियेगा वह तो ऐसी है जिसे हमारी जाति के लोग उसे अच्छी प्रकार समझ लें। भावों पर लक्ष्य रखिये। कवि कहता है—गाता है—

एक समय की बात को सुनलो पंच सुजान।
महादेव कैलाश पर समझाते थे ज्ञान।

एक समय श्री महादेव ने पर्वत कैलाश पर पंचायत की, सब देवता बुलवाये गये और सबने अच्छी अच्छी राय दी।

नाई जन्म कहां से पाई सुनो सब जगत के भाई
शिव के पुत्र भये विष्णु नाभिक जिनके भाई
विष्णु का पोता ब्रह्मा जानो नाभिक बेटा नाई।
इसी हिसाब के जोड़ लगाया नाई के ब्रह्मा भाई।
नाई नाई सब कहैं नाई हैगा कौन?
नाभिक ब्रह्मा ने कही शंकर जी के मौन।
हे भाइयो फिर पूर्वजों के तुल्य तम ज्ञानी बनो।
भूलो न अनुपम आत्मगौरव धर्म के ध्यानी बनो।
करदो चकित फिर विश्व को अपने पवित्र प्रकाश से।
मिट जाय सारा तम तुम्हारी जाति के आकाश से।
विद्या भूषण तजा तुम्हीं ने किसको दोष जमाने में।
किया बहाना यजमानी का लगा आपनी आने में।
आज समझ मूरख तुमको चिलमें लोग भराते हैं।
यज्ञ वपन का कर्म तुम्हारा धर्म शास्त्र बतलाते हैं।
कहो भइया अब कुछ समझे कैसी कथा सुनाई।
क्षौर कर्म की महिमा देखो वेदों ने जो गाई।

धीरे धीरे यवनिका पतन

उपसंहार

स्थान—एक नगर के मकान में एक कमरा
समय—सन्ध्या

[दृश्य वैसा ही जैसा मुख्य दृश्य में था। अन्तर इतना ही है कि दीवालें और किवाड़ इत्यादि मैले हो गये हैं। फरनीचर बेमरम्मत है। कालीन इधर उधर से फट गया है। बिजली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की बत्तियों के शेड और पंखों पर गरदा है। कुछ बत्तियों में बल्ब भी नहीं है। रघुराज सिंह, सीताशरण और मल्लिनाथ कुर्सियों पर बैठे हुए हैं। उनकी अवस्था से जान पड़ता है कि दृश्य की घटना को १०,१२ वर्ष बीत चुके होंगे। तीनों के काले बालों में सफ़ेदी आ रही है। वेष भूषा तीनों की मुख्य दृश्य के सदृश है पर मुख हतोत्साह हैं।]

सीताशरण—आज हमारे संकल्प के दूसरे युग का अंत होता है। इस युग का वृत्त बताइये सिन्हा साहब ?

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

रघुराजसिंह—अकेले में तो हम लोगों को एक दूसरे के सामने सच्ची हालत पेश करनी चाहिये ?

मल्लिनाथ—इसमें क्या संदेह है।

रघुराजसिंह—तो मुझे तो अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि इस युग में हमारी कायस्थ जाति ने तरक़्क़ी नहीं की जैसी पहले युग में की थी।

सीताशरण—हमारी भार्गव जाति की भी वही दशा है सिन्हा साहब।

मल्लिनाथ—और हमारी न्यायी जाति की तो उससे भी बुरी। हर एक कायस्थ अपने को तो क्षत्रिय मानता है, चाहे दूसरे क्षत्रिय उसे क्षत्रिय न मानें, प्रत्येक भार्गव अपने को तो ब्राह्मण मानता है चाहे दूसरे ब्राह्मण न मानें, पर हमारी जाति न्यायी भाइयों में तो अधिकांश न्यायी भाई ही अपने को ब्राह्मण नहीं मानते। इतना ही नहीं, कुछ जब यज्ञोपवीत पहन पहन कर क्षौर कर्म करने गये, हजामत बनवाने वालों ने कहा कि हम ब्राह्मणों से हजामत न बनवायँगे तब उन्होंने अपने यज्ञोपवीतों को उतार दियासलाई की डिबियों में बन्द करके रख लिया है। शायद सभा में पहनकर आयेंगे।

[तीनों कुछ देर चुप रहते हैं। निस्तब्धता रहती है]

रघुराजसिंह—बात यह है कि इस वक़्त मुल्क बिलकुल ही ग़लत और बहके हुए रास्ते पर चल रहा है। गान्धी ने स्वराज्य स्वराज्य चिल्ला चिल्लाकर यहां के लोगों को और किसी काम का ही नहीं रखा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब एक हो जाओ, अछूत तक मिल जाओ, इस तरह की वाहियात बातें कही जा रही हैं। हिन्दू मुसलमान भी मिलकर एक हिन्दुस्तानी जाति बनाओ, यह हल्ला मचा हुआ है। कुछ दिन में कहा जायगा तमाम दुनियां की आदमी जाति की एक जाति क़ायम करो। बेवक़ूफ़ी की भी कोई इन्तहा है।

सीताशरण—आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं सिन्हा साहब। देखिये न जाति सभाओं के अधिवेशन तक में कोई नहीं आते।

[कुछ देर फिर निस्तब्धता]

रघुराज सिंह—इस हालत में भी तब्दीली होगी, ज़रूर होगी।

सीता शरण—इसमें कोई सन्देह है।

रघुराज सिंह—बस थोड़ा सब्र रखना चाहिए। गांधी की आंधी निकल जाने दीजिये फिर सब ठीक हो जायगा।

सीताशरण—धैर्य का फल सदा मीठा होता है।

मल्लिनाथ—(विचारते हुए) परन्तु··परन्तु जहां तक नाइयों का सम्बन्ध है, वे तो··वे तो कभी भी इसे··न मानेंगे कि वे न्यायी ब्राह्मण हैं। इसीलिए··· इसीलिये सिन्हा साहब और पंडित जी मैंने तो दूसरी एक संस्था के पास सदस्य होने के लिए प्रार्थनापत्र भेजा है।

सीताशरण—किस संस्था के पास पण्डित जी ?

रघुनाथसिंह—हां, किस जमात के पास पण्डित जी ?

मल्लिनाथ—(गला साफ़ करते हुए) जाति-पाँति तोड़क मण्डल के पास।

सीताशरण—(चिल्लाकर) जाति-पाँति तोड़क मण्डल के पास !

रघुराज सिंह—(चिल्लाकर) जाति पाँति तोड़क मण्डल के पास !

[रघुराज सिंह और सीताशरण मल्लिनाथ की ओर घूर कर देखते हैं। मल्लिनाथ दोनों की ओर न देखकर दूसरी ही तरफ़ देखने लगता है।]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विजय-पथ

डाक्टर रामकुमार वर्मा एम. ए., पी-एच. डी.

जीवन न दीन बने।
विरह के क्षण में मिलन-सा चिर नवीन बने।
जीवन न दीन बने।

१--लहर चक्राकार कितनी दूर बहती चली ;
तरलता के पृष्ठ पर इतिहास कहती चली,
"मैं मिटी मिटकर बनी सौ बार कटकर रही ;
किन्तु तट के नमित उर से ही लिपटकर रही,
कौन रोके ? जब कि तू भी यों प्रवीन बने।
जीवन न दीन बने।

२--आज संध्या निज सुनहली चतुरता में सनी ;
क्षितिज के कर में प्रणय की आरती सी बनी,
पवन की निशि-फूँक से बुझकर तिमिर में गिरी ;
किंतु मेरे नयन में फिर स्वप्न बन कर तिरी,
इस प्रकाशित सत्य में क्यों मन मलीन बने।
जीवन न दीन बने।

३—यह किरण—शशि की पुकार—यहीं धरा पर बसी;
ज्योति की छवि गूंथियों से शून्य ही में कसी,
जब कि मेरे कुंज में इस मौलश्री से मिली,
एक कलिका दिवस भर के स्वप्न सोचे खिली,
इस मिलन के गीत में तू आज बीन बने।
जीवन न दीन बने।

४—ये बड़े गिरिशृंग जिनमें उच्चता उठ गई;
नील नभ की शून्यता जिनसे बनी भूमयी,
वे बुलाते हैं तुझे—तू दृष्टि से उठ, अरे;
सांस की दो शक्तियों के बीच है—तू डरे ?
तू बनाये विश्व, तो क्या स्वयं भी न बने ?
जीवन न दीन बने।*

---

* आल इण्डिया रेडियो दिल्ली के सौजन्य से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय संस्कृति की नव चेतना

सर पी. एस. शिवस्वामी अय्यर

इस बात से सभी सहमत होंगे कि भारतीय राष्ट्र नव जागरण और नव चेतन अवस्था के बीच से निकल रहा है। भारत में ब्रिटिश सत्ता के क़ायम होने के बाद जब से हम पश्चिमीय दुनिया के संसर्ग में आये, तब से हमारे देश में राष्ट्रीयता का वर्तमान विकास प्रारम्भ हुआ। हमारी नव चेतना यूरोपीय संस्कृति-और सभ्यता के संसर्ग में आने के बाद शुरू हुई। सन् १८३५ में भारत में शिक्षापद्धति के सम्बन्ध में लार्ड मैकाले ने अपना ख़रीता पेश किया और उसे विलियम बैंटिङ्क की सरकार ने स्वीकार कर लिया। पूर्वीय संस्कृति के सम्बन्ध में लार्ड मैकाले का दृष्टकोण बेहद अनुदार था, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस यूरोपीय शिक्षापद्धति ने भारत के अन्दर नया प्राण फूँका। सन् १८५४ में लार्ड हैलीफ़ैक्स के शिक्षा सम्बन्धी प्रसिद्ध ख़रीते के बाद सन् १८५७ में भारत में कई विश्वविद्यालय क़ायम किये गये। हालाकि महात्मा गान्धी ने भारतीय विश्वविद्यालयों के काम को बड़ा असंतोषजनक बताया है, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो कुछ इन विश्वविद्यालयों ने किया है, उसकी थोड़ी बहुत प्रशंसा तो करनी ही चाहिए। यदि ये विश्वविद्यालय देश के अन्दर से अशिक्षा को दूर करने में कामयाब न हो सके तो इसकी ज़िम्मेवारी उन ग्रेजुएटों पर नहीं है जो इन विश्वविद्यालयों से निकले हैं, बल्कि उस सरकार पर है जिसने अशिक्षा को दूर करने के लिए इन विश्वविद्यालयों को उचित साधन नहीं दिए।

देश में राष्ट्रीय जागरण ने अनेक रूपों में विकास पाया। शिक्षा और धार्मिक क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों ने दो तरह की प्रतिक्रिया पैदा की। लोगों का झुकाव ईसाई धर्म की ओर बढ़ा और ईसाई मिशनरियों की समाज सेवा के प्रति लोगों की प्रसंशा के भाव पैदा हुए। दलित वर्ग के प्रति ईसाई मिशनरियों ने जो कुछ किया, उसी से हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रति लोगों के झुकाव में स्पर्धा आई। हिन्दू समाज के अन्दर आत्मरक्षा की भावना प्रबल हो उठी। पढ़े लिखे लोगों में हिन्दू धर्म, हिन्दू साहित्य और सामाजिक संस्थाओं को ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने का भाव जागा। हमारे राष्ट्रीय जीवन में यह एक अजीब बात है कि हम अपने धर्म को उस समय तक कोई अधिक मूल्य नहीं देते, जब तक कि उन पर पश्चिम के विद्वान प्रशंसा की मुहर नहीं लगा देते। सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक, मैक्समूलर और पश्चिम के अन्य प्राच्य विशारदों ने अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त भारतीयों का ध्यान संस्कृत साहित्य के सौन्दर्य और उसमें छिपे हुए रत्नों की ओर दिलाया। विदेशी हुकूमत के कारण जनता के अन्दर यह भावना पैदा हो गई थी कि वे अंग्रेज़ी रहन-सहन और अंग्रेज़ी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रस्म रिवाज़ को अपनाते जाते थे और अपने देसी तरीक़े को हिक़ारत की नज़र से देखने लगे थे। कोई राष्ट्र जब तक उसे अपने प्राचीन गौरव का अभिमान नहीं होता, जब तक उसमें अन्य भावनाओं और अन्य परिस्थितियों के साथ समझौता करने की वृत्ति नहीं होती, तब तक उसका राष्ट्रीय जीवन व्यापक नहीं बन सकता।

भारतीय जागृति का सबसे अधिक प्रभाव राजनैतिक क्षेत्र पर पड़ा। सदियों से गुलाम देश के लिए यह स्वाभाविक भी था। राजनैतिक जागृति का श्री गणेश राजा राममोहन राय से शुरू हुआ। उसके बाद सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, सर फ़ीरोज़शाह मेहता, गोखले, तिलक और अनेक पुरअसर नेता पैदा हुए। इन सब में अन्तिम और सब में महान महात्मा गान्धी हैं।

राजा राममोहन राय द्वारा प्रारम्भ किया हुआ ब्रह्म समाज आन्दोलन और पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के शुरू किये हुये समाज सुधार आन्दोलन ने देश के अन्दर हलचल मचा दी। स्वामी दयानन्द का आर्य समाज आन्दोलन और श्रीमती बेसेन्ट का थियासाफ़िकल आन्दोलन भी नव चेतन के दृष्टिकोण से अपना विशेष स्थान रखते हैं। मिसेज़ बेसेन्ट ने हिन्दू धर्म के प्रति पढ़ी लिखी जनता में आदर का भाव पैदा किया। स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन के दूसरे कार्यकर्त्ताओं ने देश के अन्दर आध्यात्मिक आन्दोलन की बाढ़ पैदा कर दी। रामकृष्ण परमहंस और केशवचन्द्र सेन के व्यक्तिगत जीवन ने इस ज़माने की पढ़ी-लिखी जनता पर अपना बेहद प्रभाव डाला।

औद्योगिक क्षेत्र में जमशेद जी नसरवान टाटा जैसे पराक्रमी व्यक्तियों ने नई सम्भावनायें पैदा कर दीं। चारों ओर औद्योगिक और आर्थिक सम्मेलन होने लगे और देश में आर्थिक संगठन की पुख़्ता बुनियादें डालने की बात सोची जाने लगी।

हालांकि इस नई जागृति में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उथल-पुथल मची, फिर भी विज्ञान, साहित्य और ललित कला के क्षेत्रों में अधिक मौलिक काम नहीं हुआ। विज्ञान के क्षेत्र में सर जगदीश चन्द्र बोस, सर सी० वी० रमन, डाक्टर मेघनाथ साहा जैसे प्रसिद्ध और उल्लेखनीय व्यक्ति पैदा हुए और उनके द्वारा प्रभावित होकर अनेक युवक वैज्ञानिकों ने बहुत सी मौलिक खोजें कीं। मौलिक खोजों के सम्बन्ध में सबसे पहला क़दम कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उठाया और उसके बाद दूसरे विश्वविद्यालयों ने भी इस दिशा में अपने पैर आगे बढ़ाये।

साहित्य और कला जिस वातावरण में फूलती और फलती हैं, वह वातावरण हमारे देश के साहित्यकारों और कलाकारों को नहीं मिला। भारतीय भाषाओं की पिछड़ी हुई दशा, जनता के अन्दर शिक्षा की कमी और देश में सुसंस्कृति का अभाव आदि कारण हैं, जिससे हमारे देश में कला पूरी तरह नहीं पनप सकी। प्राचीन कला राजाओं के आश्रय में ही फूलती फलती थी। किन्तु ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ होने के साथ-साथ कला को राजाओं का आश्रय मिलना बन्द हो गया। जनता के अन्दर भी कलात्मक भावना नहीं पैदा हुई, जो कला के मूल्य को समझती और जिससे कलाकारों को प्रोत्साहन मिलता।

साहित्यिक नव जागरण में सब में प्रमुख स्थान भारत में महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का है। उनकी रचनाओं से बंगला भाषा संसार की प्रमुख भाषाओं में गिनी जाने लगी। हममें से अधिकांश बंगला से अनभिज्ञ हैं फिर भी रवीन्द्रनाथ के अंग्रेज़ी अनुवादों ने अंग्रेज़ी में गद्य और पद्य के गौरव को बढ़ाया है। रवीन्द्रनाथ के साहित्य से अंग्रेज़ी भाषा बेहद समृद्धिशाली हुई है।

निर्माण कला के क्षेत्र में हम यह दावे के साथ नहीं कह सकते कि हमने वैसी ही कलात्मक चीज़ें बनायी हैं, जो मुग़ल निर्माण कला की तुलना कर सकें। हिन्दुस्तान में निर्माण कला ने धार्मिक इमारतों के रूप में अपना आधार पाया है। उत्तर भारत में भी ऐसी धार्मिक इमारतें नहीं हैं, जो दक्षिण भारत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के द्रविड़ मन्दिरों का मुक़ाबला कर सकें। किन्तु दक्षिण भारत में भी निर्माण कला की ऐसी कोई नयी चीज़ नहीं बन सकी, जो पुरानी इमारतों की तुलना कर सकती। इस सम्बन्ध में जो कुछ भी हुआ है वह पुराने मन्दिरों के पुनः निर्माण या उन्हीं की नक़ल हुई है और इसके लिए नट्टूकोट्टाई चेट्टी सम्प्रदाय धन्यवाद का पात्र है। नये बने हुए महाराजाओं के महल निर्माण कला के सुन्दर नमूने हैं। किन्तु उनमें भारतीय प्रतिभा कितनी है यह मैं नहीं कह सकता।

दक्षिण भारत के मन्दिरों में जो मूर्त्तियां दिखायी देती हैं, वे इस बात को साबित करती हैं कि भारतीय शिल्पी में कितनी अद्भुत शक्ति थी। हमारे देश में संगमरमर की कमी के कारण हमें शिल्प कला के इतने अधिक सुन्दर नमूने नहीं मिलते, जितने कि यूरोपीय देशों में मिलते हैं। यहाँ ग्रेनाइट पत्थर बहुत तरह के होते हैं, किन्तु वह संगमरमर की अपेक्षा खुदाई के काम के लिए बेहद सख़्त होते हैं। फिर भी बेलूर, सोमनाथ और दूसरी जगहों के मन्दिरों को देखकर हम यह कह सकते हैं कि हमारे शिल्पियों ने अपनी कला में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। कोई आदमी यह नहीं कह सकता है कि हमारे बड़े-बड़े मन्दिरों के निर्माण और उनकी सुन्दर पच्चीकारी में कितने वर्ष ख़र्च हुए होंगे। आज यदि शिल्प कला की इतनी सुन्दर चीज़ें हमें अपने देश में दिखाई देती हैं, तो इसका एक बहुत बड़ा कारण हमारी ग़रीबी है।

जहाँ तक चित्रकला का सम्बन्ध है उनकी उन्नति जनता की संस्कृति, समृद्धि और राजाओं की दान वृत्ति पर निर्भर करती है। दक्षिण भारत में चित्रकला के नव जागरण में सब में प्रमुख नाम रवि वर्मा का आता है। चित्रकला के नव जागरण में, बँगला चित्रकला में एक नई प्रणाली आई। मुझे दुःख है कि इस नई प्रणाली को हम पूरी तरह से नहीं समझ पाये। बंगाल के नवीन कलाकार रंगों को अधिक महत्व नहीं देते। वे बंगला चित्रकला में मंगोल रूप रेखा बना देते हैं। उसमें आँखों को बेहद प्रधानता दी जाती है। अपने चित्रण में बंगाल के कलाकार बंगाली स्त्री पुरुषों के सौन्दर्य के साथ समुचित न्याय नहीं करते। अनेक कलाकारों के चित्र फीके और धुले हुए मालूम पड़ते हैं और साधारण आंखों को वे इतना आकर्षित नहीं करते जितना यूरोपियन चित्र। चित्रकला के आलोचकों का एक वर्ग है, जो इस बात पर ज़ोर देता है कि भारतीय कलाकारों को चित्रकला में एक विशेष प्रणाली अपनानी चाहिए। उनकी राय में भारतीय कलाकारों की अपनी एक विशेष पद्धति है, जिसके प्रति भारतीय जनता की विशेष अभिरुचि है। हमें अपनी कला को कटघरों में नहीं बन्द करना चाहिए। जो कला अधिक व्यापक और अधिक समृद्ध है, उसको हमें अपनाना चाहिए। हां चित्रों के विषय और उनकी पद्धति, भारतीय धर्म और भारतीय संस्कारों से ही चुनने चाहिए। इङ्गलैण्ड की हर एक म्यूनिसिपैल्टी को अपने यहाँ के कला संग्रहालयों के लिए अभिमान है। हमारे यहाँ की ग़रीब म्यूनिसिपैल्टियों को मौलिक चित्रों के संग्रह करने में आर्थिक कठिनाई है। किन्तु यूरोपीय और भारतीय चित्रों की सुन्दर प्रतिलिपियाँ थोड़ा सा ख़र्च करके ही इकट्ठा की जा सकती हैं। इस तरह के संग्रह हमारे कलाकारों के लिए बहुत उपयोगी साबित होंगे। जनता उसे देखकर ख़ुश होगी, कला के सम्बन्ध में जनता की रुचि बढ़ेगी और कलाकारों को इस तरह नई नई प्रणाली समझने का अवसर मिलेगा। यह दुख का विषय है कि हमारे यहाँ के धनाढ्य व्यक्तियों ने कला के इस तरह के संग्रहालयों को अभी तक कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। भारतीय कला में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए धन की बेहद ज़रूरत है। जब तक हमारे कलाकार आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त न होंगे तब तक उन्हें अपनी कला की उन्नति के लिये अनुकूल वातावरण न मिलेगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसलाम के सर्वश्रेष्ठ सन्त अब्दुल क़ादिर जीलानी

शम्शुलउलेमा डाक्टर एम. हिदायत हुसेन एम. ए., पी-एच. डी.

बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि संस्कृति अङ्क के लिये यह लेख भेजने के बाद ही डाक्टर साहबकी हृदयरोग से अचानक मृत्यु हो गई। डाक्टर साहब प्राच्य विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे और रायल एशियाटिक सोसायटी के प्रसिद्ध अन्वेषक थे। स्वर्गीय डाक्टर साहब के परिवार के साथ हमारी हार्दिक समवेदना है।

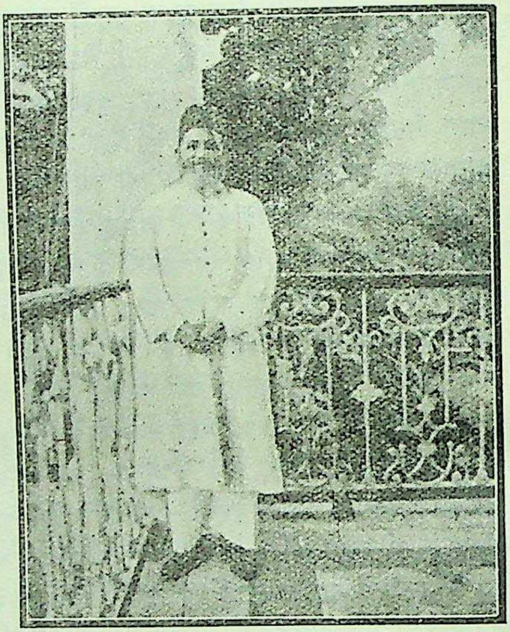

हज़रत शेखमुही-उद्दीन अब्दुल क़ादिर अल हसनी अल हुसेनी अल जीलानी कासपियन समुद्र के दक्षिण में जीलान ज़िले के निफ़ नामक शहर में सन् १०७७ ई० में पैदा हुये थे। सन् १०९५ ई० में वे शिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से बग़दाद आये। सन् ११०९ ई० में वे अबु ज़करिया-अहिया-अल तबरीज़ी के मदरसे में भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिये भरती हो गये। वहाँ अबू-सय्यद- अल मुबारक–अल मुक़र्रमी के अधीन उन्होंने इसलामी व्यवस्था की शिक्षा प्राप्त की। कई वर्ष उन्होंने बग़दाद के आस-पास खंडहरों में और रेगिस्तानों में बिताए। उनका जीवन फ़क़ीरों का सा सादा जीवन था। अनेक विश्वसनीय सूत्रों से यह पता चला है कि उन्होंने ११ वर्ष बग़दाद के बाहर एक सूनी मीनार में बिताए। जिसे उसके बाद से बुर्ज-अल-अज़मी या ईरानी मीनार कहा जाता है। एक दिन जब वे वहां अल्लाह के ध्यान में मग्न थे शैतान ने तरह-तरह के भुलावे देकर उन्हें फँसाना चाहा। एक बार कुल प्रकाश छा गया और ग़ैब से एक आवाज़ सुनायी दी—"मैं तेरा मालिक हूँ, और तुझे उन सब चीज़ों के खाने की इजाज़त देता हूँ जिन्हें मैंने दूसरों के लिये मना किया है।" संत ने फ़ौरन कहा—'दूर हट ख़ुदा के दुशमन! सिवा एक अल्लाह के और किसी दूसरे में न शक्ति है न बल।" फ़ौरन ही वह प्रकाश लोप हो गया। इसके बाद शैतान ने फिर कहा, "अपनी धार्मिकता और अपनी शिक्षा के कारण तू मेरे धोखे से बच गया।" बाद को उनसे लोगों ने पूछा हज़रत आपने यह कैसे मालूम कर लिया कि वह आवाज़ महज़ धोखा थी? सन्त ने जवाब दिया हज़रत मुहम्मद के पैग़ाम के अनुसार सिवाय उस एक परवरदिगार के और किसी दूसरे में यह ताक़त नहीं कि वह प्रकृति के क्रम को बदल दे।

सन् ११२७ ई० में उन्हें अपनी आत्मा के अन्दर यह प्रेरणा अनुभव हुई कि संसार और मानवता की ख़िदमत और मार्ग प्रदर्शन के लिये उन्हें अपनी शक्ति लगाना चाहिए। इस प्रेरणा के अनुसार वह बग़दाद लौट आये। अल-मुक़र्रमी ने उन्हें अल-अज़ाज के मदरसे की सारी ज़िम्मेवारी सौंप दी। हज़रत जीलानी का नाम और यश चारों ओर फैल गया और मैसोपोटामिया, ईरान, मिस्र आदि बाहरी देशों के विद्यार्थियों के गिरोह उनके चरणों के निकट शिक्षा प्राप्त करने के लिये आने लगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मदरसे की इमारत को बढ़ाना पड़ा क्योंकि इतने सब विद्यार्थी उसमें समा नहीं सकते थे। जनता से चन्दा करके आस पास की ज़मीन ख़रीद ली गई। इसके बाद हज़रत ने जनता के अन्दर अपना प्रचार करना शुरू किया। उनकी सभाओं में पहले तो बहुत थोड़े लोग आया करते थे मगर बाद में उनके श्रोताओं की तादाद इतनी बढ़ी कि शहर के अन्दर कोई ऐसी जगह न थी, जहां सभायें हो सकतीं। चुनांचे उन्हें शहर के फाटक के बाहर जाकर सभा करनी पड़ती। उनके प्रमुख शिष्यों के लिए एक ख़ानक़ाह भी बनवाई गयी। वह हफ़्ते में तीन बार अपना प्रचार करते थे, जुमे (शुक्रवार) के दिन सुबह, मदरसे में सोमवार की शाम को और ख़ानक़ाह में इतवार की सुबह। उनकी सभाओं में सल्तनत के बड़े बड़े उमरा भी आया करते थे। उनके अनेक शिष्यों में बहुत से बाद में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध संत हुए। तमाम इसलामी दुनियां के लोग उनसे तरह-तरह की बातें लिखकर पूछते थे। इन सब बातों का वह जवाब भी देते थे। पूरे ४० वर्ष तक उन्होंने अपना प्रचार कार्य किया और शिक्षा भी दी।

हज़रत अहमद-सरहन्दी और मुजद्दिद-अल फ़सानी का नाम मशहूर है जो सन् १५६३ ई० में पैदा हुए और सन् १६२४ ई० में मरे। वे अपनी पुस्तक 'मक़तूबाद' की तीसरी जिल्द मक़तब के २५१ सफ़े में कहते हैं—हज़रत अली की मृत्यु के बाद अध्यात्मिक ज्ञान के हक़दार हज़रत इमाम हसन हुए। इमाम हसन के बाद इमाम हुसैन हक़दार हुए। फिर एक दूसरे के बाद १२ इमाम हुए जो पहुँचे हुए सन्त थे। उनको विरसे में यह अध्यात्मिक महानता मिली थी। प्रकाश जिस तरह केन्द्र से उठ कर चारों तरफ़ जाता है, उसी तरह इमाम केन्द्र हैं और सन्त लोग वातावरण हैं और सन्त अपने अध्यात्मिक जीवन के लिए इमाम के ऊपर निर्भर होते हैं। यह विरासत शेख़ अब्दुल-क़ादिर जीलानी के समय तक रही कि जिनको इमामों की कृपा से अध्यात्मिक महत्व प्राप्त हुआ। उसके बाद शेख़ अब्दुल-क़ादिर-जीलानी स्वयं अध्यात्मिक केन्द्र बन गये। जो व्यक्ति अध्यात्मिक जीवन की आकांक्षा करते थे, उनकी आकांक्षा हज़रत-अब्दुल-क़ादिर जीलानी द्वारा पूरी होती थी। हज़रत जीलानी कहा करते थे कि "मुझसे पहले सन्तों का सूर्य डूब गया, किन्तु मेरा सूर्य पूर्णता के साथ क्षितिज पर चमकता रहेगा।" उन्होंने आगे चल कर ऐलान किया "मेरी बुनियादें हर वली अल्लाह (सन्त) के कन्धों पर हैं।" अब्दुल-हक़-मुहद्दिस देहलवी अपनी पुस्तक 'अक़बरुल-अख़यार' के पृष्ठ १० में लिखते हैं कि "उसके बाद दुनिया के सब सन्तों ने अपने मस्तक हज़रत जीलानी के प्रति श्रद्धा से झुकाये और उनकी महत्ता को स्वीकार कर लिया।

इब्न अरबी, जो सन् ११६५ ई० में पैदा हुए थे और सन् १२४० ई० में मरे, अपने ग्रन्थों में लिखते हैं कि "हज़रत जीलानी अपने समय के ध्रुव तारा थे, वह अपने वक़्त के क़ुतुबतुमा थे, वे सूफ़ियों के हाकिम थे, वे लोगों का फ़ैसला करने वाले थे।" इब्न अरबी की ही पुस्तक में लिखा हुआ है कि हज़रत जीलानी ने अपनी माँ के गर्भ में ही अल्लाह की परिस्तिश आरम्भ कर दी थी और उनका रुतबा सिवा हज़रत मुहम्मद के और सब सन्तों से ऊंचा था।

(१) ताजुद्दीन-अल सुबकी जिनकी सन् १३६९ ई० में मृत्यु हुई, अपनी पुस्तक तबाक़त-उल-क़ुबरा के भाग दूसरे के पृष्ठ ७६ में लिखते हैं कि एक लड़का जो लूला, लँगड़ा, लकवा का मारा हुआ, अन्धा और कोढ़ी था, हज़रत जीलानी के सामने लाया गया। हज़रत जीलानी ने कहा, "अब ख़ुदा के हुक्म से उठ कर खड़ा हो जा।" लड़का फ़ौरन उठकर खड़ा हो गया। वह बिलकुल तन्दुरुस्त था और उसकी सारी बीमारी भाग गई थी।

(२) एक मर्तबा दजला नदी में बड़ी भयंकर बाढ़ आई, बग़दाद के बाशिन्दों को डर हुआ कि कहीं शहर न डूब जाय। वह सब हज़रत जीलानी के पास आये और उनसे प्रार्थना करने लगे कि वह उनकी रक्षा करें। हज़रत जीलानी फ़ौरन दजला के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किनारे गये और अपनी लाठी को ज़मीन में रखकर कहने लगे 'बस यहीं तक' उसी क्षण से नदी का पानी घटने लगा।

हज़रत जीलानी ने सन् ११६८ ई० में इस असार संसार को छोड़कर जन्नत की ओर कूच किया। हज़रत की लिखी हुई अनेक पुस्तकें मौजूद हैं।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् ब्राकेल मैन अपनी पुस्तक 'गेश्चिस्त-देर-अरेबिश्चेन-लिटरेचर' जिल्द पहली के ४३५ वें पृष्ठ में हज़रत जीलानी की लिखी हुई ऐसी २४ पुस्तकों की हस्तलिपियों का वर्णन करता है, जो अब तक यूरोप के भिन्न-भिन्न पुस्तकालयों में मौजूद हैं। जहां तक मैं जानता हूं इन पुस्तकों में केवल ५ पुस्तकें मिस्र और हिन्दुस्तान में अब तक छपी हैं।

(१) फ़ुतुहुल ग़ैब—यह सन् १८८१ ई० में अब्दुल हक़-देहलवी द्वारा फ़ारसी टीका के साथ लखनऊ से छपी। यही पुस्तक मिस्र में भी बहजातुल-असरार के हाशिए में छपी। मिस्र में उसके छपने की तारीख़ सन् १३०४ हिजरी है।

(२) ग़ुनयात-अत्‌-तालिबीन—दोनों जिल्द हिजरी १२८८ और १३२२ में कैरो में छपीं। इस पुस्तक में मज़हबी कर्तव्यों का ज़िक्र है और उनमें अनेक धार्मिक बातों का वर्णन है। ब्रह्मचर्य के नियमों का भी उनमें उल्लेख है।

(३) अल - फ़तूर - रब्बानीवल फ़ैद-उस-सुभानी—यह पुस्तक भी सन् ११२८ हिजरी में कैरो में छपी। इसके अन्दर प्रार्थना और उपदेश भरे हुए हैं, जिनमें दया, दान, नम्रता और ग़रीबी की प्रशंसा की गई है। मारगोलियथ के अनुसार इस पुस्तक के दूसरे हिस्से के उपदेश इसलामी साहित्य के कुछ सर्वोत्तम उपदेश हैं।

(४) बशीरुल ख़ैरात—यह पुस्तक भी कैरो में सन् १२८८ हिजरी और सिकन्दरिया में सन् १३३२ हिजरी में छपी। इसमें हज़रत मुहम्मद की शान में कुछ प्रार्थनाएं हैं।

(५) अल-फ़ुयु-ज़ात-अर्रबानियां-फ़ी अवराद-अल-क़ादरिया—यह प्रार्थनाओं का संग्रह है। कैरो में यह पुस्तक सन् १३०३ हिजरी में छपी।

हज़रत जीलानी की बहुत सी शिक्षाएं उनकी पुस्तक फ़ुतुहुल-ग़ैब में दर्ज हैं। इस पुस्तक में ७८ अध्याय हैं और इन अध्यायों में सूफ़ीवाद के विविध पहलुवों पर रोशनी डाली गयी है। कुछ अध्यायों के शीर्षक ये हैं—(१) अध्यात्मिक मृत्यु, (२) माया की ओर से उदासीनता, (३) दिल से चिन्ताओं को निकालना, (४) ख़ुदा के निकटतर पहुंचना और नये-नये रहस्यों का भेद पाना, (५) आत्मा में अपनी अवस्था, (६) ख़ुदा के चरणों में आत्मसमर्पण, (७) आशाएँ और भय, (८) आध्यात्मिक गुरु और परमात्मा के निकट किस तरह पहुंचना, (९) अपनी आत्मा के प्रति और सारी श्रृष्टि के प्रति अपने को मृतक समझ लेना।

हज़रत जीलानी कहते हैं "जब हम अपनी वासनाओं को जीत कर दुनिया की ओर से मृतक हो जायंगे तब हम एक बच्चे की तरह होंगे जो अपनी मां की गोद में खेलता है। तब हमारी समस्त इच्छायें मर जायंगी, तब हमारे लिये केवल परमात्मा की ही एक इच्छा रह जाएगी।" इस पुस्तक के सम्बन्ध में बैरन कारा दे वाज़ लिखता है, "इस पुस्तक के अन्दर जो भावनाएं प्रदर्शित की गई हैं वे सर्वोच ईसाई भावनाएं हैं।"

हज़रत जीलानी ने जिस पंथ की स्थापना की वह "अल-क़ादरिया" कहलाता है। इस पंथ का इसलामी दुनिया में बेहद महत्त्व है। अरब में यह पंथ बड़ा शक्तिशाली है। जेद्दा और मदीना में इसका बड़ा ज़ोर है। मक्का में अकेले इसके ३० मक़द्दिम (व्याख्यान स्थल) हैं। कुस्तुनतुनियां में इसके ४० तकिया (प्रार्थनागृह) हैं। मिस्र में भी यह पंथ बहुत प्रमुख है। नील की उपत्यका और कैरों में इस पन्थ के माननेवाले बेशुमार हैं। त्रिपोली और ग़दामी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अलजीरिया और मोरक्को में भी इसके मानने वालों की तादाद बहुत ज़्यादा है। अलजीरिया के २४ हज़ार व्यक्ति इस पंथ में शामिल हैं और अकेले ओरान के सूबे में इसके २०० कब्बास (पूजा स्थान) हैं, जिनको सिद्दी-अल जीलानी कहा जाता है। इस पंथ का प्रचार सुदूर पूर्व में डच पूर्व हिन्द और चीन में, युनान प्रान्त तक है। जहां तक मैं समझता हूं भारत में इस पंथ का प्रचार सन् १४८२ ई० में हज़रत जीलानी के उत्तराधिकारी सैय्यद मुहम्मद ग़ौस ने शुरू किया। सैय्यद मुहम्मद ग़ौस ने सिन्ध सूबे के उच शहर में अपना निवासस्थान बनाया और सन् १५१७ ईस्वी में उनकी मृत्यु हुई। उनके पैरोकार सारे हिन्दुस्तान में विशेषकर पंजाब में फैल गये। लाखों व्यक्ति इस पंथ के अन्दर शामिल हुए। सम्राट शाहजहां के पुत्र सम्राट दारा शिकोह ने इस पंथ के शिक्षक मीर मुहम्मद अथवा मियां मीर से दीक्षा ली। वास्तव में यह पंथ सद् आचार और सद् व्यवहार का पन्थ है।

जीवन

श्री रामप्रकाश अग्रवाल एम. ए.

संघर्ष पूर्ण बहता जीवन।
गिरि की गोदी से सरि-प्रवाह
बिजली का ले कर स्वर अथाह,
झरना बनता, भू पर आता,
अवरुद्ध हुआ, पर मिली राह,
बाधाओं में बढ़ता जीवन।

गिरि-खण्डों पर करता प्रघात
नभ छूने उठता जल-सँघात,
उठता, गिरता, थकता, बहता,
कूलों से करता सरल बात,
यह शान्ति-पूर्ण बहता जीवन।

बुदबुद देता उद्वेलित मन
मारुत में फैलाता निज स्वन,
पथ बदला, दृश्य नये आये,
फिर हँसा मिला जब परिवर्तन,
बहता यह वेग-पूर्ण जीवन।

नभ में नीरद घिर घिर आते
भय फैलाते, नव बल लाते,
तम घिरता, फिर खिलता प्रकाश,
सागर के पथ को दिखलाते,
मिलता अनन्त में वह जीवन।
संघर्ष शान्ति मय यह जीवन।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दू मुसलिम भ्रातृभाव

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

लोग एक दूसरे के धर्म को समझें और धार्मिक मतभेदों के होते हुए भी एक दूसरे से प्रेम करें। किन्तु यह बड़े दुख की बात है कि इस सम्बन्ध में जितनी भी कोशिशें हुई हैं वे उतनी सफल नहीं हुई जितनी कि उन्हें होना चाहिये।

उमर पाकर लोगों को न केवल अपने धर्म का बल्कि दूसरे धर्मों का भी अध्ययन और मनन करना चाहिये। बचपन में और शुरू में मुमकिन है यह सम्भव न हो और बालक बालिकाओं को अपने ही धर्म की शिक्षा मिले, किन्तु जैसे जैसे वे बड़े हों और उनकी समझदारी बढ़े वैसे वैसे यह ज़रूरी है कि वे दूसरे धर्मों की अधूरी और कही सुनी बातों पर ही निर्भर न करें, बल्कि उनका पूरी तरह अध्ययन करें। अपनी बदक़िस्मती में भी हमें आगे के लिये बड़ी बड़ी उम्मीदें हैं। हिन्दुस्तानियों को अकसर यह बताया जाता है कि यहां बहुत से धर्म हैं, बहुत सी भाषाएं हैं और इसलिये यहां के लोग बड़े अभागे हैं। लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि यह बात सही हो। मुमकिन है क़िसमत हम से कुछ बड़े काम कराना चाहती हो। इस विभिन्नता के बीच में ही सम्भव है वह हमें सार्वभौम सत्य के दर्शन कराना चाहती हो। यदि हम इसमें सफल हुए, तो यह कितनी बड़ी बात होगी। समस्त धर्मों की एकता की इच्छा एक महान इच्छा है। इस उद्देश्य को हमें सामने रखना चाहिये और उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

आज जिन कठिनाइयों का हमें सामना करना पड़ रहा है शायद वे ही हमें उस महान उद्देश्य की ओर ले जा रही हों। हालांकि आज सब धर्मों की एकता की चर्चा करते समय हम दुखी और निराश हो जाते हैं। हम आज मुश्किल वक्तों के बीच से गुज़र रहे हैं। किन्तु फिर भी हममें से कुछ लोग निर्भयतापूर्वक इस विषय की चर्चा करते हैं और सत्य को जनता के सामने रखते हैं। जितनी ही हम सच्ची बात कहेंगे शायद उतना ही लोग हमें बनावटी कहें और कुछ लोग हमसे इस कारण बेहद नाराज़ भी हो सकते हैं। जितना ही लोगों को हम एकता की ओर खींचते हैं उतना ही लोग ज़िद पकड़ लेते हैं। बिलकुल वही कैफ़ियत है जो एक ज़िद्दी जानवर की होती है। उसे कितना ही खींचो किन्तु वह टस से मस नहीं होता। लोगों को हम इकट्ठा करने की कोशिश करते हैं, लेकिन वे विपरीत दिशाओं में भागते हैं। यदि हम उन्हें उनकी क़िस्मत पर छोड़ दें तो शायद वे ठीक रास्ता पकड़कर एक ही जगह आजांय। कभी कभी ऐसा भी होता है। गाय और बछड़े कभी कभी यही करते हैं। मनुष्य ने मुमकिन है लिखने पढ़ने और साहित्य में तरक़्क़ी की हो, मगर अपनी सहज भावनाओं में वह पशुओं की तरह ही है। पशुओं की तरह ही मनुष्यों को गुस्सा आता है, भूख लगती है और उनमें ख़ूंख़ार वृत्ति जागती है। फिर भी हमें यही उम्मीद करनी चाहिये कि हमारे ये बुरे दिन फिरेंगे और भारत में फिर से एकता स्थापित होगी। राष्ट्रीय त्योहारों में लोग मिल जुल कर हिस्सा ले सकते हैं और इस तरह एक दूसरे की भावनाओं को अच्छी तरह समझ सकते हैं। ख़ासकर एक दूसरे की प्रार्थनाओं और पूजा के समय जब धार्मिक वातावरण होता है तब दुनियावी ईर्षाओं को भूलकर लोग एक दूसरे के अन्दर एक ही ख़ुदा के नूर को देख सकते हैं और सच्चे अर्थों में एक दूसरे के निकटतर आ सकते हैं।

हम दूसरे की इज़्ज़त करेंगे तो दूसरे हमारी भी इज़्ज़त करेंगे। यदि हिन्दू हज़रत मुहम्मद के प्रति आदर दिखायेंगे और इसलाम के अध्ययन, उसके दृष्टिकोण और उसके व्यवहार को सहानुभूति से देखेंगे, तो इसमें कोई सन्देह नहीं मुसलमान भी उन सब बातों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के प्रति आदर और सहनशीलता दिखायेंगे, जिनके प्रति हिन्दू भक्तिभाव रखते हैं। इसलिये एक दूसरे के धर्म के अध्ययन में ही समस्या का बहुत कुछ हल है। इसीलिये मुझे कालेजों में और कालेजों के बाहर पढ़े लिखे परिवारों में दूसरे धर्मों के अध्ययन को प्रोत्साहन देने की बात पसन्द आती है।

अनेक हिन्दू हैं जो इसलाम और इसलाम के पैग़म्बर की उतनी ही इज़्ज़त करते हैं जितनी कोई मुसलमान करता है। और ऐसे लोगों की तादाद बढ़ रही है। एक दूसरे की अच्छी बातें समझने की भावना जाग रही है और बावजूद मौजूदा झगड़ों के हम एक दूसरे को अधिकाधिक जानते जा रहे हैं।

हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक दौर में हमने बहुत से ऐसे मौक़े खो दिये जब न केवल यहां पूरी एकता क़ायम हो जाती, बल्कि देश के समस्त अधिवासी एक दूसरे को पूरी तरह समझ जाते। मुसलमानों में अनेक ऐसे महान शासक हुए हैं, जिन्होंने इसकी चेष्टा की, किन्तु जिन्हें कामयाबी हासिल नहीं हुई। वे न तो कमज़ोर थे और न छोटे आदमी थे। वे वास्तव में महान थे। किन्तु हमारे दुर्भाग्य से उन्हें एकता क़ायम करने के महान मिशन में सफलता नहीं मिली। सिकन्दरे में अकबर के मज़ार की ज़ियारत करते हुए मेरे मन में कई बार यह भावना उठी—"सर्व धर्म सम्मेलन करने के लिये यह जगह कितनी उपयुक्त है ?" सर्व धर्म सम्मेलन में जितने भी प्रतिनिधि आयें वे सब यहां आ सकते हैं। इतनी बड़ी जगह में ज़रूरत पड़ने पर एक पूरा कांग्रेस अधिवेशन हो सकता है। सर्व धर्म सम्मेलन के लिये इससे उत्तम दूसरी जगह हो ही नहीं सकती। यहां के वातावरण में एक ख़ास गम्भीरता है। किन्तु मेरे दिमाग़ में यह विचार आया और निकल गया। दिल में एक दर्द उठा कि—इस काम में क्या सफलता मिल सकती है ? शायद किसी दिन यह महान सपना भी पूरा हो। मुसलमान अपने धर्म में दृढ़ रहें और भारत इसलाम का एक बड़ा केन्द्र बना रहे, किन्तु कुछ ऐसी बात हो कि यहां के रहने वाले इसलाम को उसी आदर से देखें, जिस तरह कोई ज्ञानी मनुष्य समस्त धर्मों को देखता है। अब भी एक दिन ऐसा अवश्य आयगा, जब कि हम मौजूदा झगड़ों को भूल जायंगे। हम आपस की ईर्षा, सन्देह और कठिनाइयों को भूल जायंगे। यदि लोगों में विश्वास है तो यह बात होकर रहेगी।

इस बात की भी कल्पना नहीं हो सकती कि हिन्दू अपनी उस विशेष संस्कृति को छोड़ देंगे, जिसमें वे युगों से पले हैं। उन्होंने एक ऐसी आध्यात्मिक शिक्षा पाई है, जिसके कारण उन्हें अपने धर्म के ऊपर असीम विश्वास है। मुमकिन है मुसलमानों को यह दिखाई देता हो कि हिन्दुओं का दृष्टिकोण उनसे बिलकुल भिन्न है। मुझे विश्वास है कि मुसलमान ईसाई मिशनरियों की तरह हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा के सम्बन्ध में कोई ग़लतफ़हमी नहीं रखते। ईसाई मिशनरियों को इस पर हैरत होती है कि हिन्दू किस तरह अपनी ही गढ़ी हुई मूर्तियों की श्रद्धा के साथ उपासना करते हैं। हमारे दृष्टिकोणों में इतना अन्तर है कि वे इसे समझ ही नहीं सकते। किन्तु मुसलमानों को हमारी इसी पूजा-पद्धति को समझना ही चाहिये। उनका हमारा इतने दिनों का साथ है। मुझे यह अनुभव करके बड़ा सुख होगा कि मुसलमान हिन्दुओं को पूरी तरह समझने लगे हैं। फिर सारे अपराध की ज़िम्मेवारी हिन्दुओं की ही होगी कि वे मुसलमानों को नहीं समझ सके। हिन्दुओं को मुसलमानों को समझ सकना कहीं अधिक आसान है, क्योंकि उनके अपने अन्दर इतने मत मतान्तर हैं। किन्तु मुसलमानों के लिये शायद यह सम्भव नहीं क्योंकि धार्मिक व्यवहार में उनके यहां फ़ौलादी अनुशासन है।

तब भी भिन्न भिन्न मुल्कों में भिन्न भिन्न प्रकार से वस्तुएं फूलती फलती हैं। मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि अरब का एक विद्वान भारत के एक मुसलिम विद्वान से बिलकुल भिन्न होगा। ईरान का एक विद्वान एक दूसरे इसलामी देश के विद्वान से क़तई

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भिन्न होगा। प्रत्येक मुल्क की अपनी अपनी संस्कृति होती है। इससे धर्म की कुछ भी हानि नहीं होती। भारत के पढ़े लिखे मुसलमानों को अपने धर्मावलम्बियों को कल्याण का रास्ता दिखाना चाहिये। मैं चाहूंगा कि विद्वान मुसलमान दूसरे धर्म वालों को भी इसलाम के सम्बन्ध में बहुत कुछ बतायें, ताकि उनकी जानकारी बढ़े और हमारे देश में एक दूसरे का ज्ञान और एकता की भावना पुख़्ता हो।

अडिग

श्री 'मनोहर'

नीर के निर्मम थपेड़ों से सिहरकर,
हिल उठेगा घाट का पत्थर कभी क्या ?

पी चुके अनगिन प्रबल बरसात,
ज्येष्ठ के मध्यान्ह कितने !—कँपकँपाती रात,
आग-पानी के बवंडर;
राह पर बढ़ते चले जाते सदा जो पांव सत्वर,
मार्ग के कुश कंटकों से ही विकल हो,
रुक सकेंगे भूलकर पल भर कभी क्या ?

देखता सब दिन रहा जो नाश,
मृत्यु की भीषण मुखाकृति, छिन्न संचित आश,
शून्य नयनों का कलपना
लाल-पीली, धधकती-बुझती चिताओं का तड़पना,
सुन शृगालों की अथक अविराम 'हू-हू',
दहल जायेगा स्वयं मरघट कभी क्या ?

जल रहा नीरव, अचंचल, शान्त,
भव्य राका क्या ?—अमा में भी न होता क्लान्त !
धीर प्रहरी, पथ-प्रदर्शक,
रात-दिन आते चले जाते, न डिगता मौन साधक,
खा अहर्निशि क्रुद्ध झंझा के झकोरे,
बुझेगा नभ-दीप ध्रुव तारक कभी क्या ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दुस्तान के मुसलमानों का कर्तव्य

सर मिरज़ा इसमाइल

हमारे मुल्क के असंख्य मुसलमानों के दिलों में यह भावना भर गई है कि बहु संख्यक वर्ग के हाथों में उनके हित सुरक्षित नहीं हैं। पिछली प्रान्तीय सरकारों के बाद से उनकी इस भावना ने भय का रूप ग्रहण कर लिया है। मुसलमान ही नहीं और दूसरे अल्पमत सम्प्रदाय वाले भी इसी दृष्टिकोण से चीज़ों को देखने लगे हैं और अपने भविष्य के सम्बन्ध में उन्हें चिन्ता-सी हो गई है।

हमें यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिये कि जनतन्त्र का अर्थ है बहुमत द्वारा हुकूमत। यदि भारत जैसे अल्प संख्यक जातियों के देश में वह बहुमत एक विशेष धर्मावलम्बियों का हो तब समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। जब तक अल्प संख्यक जातियों को—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान या कोई अन्य धर्मावलम्बी—यह विश्वास नहीं दिला दिया जाता कि उनका धर्म, उनकी भाषा और उनकी संस्कृति सुरक्षित रहेगी, तब तक न तो देश के अन्दर एकता ही सम्भव है और न स्वस्थ सार्वजनिक जीवन। इसलिये बहुसंख्यक जाति के ऊपर एक महान और सम्माननीय ज़िम्मेवारी होती है। उसे हर तरह से यह बात ज़ाहिर करनी चाहिये कि अल्प संख्यक जातियों के हित उसके हाथों में पूरी तरह सुरक्षित हैं और वह अपने हितों से अधिक उनके हितों की रक्षा करेगी।

कोई भी चाहे वह सरकार ही क्यों न हो हमारी तब तक मदद नहीं कर सकती, जब तक हम अपनी मदद स्वयं न करें। बिना परिश्रम के न तो हम उन्नति ही कर सकते हैं और न सन्तोष ही पा सकते हैं। पक्षपात और इनाम के बीच में बड़ा भारी अन्तर है। सच्चे प्रयत्न के लिये इनाम का कहीं अधिक मूल्य है, क्योंकि इस तरह का इनाम आत्मा को सन्तोष देता है। वह उस पक्षपात से प्राप्त सुविधाओं से कहीं अधिक उत्तम है, जो शोर मचाकर या बिना परिश्रम के प्राप्त होती हैं। क़ुरान कहता है अल्लाह के रास्ते पर प्रयत्न करो और क्या हम मुसलमानों के लिये क़ुरान से बेहतर कोई मार्ग प्रदर्शक है?

किन्तु हिन्दुस्तान के मुसलमान दुनियां के सामने आज एक तकलीफ़देह नज़ारे की तरह दिखाई दे रहे हैं। अभी पिछले दिनों लखनऊ में क्या हुआ? एक ही धर्म के दो दल आपस में इतना विरोध दिखायें यह वर्तमान युग में एक ऐसा दृश्य है, जो हमें लज्जा और क्रोध से भर देता है। शिया और सुन्नियों में एक दूसरे के प्रति इतनी नफ़रत क्यों भरी हुई है? वे एक दूसरे की भावनाओं को चोट पहुंचाने की कोशिश क्यों करते हैं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों सच्चे हैं, किन्तु हमें एक दूसरे की भावनाओं के प्रति आदर दिखाना आना चाहिये और विचार विभिन्नता को बर्दाश्त करना चाहिये।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम चाहते हैं कि मुसलमान अपने धर्म के आवश्यक तत्वों, उसके सिद्धान्तों की पवित्रता और उसके बताये हुए जीवन की महानता पर अपने विचारों को केन्द्रीभूत करें, बजाय इसके कि वे व्यर्थ की अनावश्यक बातों पर आपस में और दूसरों से लड़ने के लिये हमेशा आमादा रहें। आज कल छोटी छोटी बातों ने मुसलमानों के ग़ुस्से के पारे को बेहद चढ़ा दिया है। इस ग़ुस्से में सच्चाई है, इससे हमें इनकार नहीं, किन्तु इस ग़ुस्से से सबसे अधिक हानि मुसलमानों की अपनी है। यह परेशानी उदारता से ही दूर हो सकती, है बहसों से नहीं। विरोधी साम्प्रदायिक दलों को यह समझना चाहिये कि एकता में ही उनका कल्याण है।

हमारे देश में जितनी जल्दी एकता और भ्रातृ-भाव स्थापित होगा, उतना ही दोनों सम्प्रदायों के लिये कल्याणकर है। इस आपसी लड़ाई का चाहे जो कुछ नतीजा हो, दोनों में से किसी को भी इससे लाभ नहीं पहुंच सकता। इस लड़ाई में दोनों का नुक़सान ही है।

हिन्दुस्तान में, जहाँ धर्म भावना को इतना महत्व दिया जाता है और विचारों की जगह जहाँ कट्टरता का प्रयोग होता है, हमें निकट पूर्व के इसलामी मुल्कों से सबक़ सीखना चाहिये। निकट पूर्व के इन तमाम अरबी देशों में राष्ट्रीयता की गहरी छाप लगती जा रही है। उनके राजनैतिक व्यवहारों के आधार में धर्म की भावना दिनों दिन कम से कम होती जा रही है। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक निकट पूर्व के लोगों के भावनात्मक और सामाजिक जीवन पर इसलाम पूरी तरह हावी था। हालाकि वहां के बूढ़े लोगों में परधर्मावलम्बियों के प्रति एक अविश्वास की लहर अब भी बाक़ी है, किन्तु नई पौध में बिलकुल एक नया जीवन ही आ गया है। एक से मदरसे, एक से राजनैतिक विचार, एक से आर्थिक उद्योग युवकों के भिन्न भिन्न वर्गों को एक सूत्र में बांध रहे हैं। पूर्व प्रचलित धर्म गो मरा नहीं है, फिर भी राजनैतिक और सामाजिक जीवन पर उसका कोई असर नहीं है। धर्म की जगह अब राष्ट्रीयता ने ले ली है। तुर्की में इसलाम अब राष्ट्रीय धर्म नहीं है। मिस्र में मुसलमान और ईसाई उसी आत्मीयता से एक दूसरे को सहयोग देते हैं, जिस तरह दमिश्क में। बहुधा राजनैतिक आन्दोलनों के नेता स्थानिक ईसाई होते हैं। राष्ट्रीय जुलूसों में सलीब और हिलाल के झण्डे मिले जुले निकलते हैं।

हिन्दुस्तान के सभी धर्मों और सम्प्रदाय वालों को इसी उदाहरण को अपनाना चाहिये। दोनों के फ़ायदे में सहयोग की भावना से काम लेना चाहिये और अपने अपने धर्म और रीति रिवाज मानते हुए मातृभूमि की सेवा में एक हो जाना चाहिये। विभिन्न धार्मिक विचार सच्ची राष्ट्रीयता के मार्ग में उसी तरह बाधक नहीं, जिस तरह विविध राजनैतिक विचार।

अपने ज्ञान को बढ़ाकर और जीवन के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को उन्नत बनाकर और सांस्कृतिक बुनियादों पर अपने परस्पर सम्बन्ध को ठीक करके ही हम वास्तविक उन्नति कर सकते हैं। मैं आशा और प्रार्थना करता हूँ कि हम मुसलमान अपने महान भविष्य को ध्यान में रखकर एक महान देश के नागरिक के उपयुक्त कर्तव्य अदा करेंगे।

—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सर्व धर्म समभाव

स्वामी दरबारीलाल सत्यभक्त

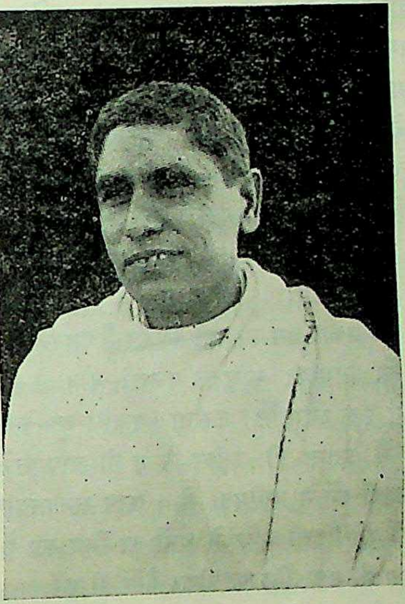

मैं न तो धर्म का विरोधी हूं न तो अन्धश्रद्धालु, निःसन्देह धर्म के नाम पर ख़ून बहाया गया है, पर यह अन्तर न भूलना चाहिये कि धर्म के नाम पर ख़ून बहाया गया है धर्म के लिये ख़ून नहीं बहाया गया। शैतान भी अपनी शैतानी के लिये ख़ुदा के नाम की ओट ले लेता है, तो मनुष्य ने अपने दुस्वार्थों के लिये अगर धर्म की ओट लेली तो इसमें धर्म क्या करे? जो नियम समाज के विकास और सुख शान्ति के लिये ज़रूरी हैं उनका मन से वचन से और शरीर से पालन करने का नाम धर्म है, इस धर्म का उस ख़ून ख़राबी से कोई सम्बन्ध नहीं है, जो धर्म के नाम पर स्वार्थ या अहंकारवश की जाती है।

कहा जा सकता है कि जब धर्म का ऐसा दुरुपयोग होता है तब धर्म को नष्ट ही क्यों न किया जाय? मैं कहता हूँ कि भोजन के दुरुपयोग से जब बीमारियां पैदा होती हैं तब भोजन ही बन्द क्यों न कर दिया जाय? आजीवन अनशन करने से मौत भले ही आ जाय पर बीमारी से छुट्टी ज़रूर मिल जायगी? क्या आप बीमारी के डर से इस प्रकार मरना पसन्द करते हैं? यदि नहीं, तो दुरुपयोग के डर से धर्म को छोड़ना भी पसन्द नहीं किया जा सकता।

मैं मानता हूं कि धर्म भोजन से भी ज़्यादा ज़रूरी चीज़ है। जो चीज़ जितनी पतली होती है उसकी ज़रूरत भी उतनी ही ज़्यादा होती है। रोटी बहुत ज़रूरी है पर पानी रोटी से भी ज़्यादा ज़रूरी है, पानी रोटी से पतला है। रोटी के बिना हम जितने दिन ज़िन्दा रह सकते हैं, पानी के बिना उतने दिन ज़िन्दा नहीं रह सकते। पर पानी से पतली है हवा। पानी पिये बिना हम घण्टों ज़िन्दा रह सकते हैं, पर हवा लिये बिना हम मिनटों भी ज़िन्दा नहीं रह सकते। धर्म हवा से भी पतला है, उसके बिना हम ज़रा भी ज़िन्दा नहीं रह सकते। प्रेम सहयोग आदि धर्म के ही रूप हैं, जो कि कीड़ों मकोड़ों और पशु पक्षियों में भी पाये जाते हैं। इसलिये धर्म व्यापक है, नित्य है, और आवश्यक है। उसमें विकार आते हैं, जीवन भी विकृत और दुःखी हो जाता है इसलिये हमें विकारों को नष्ट करना चाहिये, धर्म को नहीं।

एक बात और है जब तक मनुष्य के पास हृदय है तब तक धर्म किसी न किसी रूप में ज़िन्दा रहेगा ही। धर्म का भीतरी रूप तो रहना ही है पर बाहरी रूप भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ़ उसमें परिवर्तन हो जाता है। ईसा की मूर्त्ति के सामने घुटने टेकने की जगह लेनिन की क़ब्र पर फूल चढ़ाना आ जाता है। प्रतीक बदल जाते हैं, वृत्ति नहीं बदलती। इसलिये धर्म को मारने की कोशिश व्यर्थ है, उसका दुरुपयोग ही रोकना चाहिये।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परन्तु धर्म की इस अमरता से उन लोगों को ख़ुश होने की ज़रूरत नहीं है, जो धर्म के नाम पर रूढ़ियों के और साम्प्रदायिकता के ग़ुलाम बने रहना चाहते हैं। उन्हें समझना चाहिये कि धर्म रूढ़ियों का अजायबघर नहीं है, किन्तु सत्य अहिंसा आदि नियमों का समूह है और धर्मसंस्था एक समय की सामाजिक क्रान्ति है। तीर्थंकर, पैग़म्बर, अवतार आदि अपने समय के क्रान्तिकारी महापुरुष हैं। कोई भी क्रान्ति स्थिर नहीं होती न आगे की दूसरी क्रान्तियों का विरोध करती है। क्रान्ति की मित्रता रूढ़ियों से नहीं है। इसलिये धर्म की मित्रता रूढ़ियों से नहीं कही जा सकती।

इस प्रकार धर्म की बात कहकर मैं धर्म विरोधी और धर्म के नाम पर रूढ़ि के पुजारी, दोनों के दिलों में कुछ न कुछ क्षोभ पैदा करूंगा। इसको दूर करने के लिये मैं इतना ही कहूंगा कि न तो आप प्राचीनता के पुजारी बनें न नवीनता के। आप जनकल्याण के पुजारी बनें! इसी दृष्टि से धर्मों का जिस रूप में जैसा उपयोग हो सके, निष्पक्ष होकर वैसा ही करें।

धर्म संस्थाओं का मुख्य काम आदमी के दिल पर नीति और सदाचार के संस्कार डालना है। सभी धर्मों ने यही काम किया है। इसीलिये मैं धर्मों में समानता देखता हूं और धर्म संस्थाओं की संख्या से घबराता नहीं हूं। बहुत से स्कूल होने से या अनेक विश्वविद्यालय होने से जैसे शिक्षा में बाधा नहीं पड़ती, किन्तु कुछ लाभ ही होता है; उसी प्रकार बहुत सी धर्म संस्थाएं होने से सच्चे धर्म में बाधा नहीं पड़ती।

पर शर्त इतनी है कि धर्म को धर्म समझिये, अहंकार का सहारा नहीं। मेरा धर्म बड़ा तुम्हारा धर्म छोटा, इस उक्ति में धर्म-प्रेम नहीं है अहंकार है। अगर कोई प्यासा इस बात पर वाद-विवाद करे कि तुम्हारे गाँव का तालाब तो दो कोस का ही है जब कि मेरे गांव का तालाब चार कोस का है, इसलिये तुम्हारे तालाब से मेरा काम कैसे चलेगा? तब मैं कहूँगा—पागल, यह तो बता कि तेरे हाथ का घड़ा कितने कोस का है? दो कोस के तालाब से तुझे अपने घड़े भर पानी मिल सकता है कि नहीं?

मनुष्य जितना कंगाल है उससे ज़्यादा दम्भी है, इसीलिये अहंकार की पूजा के लिये वह धर्म का सहारा लेता है। हर एक आदमी धन का अहंकार नहीं कर सकता, दुनिया में एक से एक बढ़कर धनी पड़े हैं और धन का क्या ठिकाना आज है कल नहीं है, तब उसके सहारे अहंकार कैसे खड़ा किया जा सकता है। बल और रूप की भी यही दशा है। दो दिन बुख़ार आ जाय सारा बल निकल जाय, गाल पिचक जांय, बुढ़ापा भी बल और रूप का दिवाला निकाल देता है, फिर बल और रूप भी एक से एक बढ़कर हैं। अधिकार आदि की भी यही दशा है। मनुष्य ठहरा अहंकार का पुतला, उसे कुछ न कुछ चाहिये अवश्य, जिसके सहारे वह अहंकार कर सके। इसके लिये धर्म उसे सब से अच्छा मालूम हुआ। इस आत्मवंचक मनुष्य ने सोचा धर्म का अहंकार सबसे अच्छा, इससे बड़प्पन की लालसा भी पूरी हो गई और ईश्वर या अल्लाह भी ख़ुश हो गया, परलोक सुधर गया और स्वर्ग या जन्नत के लिये सीट भी रिज़र्व हो गई।

बेचारे ने यह न सोचा कि अहंकार, चाहे वह धन का हो या धर्म का, मनुष्य का पतन ही करेगा। वह उसी तरह हमारे जीवन को जलायेगा, जिस प्रकार दुनिया का कोई भी अहंकार जला सकता है। चन्दन के ठंडा होने पर भी चन्दन की आग ठंडी नहीं होती, धर्म ठंडा होने पर भी धर्म का अहंकार ठंडा नहीं होता। अहंकार हमें जलाता है, उसमें धर्म का अहंकार तो सब से बुरा है, यह तो पानी में लगी आग है। कलकत्ते में आग लगे तो बुरा होगा, पर यदि गङ्गा में आग लगे तो यह उससे भी ज़्यादा बुरा होगा। क्योंकि कलकत्ते की आग गङ्गा से बुझाई जा सकती है, पर गङ्गा की आग किससे बुझाई जायगी?

दुनिया के पाप को हम धर्म से साफ़ करते हैं, पर धर्म में ही अगर पाप घुस जाय तो हम किससे साफ़ करें। इसलिये मैं कहता हूं कि धर्म का अहंकार सब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अहंकारों से बुरा है। यह अहंकार निकल जाय, तो दुनिया में कितनी ही धर्म संस्थायें क्यों न रहें, उनसे हमारा कोई नुक़सान नहीं है। बल्कि फ़ायदा ही है।

सारी दुनिया में अगर एक ही मज़हब हो जाय, तो भी उससे लाभ न होगा, अहंकार या स्वार्थ थोड़ा सा नुक़्स निकालकर ख़ून की नदियां बहाने लगेगा। यूरोप में एक ही ईसाई धर्म के मानने वाले क्या चर्चों के भेद से ख़ून की नदियां नहीं बहाते रहे? एक मज़हब बनाने की कोशिश व्यर्थ है। ज़रूरत है सद्भाव की। हमें एकरूपता (uniformity) नहीं चाहिये, एकता (unity) चाहिये। एकरूपता से तो हमारा जीवन बेस्वाद हो जायगा। आप की थाली में अगर घी ही परोस दिया जाय, तो आप कितना खा सकेंगे और कब तक खा सकेंगे। घी भले ही क़ीमती चीज़ हो, पर स्वाद के लिये और जीवन के लिये अन्न भी चाहिये, नमक भी चाहिये, और शाक भी चाहिये। अगर मेरी थाली में नमाज़ ही नमाज़ परोसी जाय या पूजा ही पूजा परोसी जाय तो भी मैं ऊब जाऊंगा, यह कैसे हो सकता है कि जीभ तो नये नये स्वाद चाहे और मन, जो कि जीभ से भी ज़्यादा चंचल है, एक ही स्वाद से चिपटा बैठा रहे। मुझे तो लगता है कि कभी नमाज़, कभी पूजा, कभी भजन आरती और कभी प्रार्थना इस प्रकार विविध व्यंजन हों तो हमारे धार्मिक जीवन को अधिक पोषक ख़ुराक मिलेगी। हमारा दिल अधिक लगेगा, ईश्वर को हम ज़्यादा याद कर सकेंगे। हमारा आध्यात्मिक आनन्द ख़ूब बढ़ जायगा।

इसलिये हिन्दुओं से मेरा कहना है कि तुम हर दिन पूजा करते हो सो करो, पर एक दिन, शुक्रवार के दिन, ज़रा नमाज़ का मज़ा भी तो लो, रविवार को चर्च की प्रेयर में भी तो शामिल हो जाओ। तुम्हारा ईश्वर आज की अपेक्षा उस समय ज़्यादा ख़ुश होगा। इसी प्रकार मुसलमानों से कहता हूं कि हर दिन एक सी नमाज़ पढ़ते पढ़ते तुम्हारा दिल नहीं ऊबता? ज़रा पूजा और प्रेयर का मज़ा भी तो चखो, देखोगे कि अल्लाह तुम्हारी इस उदारता से दूना ख़ुश होगया है, क्योंकि तुमने उसे आज की अपेक्षा ज़्यादा महान रूप में देखा है। इसी तरह ईसाइयों से कहता हूं कि नमाज़ और पूजा में शामिल होने से प्रेयर का स्वाद बढ़ जायगा? मीठा खाते खाते बीच में नमकीन या खटाई खा लेने से मीठा खाने का ताक़त बढ़ जाती है।

हिन्दुस्तान का यह बड़ा सौभाग्य है कि यहां हिन्दू मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी आदि अनेक मज़हब हैं। यहां के नागरिकों को धर्म की थाली में अधिक से अधिक व्यंजन बड़ी सरलता से मिल सकते हैं। मैं इसे सौभाग्य समझता हूं। जबकि बहुत से लोग इसे दुर्भाग्य समझते हैं।

एक बार मैं मुलतापी से नागपुर जा रहा था। मैं जिस डिब्बे में बैठा था उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही काफ़ी संख्या में थे। चर्चा भी हिन्दू मुसलमानों पर थी। चर्चा में गर्मी आ गई और झगड़े की नौबत आगई; इससे ऊबकर एक मध्यस्थ भाई बोले—जब तक इस देश में हिन्दू मुसलमान रहेंगे, तब तक यह देश नरक ही बना रहेगा। मैंने कहा—भाई, हिन्दू मुसलमान होने से यह देश नरक नहीं बना है, किन्तु हिन्दू मुसलमान न होने से नरक बना है। हिन्दू होने से उनके तैतीस करोड़ देवताओं में मुहम्मद और ईसा को जगह मिली होती; मुसलमान होने से उनके एक लाख चौबीस हज़ार पैग़म्बरों में राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध को भी जगह मिली होती फिर क्या झगड़ा रहता?

बात बिलकुल सत्य है, अगर जैनी सच्चे जैनी बन जांय, हिन्दू सच्चे हिन्दू बन जायं, मुसलमान सच्चे मुसलमान बन जायं, तो धर्म में कोई झगड़ा ही न रहे। कोई धर्म चोरी करना नहीं सिखाता, झूठ बोलना नहीं सिखाता, हत्या करना नहीं सिखाता, व्यभिचार नहीं सिखाता, धन इकट्ठा करना नहीं सिखाता। सभी मज़हब प्रेम, दया, न्याय, सेवा, दान, शील आदि का पाठ पढ़ाते हैं तब धर्मों में विरोध का क्या काम? धर्मों ने नीति का पाठ पढ़ाया है इतना ही नहीं सर्व धर्म समभाव के बीज भी सभी धर्मों में पाये जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चर्चा के लिये हम जैन हिन्दू मुसलमान, इन तीन धर्मों के अनुयाइयों को लें, मैं इन तीन धर्मों में ही आप को सर्व धर्म समभाव के बीज और विधान बता देना चाहता हूं।

जैन धर्म—जैन धर्म का दूसरा नाम अनेकान्त धर्म भी है। पंडित कहलाने वाले बहुत से लोग अनेकान्त की व्याख्या करते समय घटत्व-पटत्व में ही लोगों को फँसा देते हैं और अनेकान्त जटिल और निरर्थक हो जाता है। पर मैं सीधी सादी सरल और उपयोगी व्याख्या ही आप के सामने पेश करना चाहता हूं। अनेक-अन्त अर्थात् अनेक दृष्टियाँ अनेक धर्म, इनके समन्वय को जैन धर्म कहते हैं। जैन शास्त्रों में तीन सौ त्रेसठ मतों का उल्लेख है। उन सब मतों को मिलाकर जैन धर्म बनता है। इन मत-मतान्तरों के झगड़ों को मिटाने के लिये महावीर स्वामी का अवतार हुआ था। ऐसी हालत में सभी मत जैन धर्म के अंग हैं; तब यह कैसे हो सकता है कि जैन धर्म किसी मत का खण्डन करे? क्या कोई अपने अंगों को काटना पसन्द करता है? एक हाथ अगर दूसरे हाथ को तोड़ना चाहे, एक पैर दूसरे पैर को ठुकराने लगे तो शरीर की कैसी दुर्दशा हो जाय? वही दुर्दशा जैन धर्म की होगी अगर वह दूसरे मतों का खण्डन करने लग जाय। वह तो सिर्फ़ एक ही बात का खण्डन करता है और वह बात है दूसरों का खण्डन करना, समन्वय न करना, अनेकान्त दृष्टि से विचार न करना आदि। और वह किसी का खण्डन नहीं करना चाहता।

जैनियों में आज दिगम्बर हैं, श्वेताम्बर हैं, स्थानकवासी हैं, मुझे इनके होने का खेद नहीं है; अनेकान्त इन सब का समन्वय कर सकता है, पर दुःख इस बात का है कि ये जुदा जुदा ऐसे सम्प्रदाय बन गये हैं, जो एक दूसरे की दृष्टि को समझना ही नहीं चाहते। ये एकान्तवाद के पुजारी हैं। एकान्तवाद की पूजा छोड़ दें, अहंकार छोड़ दें, शुद्ध धर्म का विचार करने लगें, तो दिगम्बर श्वेताम्बर आदि भेद, जैन, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि के भेद हमारा कोई नुक़सान न करेंगे।

हिन्दू धर्म—जैन धर्म अपने अनेकान्त सिद्धान्त के ज़रिये से सब धर्मों का समन्वय करता है; पर हिन्दू धर्म अपने विशाल रूप और व्यावहारिक उदारता से सब धर्मों का समन्वय करता है। हिन्दू धर्म हिन्द में आई हुई सभी संस्कृतियों का समन्वय है, इसलिये एक साधारण हिन्दू में सहज उदारता पाई जाती है। आज शहरों में हिन्दू मुश्किल से दिखाई देते हैं, गांवों में अभी हिन्दू बचे हैं। वे धर्म की पंडिताई रक्खें या न रक्खें, पर वे यह जानते हैं कि कोई भी देवता हो, किसी भी धर्म का देवता हो, आख़िर वह देवता है, मुझे पूजनीय है। इसी मनोवृत्ति के कारण वे कभी कभी सड़क के किनारे गड़े हुए मील के पत्थर को भी देवता की मूर्ति समझकर प्रणाम कर जाते हैं, उसमें भी वे ईश्वर देखने की कोशिश करते हैं, हर एक प्रतीक उनकी भक्ति को जान सकता है। एक ईश्वर को तैंतीस करोड़ देवताओं के रूप में वे भज सकते हैं। इस उदारता के ऊपर हम बड़ी भारी पंडिताई को भी न्योछावर कर सकते हैं। उनमें विवेक की कमी हो सकती है, इसलिये विवेक आ जाय तब तो कहना ही क्या है, पर उनमें एक ऐसी चीज़ अवश्य है जो अपने धर्म के नाम पर अहंकार की पूजा नहीं करने देती, या बहुत कम करने देती है; हिन्दू धर्म में यह एक बड़ी भारी ख़ूबी है।

एक बार एक सज्जन ने मुझसे कहा—हिन्दू धर्म कोई धर्म नहीं है, क्योंकि न तो कोई उसका निश्चित देवता है न उसका कोई निश्चित विचार। मैंने कहा हिन्दू धर्म कोई संकुचित धर्म नहीं है, वह धर्मों का अजायबघर है, अनेक दर्शन, अनेक आचार विचार, ईश्वर के अनेक रूप, जिसमें समन्वित हैं और जिसमें हर एक को जगह मिल सकती है।

बात यह है कि यह एक राष्ट्र का धर्म है आर्य, शक, हूण आदि, जो यहाँ आते गये और यहां बसते गये उन सब के साथ इसका आदान प्रदान हुआ और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इससे जिस विशाल व्यापक समभावी धर्म की रचना हुई, वह हिन्दू धर्म कहलाया। किसी धर्म को नष्ट करके यह रचना नहीं हुई, किन्तु सब धर्मों को रखकर उनका समन्वय करके यह रचना हुई। यही कारण है कि संहारक महादेव, विकराल काली मैया, वैभवशाली विष्णु आदि सभी वृत्ति के सैकड़ों देव इस धर्म में आ गये। ईश्वर के जितने महत्त्वपूर्ण कार्य इस दुनिया में होते हैं, उन सब का प्रतिनिधि एक एक देव बन गया। सभी देव ऋषि आदि ईश्वर के अंश बन गये। इस प्रकार एक ईश्वर को बड़े विशाल रूप में हिन्दुओं ने देखा और सब का समन्वय करके एक राष्ट्र धर्म बनाया।

दुर्भाग्य से हिन्दू धर्म नष्टप्राय होगया है—आज वह हिन्दू धर्म कहलाने लायक नहीं है। एक दिन हिन्दू धर्म तैंतीस करोड़ देवताओं का बोझ उठा सका; पर आज ईसा और मुहम्मद का बोझ नहीं उठा सकता। गीता के शब्दों में सारी विभूतियाँ ईश्वर का अंश हैं; पर हिन्द के नौ करोड़ मुसलमानों का आराध्य मुहम्मद ईश्वरांश नहीं है, हिन्द में आये हुये इतने व्यापक तत्त्व को अगर हिन्दू धर्म नहीं अपना सकता, तो वह हिन्दू धर्म कैसे रहा? इसे तो आज संग्रहणी की बीमारी है, पचता एक दाना भी नहीं और दस्त पर दस्त लगते चले जाते हैं; ऐसी हालत में आख़िर यह कितने दिन ज़िन्दा रहेगा?

ख़ैर, आज जैसी चाहे और दशा हो, पर यह निश्चित है कि इस देश की एक समन्वयात्मक विशाल संस्कृति ही हिन्दू धर्म रहा है। जैन धर्म और बौद्ध धर्म से भी उसने बहुत कुछ लिया, उन्हें अपनाया, अब इसलाम और क्रिश्चियानिटी को भी अपनाने की ज़रूरत है। वह अपना सकता है। वह सर्व धर्म समभाव के आधार पर ही खड़ा हुआ है।

इसलाम—आपने देखा कि जैन धर्म और हिन्दू धर्म अपने अपने ढंग से किस प्रकार धर्म समभाव का समर्थन करते हैं। इसलाम का भी अपना एक तरीक़ा है। इसलाम के अनुसार एक लाख चौबीस हज़ार पैग़म्बर हुए हैं और हर क़ौम में या हर उम्मत में हुए हैं,[1] इसलाम उनमें से किसी में भी फ़र्क़ नहीं करता। क़ुरान में ईसा मूसा आदि अनेक पैग़म्बरों के नाम आते हैं और उनका जीवन चरित्र बड़े आदर के साथ लिखा गया है, पर नाम आये हों या न आये हों इसलाम सब के साथ बराबर का व्यवहार करता है। क़ुरान की आयतें साफ़ साफ़ शब्दों में इस बात का बयान करती हैं।

इसलाम इस तरह दुनिया की हर एक क़ौमों के महापुरुषों की इज़्ज़त करता है और हर एक क़ौम के इष्ट पुरुषों को पैग़म्बर मानता है। हिन्दुस्तान सरीखे बड़े भारी मुल्क की बड़ी बड़ी कौमों के महात्माओं को इसलाम पैग़म्बर न माने यह कैसे हो सकता है? इस मुल्क की क़ौमों के पैग़म्बर कहलाने लायक राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध आदि सभी पैग़म्बर हैं और क़ुरान की आयतों के अनुसार उनकी इज़्ज़त करना, उनमें फ़र्क न करना हर एक मुसलमान का फ़र्ज़ है। इसीलिये मैं मुसलमानों से कहा करता हूं कि भाई जब तक तुम राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध की जय न बोलोगे तब तक तुम मुसलमान कैसे कहला सकोगे?

अब आप समझ गये होंगे कि इसलाम कैसी सचाई के साथ सभी धर्मों और सभी धर्मों के महात्माओं में किस प्रकार समभाव रखता है। इस प्रकार सभी धर्म नीति और सदाचार का पाठ पढ़ाते हैं और सभी धर्मों के प्रति आदर करना सिखाते हैं। धर्म के नाम

१—हर क़ौम के लिये रसूल मिला है। [सूरे यूनिस] हम हर एक उम्मत में कोई न कोई पैग़म्बर भेजते हैं। [सूरे नहल] कहो कि जो किताब हम पर नाज़िल हुई और जो किताबें तुम पर नाज़िल हुईं हम तो सभी मानते हैं और हमारा ख़ुदा और तुम्हारा ख़ुदा एक ही है। [सूरे अन्कबूत] कोई क़ौम ऐसी नहीं कि उसमें पैग़म्बर न हुआ न हो। [सूरे फ़ातिर] हमने तुमसे पहिले रसूल भेजे उनमें कुछ ऐसे हैं जिनके हालात हमने तुमको सुनाये और उनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनके हालात हमने तुमको नहीं सुनाये। [सूरे मोमिन] हम इनमें से किसी एक में भी जुदाई नहीं समझते [सूरे बक़र]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर लड़ना और अहंकार की पूजा करना कोई नहीं सिखाता। इसीलिये मैं कहता हूं कि सब धर्म एक हैं, हमें सब में समभाव रखना चाहिये।

बहुत से लोग दर्शन शास्त्रों की और स्वर्ग नरक आदि की दुहाई देकर धर्मों की आलोचना करने लगते हैं; यह धर्म तो ईश्वर नहीं मानता या ऐसा मानता है, वैसा मानता है आदि। मैं कहता हूं ये फ़जूल के झगड़े हैं धर्मशास्त्र का काम नीति, सदाचार प्रेम और मनुष्यता का पाठ पढ़ाना है; इसलिये धर्म को या धर्मशास्त्र को हम इसी नज़र से देखें। दर्शन, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, प्राणिशास्त्र आदि का विचार स्वतन्त्र रूप में करें। इनसे सम्बन्ध रक्खें, सहयोग स्थापित करें; पर इन शास्त्रों की बातों के विरोध को धर्म का विरोध न समझें।

गणित के अनुसार दो और दो चार होते हैं। अब इस बारे में यह विचार करना व्यर्थ है कि हिन्दू धर्म के अनुसार कितने होते हैं और इसलाम के अनुसार कितने होते हैं। गणित पर हिन्दू, इसलाम, जैन आदि की छाप लगाना उचित नहीं। इस तरह जब मुझसे कोई पूछे कि कलकत्ता से नागपुर कितने मील है ? मैं कह दूंगा सात सौ मील। तब क्या कोई यह पूछेगा कि हिन्दू धर्म के अनुसार कितने मील है और इसलाम के अनुसार कितने मील ? यदि इस बात का सम्बन्ध धर्म शास्त्र से नहीं है, तो हिन्दुस्तान कितना बड़ा है इसका सम्बन्ध धर्मशास्त्र से कैसे हो जायगा और यदि हिन्दुस्तान की रचना का सम्बन्ध धर्म शास्त्र से नहीं है, तो एशिया या पृथ्वी का कैसे हो जायगा ? जब पृथ्वी का नहीं तब ब्रह्मांड का कैसे हो जायगा ? धारा तो एक ही है; एक ही शास्त्र का विचारणीय विषय है। तब इन बातों का सम्बन्ध हम धर्म शास्त्र से कैसे जोड़ सकते हैं ? इसीलिये मैं कहता हूं कि धर्म शास्त्र को धर्म शास्त्र रहने दीजिये; दुनिया भर के शास्त्र और उनके झगड़े धर्म शास्त्र पर न लादिये। अगर आप धर्म का पालन करना चाहते हैं, धर्मात्मा बनना चाहते हैं, तो प्रेम का, सेवा का, ईमानदारी का और त्याग का व्रत लीजिये; दुनिया की भलाई में अपनी भलाई समझिये। दर्शन आदि की चर्चा को इस झगड़े में न लाइये; जैसा आपको जच जाय वैसा मान लीजिये, पर उसका उपयोग नीति और सदाचार को बढ़ाने में कीजिये। हमारा पहिला और मुख्य काम सुखी बनना और जगत को सुखी करना है। सब बातें और सब धर्म इसी के लिये हैं। इस बारे में महात्मा बुद्ध के विचार ध्यान देने लायक हैं। उन्होंने बड़े अच्छे ढङ्ग से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी।

एक बार आनन्द ने—(बुद्ध के एक मुख्य शिष्य ने) बुद्ध से पूछा—भगवन् ! सभी लोग परलोक आदि के बारे में कुछ न कुछ निश्चित बात कहा करते हैं पर आप कुछ नहीं कहते यह क्या बात है ?

इसके उत्तर में म० बुद्ध ने बहुत सी बातें कहने के साथ कहा— देखो आनन्द, जङ्गल में एक आदमी जा रहा था, उसको तीर लगा जिससे बड़े ज़ोर से ख़ून की धारा बहने लगी। ख़ून की धारा देखकर उसका पहिला कार्य क्या है ? वह पहिले ख़ून की धारा बन्द करे या तीर किसने बनाया आदि बातों की खोज करे ?

आनन्द ने कहा—ख़ून बन्द करना पहिला काम है।

म० बुद्ध ने कहा—तो बस, संसार में जो तृष्णा आदि के घाव प्राणी को लगे हैं, उनका बन्द करना पहिला काम है। उसी के लिये मैंने चार आर्य सत्य बतलाये हैं। तृष्णा आदि के बन्द होने पर परलोक आदि कैसा भी हो, तृष्णा आदि हटा देने वाले का भला ही है। उसकी चिन्ता अभी से क्यों की जाय ? मरने के बाद जैसा होगा देख लिया जायगा।

मैं आप से यही कहना चाहता हूं कि ईश्वर, परलोक आदि आपको जिस प्रकार मानना हो मानिये, पर उसके किसी एक रूप के मानने न मानने से धर्म अधर्म का रिश्ता न जोड़िये।

दूसरी बात यह है कि ईश्वर और परलोक आदि के मानने न मानने की बात मुंह से न कहिये, जीवन से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहिये। जीवन से न कहकर मुंह से कहना अपने को और दुनिया को धोखा देना है। हममें से अधिकांश ऐसे धोखेबाज़ ही हैं। इसीलिये मैं कहा करता हूं कि हज़ार में नौ सौ निन्नानवे मुसलमान ख़ुदा को नहीं मानते, और हज़ार में नौ सौ निन्नानवे हिन्दू ईश्वर को नहीं मानते और हज़ार में नौ सौ निन्नानवे जैनी कर्मवाद पर विश्वास नहीं रखते। रखते होते तो जगत में पाप दिखलाई न देता।

अगर हम ईश्वर या अल्लाह को मानते तो क्या अँधेरे में पाप करते ? समाज या सरकार की आंखों में धूल झोंकते समय क्या यह न मानते कि ईश्वर की आंखों में धूल नहीं झोंकी गई। हममें से कितने आदमी ऐसे हैं जो दूसरों को धोखा देते समय यह याद रखते हों कि ईश्वर या ख़ुदा की आंखें सब देख रही हैं। अगर हमारे जीवन में यह बात नहीं है, तो ईश्वर या ख़ुदा की दुहाई देकर दूसरों से झगड़ना हमे शोभा नहीं देता। यह बात कर्मवादी जैनियों से कहना है। कर्मबंध तो अँधेरा उजेला नहीं देखता, तब यदि कर्मबंध पर विश्वास रखते तो किसी के कहने पर भी पाप नहीं करते। कहने सुनने से क्या हम विष खा सकते हैं ? विष के फल पर विश्वास होने से अगर हम विष नहीं खाते तो कर्म पर विश्वास होने से हमें अँधेरे में भी पाप नहीं करना चाहिये।

कहने का मतलब यह है कि हम इन बातों को जीवन में उतारने की कोशिश करें, ईश्वरवादी हों या कर्मवादी या अद्वैतवादी, अगर हम अपने वादों को जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे, तो धर्म की राह में सब अपने को एक ही जगह पायेंगे; झगड़ने का कोई कारण न रह जायगा। सब धर्म हमें एक ही जगह ले जाने वाले मालूम होंगे।

पड़ौस में और दुनियादारी में भाई चारा निभाया जाता है, फिर धर्म में क्यों नहीं निभाया जा सकता। दूकानदारी में एक दूसरे के यहां सौदा देते हो, लेते हो, एक आफ़िस में पास पास बैठकर रोटियों के लिये नौकरी कर लेते हो; विवाह शादी में पान सुपारी के लिये एक दूसरे के यहां चले जाते हो; दुनिया, जो झगड़ने की जगह है, वहां तुम किसी न किसी तरह मिलकर काम कर लेते हो, पर धर्म, जहां कि दुनियादारी के रगड़े झगड़ों से छुट्टी पानी चाहिये, वहीं झगड़ने बैठ जाते हो ! यह पानी में आग क्यों लगाते हो ? कम से कम पानी को बचा रहने दो, हम इससे दुनिया की आग बुझायेंगे।

तुम्हें हिन्दू मुसलमान या जैनी बने रहना है ? बने रहो। कौन मना करता है। हर एक आदमी अपने लिये एक घर बनाता है। तुम भी अपने लिये एक मज़हबी घर बनाये रहो। पर क्या घर से बाहर न निकलोगे ? कभी किसी के घर बैठने उठने भी न जाओगे ? क्या किसी को कभी अपने घर न बुलाओगे ? क्या घर में खिड़की या दरवाज़ा न रक्खोगे ? यदि रक्खोगे, जाओगे-आओगे तो मज़हब में भी जाओ आओ मिलो जुलो। मन्दिर तुम्हारा घर है तो कभी मसजिद में भी चले जाओ, मसजिद तुम्हारा घर है तो कभी मन्दिर में भी चले जाओ। राम तुम्हारा बाप है तो मुहम्मद को चचा कहलो, मुहम्मद तुम्हारा बाप है तो राम को चचा कह लो। दुनियादारी में तो पड़ोसी के बाप को चाचा कह लेते हो; फिर यहीं क्या बुराई है।

भाई, ज़रा सोचो तो, जब तुम्हारे नगर में कोई ग़ुलाम मुहम्मद नाम का कलक्टर आ जाता है, तब तुम उसे सलाम कर लेते हो या नहीं ? अगर ग़ुलाम मुहम्मद को सलाम किया जा सकता है, तो मुहम्मद साहब को सलाम क्यों नहीं किया जा सकता ? रामदास कलक्टर हो तो उसे सलाम, पर राम को नहीं, महावीर प्रसाद को बन्दे और सलाम, पर महावीर के नाम पर मुंह फेरना ! यह कैसी समझदारी है। यह कहां का शिष्टाचार है ?

भाई, मैं क्या कहूं ? अपना दिल निचोड़ कर आप के सामने कैसे रक्खूं ? जब मैं इस देश के हिन्दू मुसलमानों को इसलिये लड़ते झगड़ते देखता हूं कि एक अपने को हिन्दू कहता है दूसरा अपने को मुसलमान, तब मेरा हृदय रोने लगता है। इन लड़ाइयों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से हमारा पेट नहीं भरता, कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता सिर्फ़ घमंड उभड़ता है और हम कुछ स्वार्थियों की बातों में आकर एक दूसरे का सिर फोड़ डालते हैं ! इन्हीं झगड़ों के कारण हम ग़ुलाम बने। इतिहास हमारी आंखों के सामने है पर हम अंधे और मूर्ख बनकर शिकार हो रहे हैं। हमें इसी देश में रहना है, इस देश के बाहर हमारा और कोई घर नहीं है। तब झगड़ने से आखिर क्या लाभ ? क्या एक दूसरे को मिटा देना चाहते हो ? पागल हुए हो अगर ऐसा सोचते हो तो।

एक दिन आर्य जाति और नाग जाति के लोग इससे भी बुरी तरह लड़े थे। उस समय लाखों नाग लोगों को ज़िन्दा जला दिया गया था। पर आज हमी में नाग बैठे हैं। वे दूध शक्कर की तरह मिल कर एक हो गये हैं। दोनों के धर्म दोनों के वंशी समाज में मिल गये। हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति उन्हीं के मिश्रण का परिणाम है। कोई किसी को न मिटा पाया। हां, मिला पाया। दोनों मिल कर एक बन गये। यही राह है जिस पर पहिले के लोग चले हैं। इसी पर हमें आज चलना है।

क्या हज़ार पांच सौ आदिमियों के सिर फोड़ कर तुम एक दूसरे को मिटा देना चाहते हो ? सन् १९१८ में जब देश व्यापी इन्फ़्लुएंजा आया था उसमें एक करोड़ से भी अधिक आदमी मर गये थे। गांव के गांव साफ़ हो गये थे फिर भी जब मर्दुमशुमारी हुई तब पहली मर्दुमशुमारी से अधिक ही जनसंख्या निकली। अब मारो तुम कहाँ तक मार सकते हो। जब यमराज इन्फ़्लुएंजा के डंडे से हमें न मार पाया तब तुम लकड़ी के डंडे और मामूली छुरियों से नाम निशान मिटाना चाहो तो कैसे मिटा सकोगे ? इस प्रकार तुम किसी जाति के आदमियों को ख़त्म नहीं कर सकते, हां अपनी आदमियत ख़त्म कर सकते हो।

फिर यह तो सोचो अगर तुम आदमियों को ख़त्म भी कर सको तो तुम्हें कोई ख़त्म कैसे करने देगा या होने देगा ? तुम दुधारू गाय हो। जिन्हें तुम्हारा दूध पीना है वे तुम्हें कैसे मरने देंगे ? हिन्दू या मुसलमान दोनों में से अगर एक भी मर जाय तो फूट कैसे फैलाई जा सकेगी ? इसलिये इस भूल में न रहना कि तुम दूसरी जाति को मिटा सकोगे या दबा सकोगे। दोनों में से किसी एक को न तो इतना मिटने दिया जायगा न इतना दबने दिया जायगा कि वह घबराकर डंडा नीचे रख दे। बैलेन्स बराबर इतना सम्हाला जायगा कि तुम एक दूसरे के ऊपर डंडा बरसाने लायक़ शैतानियत दिखा सको और तुम्हारा दूध निकाला जा सके।

मैं आपसे बार बार आंखें खोलने के लिये कहता हूं। इतिहास पर नज़र डालने के लिये कहता हूं और दुहराता हूं, कि यदि आप धर्म के नाम पर शैतान बन जायँ तो आदमियत को मिटा सकते हैं, आदमियों को नहीं। जिस दिन मुट्ठी भर मुसलमान इस देश के भीतर आये उस समय हिन्दुओं के हाथ में राज्य था, पर उस समय ये मुसलमानों को न मिटा सके, और जिस दिन मुसलमानों के हाथ में साम्राज्य था, उस दिन ये हिन्दुओं को न मिटा सके, तो आज तो दोनों ग़ुलाम हैं आज ये क्या एक दूसरे को मिटायेंगे ? इसलिये इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं कि दोनों हिल मिल कर रहें, अपने को एक ही देश और एक ही जाति का समझें। धर्म कोई भी पालें। सभी धर्म आदमियत का पाठ पढ़ाते हैं, सभी में सचाई है। इसलिये आदमियत का पाठ पढ़ें, सच्चे बनें। सर्व धर्म समभाव के नाम पर आज आपसे मैं यही कहना चाहता हूं।

सत्याश्रम, वर्धा
पर्युषण-पर्व व्याख्यान, नवम्बर' ४१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शेंगान

श्री कु० प० राजगोपालन बी. ए.

[मूल तमिल से, अनु०—का० श्री० श्रीनिवासाचार्य]

१

"आम का यह पेड़ आपके दादा जी का बोया हुआ है। वे बड़े धरमात्मा थे। इसका फल मिसरी जैसा मीठा होता है। और, यह नारियल का पेड़-उन्होंने अपने हाथ से इसे लगाया था। इधर के रास्ते पर से चलिये; मेड़ों पर चलने की आपकी आदत नहीं है। शहर के जो बाबू ठहरे!"—इस तरह शेंगान फटा फट बोलता जा रहा था।

वह और मैं—दोनों मेरे खेत की एक तरफ़ की मेड़ पर चले जा रहे थे।

मैंने पूछा—"अब की फ़सल कब कटेगी?"

खेत में खड़े लंबे लहलहाते धान के पौधों को दिखाते हुए शेंगान ने कहा—"और कुछ दिन लगेंगे। अभी धान अधपके ही हैं। उधर पच्छिम की ओर कुछ कुछ पक गये हैं...यहाँ आम के साये में बैठ जाइये।—अरे छोकरे? छोटे बाबू जी के लिये दो ठो कच्चे नारियल तोड़ लाना।"

मैं नारियल का पानी पीने का तरीक़ा नहीं जानता था। सारे बदन पर पानी बहने लगा।

यह देखकर शेंगान हँस पड़ा और हाथ से इशारा करके कहने लगा—"नारियल के पत्ते से यों कसकर पकड़ लीजिये और झट से औंधाइये।"

अछूत शेंगान मेरे दादा के ज़माने से लेकर हमारी खेती करता आ रहा था। शोक्कनूर गाँव में वही एक सबसे बड़ा बूढ़ा रह गया था। उम्र उसकी अस्सी साल की बतायी जाती थी; लेकिन देखने पर वह साठ साल से ऊपर का नहीं लगता था। उसके हाथ में उसकी ऊंचाई जितनी ही लंबी बांस की लाठी रहती थी। अकसर कहा जाता है कि गांव में जितने लाठी वाले होते हैं वे सब के सब भंगी चमार होते हैं। लेकिन शेंगान न भंगी था, न चमार। खेती करना उसका धंधा था। भूरी ज़मीन में धान के पौधे रोपना उसकी जीवन-यात्रा थी। हरे-भरे छाती भर ऊंचे पौधों के बीच वह हमेशा किसी न किसी मेड़ को ठीक ठाक करता रहता और शाम को साँध्य तारा के साथ आँख मिचौनी खेला करता।

खेत से बाहर निकलने पर भी हाथ में लाठी और कमर पर लँगोटी उसकी सदा की साथिनें थीं। वह सिर से पैर तक काला कम्बल ओढ़े रहता, जैसा बरसात में लोग टाट से ढक लेते हैं। पाँवों में चप्पल, काला बदन, सफ़ेद मूंछें, सिर के बीचों बीच कुछ पके हुए लंबे बाल—यही उसकी रूप रेखा थी।

"बहू जी ख़ुशी से हैं? आपका बच्चा कैसा है? क्यों न एक बार बहू जी को भी यहां ले आते?"—इन प्रश्नों के साथ, कुछ दूर पर बैठा हुआ शेंगान अपने चप्पल की गाँठ कस रहा था।

२

मैं हर साल फ़सल के वक्त गांव जाया करता था। न जाने पर, शेंगान मेरा पिंड नहीं छोड़ता था। वह जो कुछ देता मैं ले आता। आधी रक़म तो जाने आने में ही लग जाती। शेंगान का इजारा मेरे दादा जी के ज़माने में ही तय हो गया था। आस पास के खेतों के इजारों की रक़में अब दूनी हो गयी थीं। इस बार जब मैं गया तो गांव के सभी लोग मुझे यों देखने लगे मानों वे मुझ पर कोई अहसान कर रहे हों। कुछ लोग मेरे पास आकर सलाहें देने लगे। एक सज्जन ने कहा—"आप बेचारे कभी साल में एक बार यहां आते हैं। गांव की हक़ीक़त आप क्या जानें—बूढ़ा किसान आपको इजारे के नाम आख़िर कुछ देता है या नहीं? सारे गांव में इजारे की क़ीमत बढ़ा दी गयी है। आप ही को शायद वह बुढ़वा धोखा दे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रहा है ?" उन्होंने किसी दूसरे किसान को दूने इजारे पर मुक़र्रर करने का वादा भी किया।

"नहीं जी इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? बूढ़ा बहुत दिनों से हमारी खेती का काम कर रहा है। उसी को रहने दीजिये।"—मेरी इस लल्लो चप्पो से उनका ढाढ़स बढ़ गया।

उन्होंने कहा—"आप चुप रहिये जी ? यों किसी का लिहाज़ रखने से कुछ नहीं बनेगा। सारा इंतज़ाम मैं खुद कर दूंगा। और देखिये ! गांव वालों के साथ मिलकर आपको रहना है कि नहीं ? गांव वालों ने इजारे का जो मूल्य तय किया है, वह आपको भी तो मिलना चाहिये ? अगर आप शेंगान को ऐसा ही रहने देंगे तो यहां के किसान हम लोगों से रूठ जायँगे। इसका परिणाम बहुत बुरा होगा।"

"नहीं नहीं। उसे निकालने का मेरा मन नहीं है। उसे ही खाने दीजिये। मेरा गुजारा इस ज़मीन के भरोसे थोड़े ही हो रहा है ?"

उन्होंने ताने के साथ कहा—"आप यह कह रहे हैं ! वाह ! फिर क्यों न दान पत्र लिखकर ज़मीन उसी के हवाले कर देते ? तब आने जाने का यह फ़िज़ूल खर्च भी न रहता !"

मैं हमेशा हर शख्स से मुलाहजा रक्खा करता हूं। कोई भी नया आदमी मिनट भर में मुझे नचा सकता है। मेरी धीमी चिकनी-चुपड़ी बातों से उस आदमी के कान पर जूं तक न रेंगी। उन्होंने किसी दूसरे किसान को मुक़र्रर कर मेरे नाम इक़रारनामा लिखा कर ला दिया। मेरे सामने एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई कि मैं शेंगान से यह बात कैसे कहूं और उसे कैसे निकालूं।

३

दूसरे दिन खेत की ओर चलते वक्त मैं सोचता गया कि शेंगान को ज़्यादा बातें करने का मौक़ा ही न दिया जाय और बीच में ही कड़ाई के साथ अपनी बात सुना दी जाय। दो तीन बार मैं वही बात उससे कहने जा रहा था; लेकिन बात मुंह से निकली ही नहीं; कंठ में ही अटक कर रह गयी।

शेंगान ने कहा—"जीता रहूंगा तो अगले साल कुंए की पक्की जगत बनाकर पुर चलने का भी परबन्ध करूंगा। बाबू जी, आप मेरे लिए दो पछांहिये बैल ख़रीद दीजिये। फिर देखिये, मैं इसी ज़मीन में अपने हाथों सोना पैदा करके दिखाऊंगा !"

मैंने धीरे से कहना शुरू किया—"शेंगान तुम्हारी तो अब उम्र ही बीत गयी है ! खेती-बारी का काम तुमसे भला अब क्या होगा ?"

"आपने भी ख़ूब कहा ! गांव भर में कौन ऐसा है जो मेरे मुक़ाबले में खेती-बारी के काम वक्त पर और इतनी होशियारी से कर सकता हो ? नदी के पहले बहाव का पानी जब तक हमारा है"—

"तुम्हारी मदद के लिए कोई नहीं है न ?"

"मेरा बेटा बोन्दिलियन अगर रहता तो आज मैं इस सारे गांव की खेती अपने ऊपर न ले लेता ? परसाल शीतला के परकोप से—" इतना कहते-कहते शेंगान ने एक लम्बी आह छोड़ी।

थोड़ी देर बाद फिर उसने कहा—"उसी का एक बिटवा है। अजी, वह कर सकता है एक भरे-पूरे आदमी का काम !"

शेंगान फिर कुछ देर तक चुप रहा। उस वक्त मैं उससे क्या कहता ? मुझे अपनी बात कहना अच्छा नहीं लगा। आम के पेड़ तले बैठा हुआ शेंगान उस समय शायद शीतला के उस प्रकोप के बारे में सोच रहा था, जो उसके बेटे बोन्दिलियन को उठा ले गया था। एकाएक उसने सिर उठा कर मुझे ग़ौर से देखा।

"क्यों बाबू जी आप सोचते हैं कि मैं बिना खेती किये ज़मीन को बंजर बनाये रक्खूंगा ? मेरे जीते जी वह न होगा ! इस ज़मीन में नमी नहीं है। इसकी मिट्टी ख़ुश्क है। सात आठ बार इसमें बकरियों का झुंड लगा रखना ठीक होगा। क्या वैसा किया जाय !"

शाम हो रही थी। दूर पर सियार शोर करने लगे थे।

"चलिये, अब अँधेरे में ही घर लौटना होगा बाबू जी। आपको अँधेरे में चलने का अभ्यास न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होगा ।"—यह कहकर आगे रास्ता दिखाता हुआ, शेंगान तेज़ी से घर की ओर चल पड़ा । उसका पीछा करना भी मेरे लिए कम तकलीफ़ की बात नहीं थी ।

"क्यों बाबू, खेती का काम मुझसे बदलवाने की सोच रहे हो? मेरे जीते जी कोई दूसरा आदमी उसमें हल जोतेगा ? यह भी कहीं हो सकता है ? कौन ऐसा माई का लाल है, जो मेरी ज़मीन में पैर रखने की हिम्मत रखता है !···यह तो देखूं कि यह धरती उसके लिए कैसे उपजाऊ होती है ।"

कुछ देर तक वह चुपचाप चलता रहा । मेड़ पर ठोकर लगने के कारण किसी सिंचे खेत के कीचड़ में मैंने पैर रख दिया ।

"रहने दीजिये; नाले में पैर धो लेंगे ।···चालीस बरसों से मैंने इन हाथों से मेड़ बनाये; नाले और नालियाँ बनायीं···। बड़े बाबू जी आज होते तो मुझे निकालने का ख़्वाब में भी ख़्याल न करते । मैंने इस ज़मीन को अपनी आखों की मानिंद पाल-पोसकर···" शेंगान इस तरह कहता जा रहा था ; अचानक वह बोल उठा—"मैं इसे छोड़ूंगा नहीं बाबू !"

मैं अपने मन से एक निर्णय पर पहुंच गया । मैंने कहा—"मैंने तो तुमसे खेती की बदली के बारे में कोई बात नहीं कही !"

"वही तो कह रहा हूं ! एकाध धरी ज़्यादा या कम, मैं खाऊं या आप खावें, इसमें कौन-सा फ़र्क़ पड़ जायगा ? इस खेत में इतनी मेहनत जो मैं करता हूं ! चोटी का पसीना एड़ी तक—यह मुहावरा बस मेरे ही लायक है ! कौन ऐसा है जो रात दिन मेरी तरह हार में पड़ा रहे । प्यासे को जैसे पानी दिया जाता है वैसे बारबार खेत को सींचे कौन ?—वह भी ठीक वक़्त पहचानकर । हमारी बन-लच्छमी मुझसे बातें किया करती हैं । क्या कभी किसी साल मेरी धरती में चोरी हुई है ? धान कभी सूखकर जले हैं ? धरती कभी ऊसर पड़ी है ? पार साल जब बारिश बिल्कुल नहीं थी तब भी तो मैंने पैदावार दिखा दी थी ? इस हार में मेहनत करके ही मुझे मरना होगा, बाबू ! वरना मैं इसे छोड़ूं तो मर जाऊं !"

४

अगले दिन तड़के पांच बजे उठकर जब मैं दतुवन करने खेतों की तरफ़ चला तब शेंगान बुलंद आवाज़ में 'एत्तम'* के गाने गाता हुआ पानी सीं . रहा था ।

"बाँस के पत्ते पर सोनेवाली ओ शबनम की बूंद !
सोई ओस की बूंद को हरनेवाले ओ सूरज !"

—इस गाने की ध्वनि मेरे कानों में पड़ी । काम में मशगूल होने की वजह से उसने मेरी ओर आंख तक नहीं उठायी ।

"क्यों जी, शेंगान से आपने कह दिया न कि इस फ़सल के कटते ही उसे ज़मीन छोड़ देनी होगी ?"—मेरे मित्र ने पूछा ।

आत्माभिमान के साथ सिर उठाकर मैंने जवाब दिया—"नहीं जी, मुझसे यह कहा नहीं जायगा । शेंगान जितना कुछ धान मुझे देगा, उतना ही मेरे लिये काफ़ी है !"

---

* 'एत्तम'—खेत सींचने की एक तरह की कल । बांस के ऊपरी डांडे पर एक या दो आदमी ऊपर नीचे चलते रहते हैं और दूसरा या तीसरा आदमी उसके एक सिरे से बंधे हुए बांस के नीचे की लोहे की हांडी में भरे पानी को उंडेलता है । इसमें बैलों की बिल्कुल जरूरत नहीं ।—अनु० ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गद्य गीत

कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या

मृत्यु

मैं स्वयं मृत्यु हूँ, फिर मैं क्यों मरूँगी ? मैं नहीं मरूँगी, क्योंकि मैं स्वयं मृत्यु हूँ !

मेरे हाथ में जीवन के विशाल साम्राज्य का शासन है; मेरे बाहुओं पर यौवन के परिन्दों का मज़ार है; मेरी आंखों में मां से बिदा होते हुए विवश बच्चों का चित्र है; मेरी काली घनी केशराशि में मुझे निमन्त्रित करने वाले दुःखी प्रेमियों की प्रणय गांठें हैं;

मेरे रग-रग में बीभत्स रोदन का मीठा-कडुआ राग है; मेरे हृदय के कोने-कोने में चितायें धधकती हैं; मुझे देखकर पाप डरता है, पुण्य हँसता है; मेरी स्मृति से मानव अन्धकार छोड़कर प्रकाश की खोज में संलग्न होता है;

यौवनावस्था में मेरा नाम मृत्यु है, और प्रौढ़ावस्था में मैं प्रलय नाम से अवतरित होती हूँ, मैं स्वयं मृत्यु हूँ, इसीलिये सब मुझमें आते हैं;

मैं नहीं मरती; मैं अमर हूँ !!

सह न सकेगा

सुनो तो;

संसार हमारे सुख का भार सह न सकेगा; रजनी की आशा वियोग के स्वप्नों से भरी है; प्रभात की मुस्कान में आंसू की मूर्छना है, अन्धकार भविष्य का सभा बांध रहा है और पुरातन सुधियों का जर्जर हृदय मुझे बारम्बार पीछे हटने का संकेत कर रहा है क्योंकि,

संसार की उपेक्षा हमारे सुख का भार सह न सकेगी !!

आह्वान

मैं—

ऊद जलाकर तेरा अह्वान कर रही हूँ !

सन्ध्या सोलहों शृङ्गार से सुशोभित हो बादलों का घूंघट काढ़ धीरे-धीरे मेरी पलकों पर उतर रही है; जितना ज़्यादा मैं तेरे लिये सोचती हूँ उतनी ही ढिठाई से अन्धकार झाड़ियों प्रसूनों और प्रकृति पर हँस रहा है !

जीवन—मृत्यु की एकान्त निद्रा का प्रथम स्वप्न बनने की चेष्टा में है ! तब देव !

मैं तेरा आह्वान कर रही हूँ ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय संस्कृतियां

श्री अलवर्ट ग्यूराई

बीसियों वर्षों से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का प्रश्न दर्शन शास्त्रियों, वैज्ञानिकों और विद्वानों का ध्यान अपनी ओर खींच रहा है। सारी दुनिया में इस बात की ज़रूरत महसूस हो रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय इस्तेमाल के पारिभाषिक शब्द एक-से ही होने चाहियें। वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्रों में ही यह ज़रूरत महसूस नहीं हो रही बल्कि सभी व्यावहारिक बातों के लिये इसकी ज़रूरत दिखाई दे रही है। किसी भी वैज्ञानिक से पूछिये वह हरगिज़ आपको इस बात की सलाह न देगा कि हर प्रान्त अपने लिये अलग अलग वैज्ञानिक परिभाषाएँ गढ़ें। वैज्ञानिक नाप और तोलों के लिये दुनिया भर में अन्तर्राष्ट्रीय शब्द व्यवहार में लाये जा रहे हैं। धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के पारिभाषिक शब्द बहुत बड़ी तादाद में बनते जा रहे हैं। थोड़े से व्याकरण के नियम बना लेने की ज़रूरत है और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा तैयार हो जायगी। और ये नियम भी कोई बड़े पेचीदा नियम नहीं, मामूली खेलों के जो नियम होते हैं, उनसे भी थोड़े नियम। अधिक से अधिक दो हज़ार शब्द याद कर लेने से कोई भी व्यक्ति आसानी से अन्तर्राष्ट्रीय भाषा-विशारद हो जायगा। अनेक पारिभाषिक विषयों के लेखों में ९० शब्द अब भी अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं; केवल बीच-बीच में राष्ट्रीय भाषा के शब्द आ जाते हैं। ज़रूरत इस बात की है कि इसके लिये आम नियम बना लिये जायँ और सारे राष्ट्रों से स्वीकृति ले ली जाय तथा शब्दों की विधिवत सूची तैयार कर ली जाय। अन्तर्राष्ट्रीय भाषाकारों के सामने यही एक समस्या है।

मानवता जिस तेज़ रफ़्तार से प्रगति कर रही है, उसकी उन्नति में सबसे पहली बाधा एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का अभाव है। हर जगह यही दिक़्क़त आपको पेश आयेगी। जहां भी दो या तीन देशों के प्रतिनिधि इकट्ठा होते हैं, वहीं यह समस्या खड़ी हो जाती है। चाहे दोस्त हो और चाहे दुश्मन, आपसी बातचीत के लिये उन्हें कोई क्षणिक सहारा ढूढ़ना ही पड़ता है। विविध राष्ट्रों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सदा के लिये महज़ टूटे-फूटे शब्द अथवा कारतूस और बम तक ही सीमित नहीं रहेगा। समय बीतेगा और प्रेम की लहरें नफ़रत की ज्वालामुखी को दबा देंगी। उस वक्त सारे संसार में पारस्परिक प्रेम की भावना उमड़ेगी। उस स्थिति को सुलभ करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बड़ा काम देगी।

वे दिन बीत चुके जब विद्वानों के बीच में लैटिन आम भाषा थी और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक सम्बन्ध के लिये फ्रेंच आम भाषा थी। आजकल अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समारोहों में तीन-तीन, चार-चार, पांच-पांच भाषाओं में अनुवाद करने पड़ते हैं। कितना समय और शक्ति इसमें बरबाद होती है, इसका अन्दाज़ा सहज ही में हो सकता है। हालत दिनों दिन ख़राब होती जा रही है। अल्डुअस हक्सले कहता है कि पढ़े-लिखे मेक्सिको निवासी आज फ्रेंच भाषा के बेसिक रूप एस्पेरेण्टो में बात कर लेते हैं, किन्तु भाषा को लेकर लोगों के दिमाग़ दिनों दिन जिस तरह संकुचित होते जा रहे हैं, उसको देखते हुए वह दिन दूर नहीं कि मेक्सिकोवासी केवल अपनी ही देशी भाषा समझेंगे और अंग्रेज़ केवल अंग्रेज़ी। फिर हर राष्ट्र में वहां की हर बोली अपने लिये सरकारी छाप चाहती है। छोटी से छोटी भाषा भी बड़ी से बड़ी भाषा के साथ बराबरी के रुतबे के लिये बेचैन है। प्रत्येक देश के अन्दर यह कैफ़ियत है कि दो-दो तीन-तीन भाषाएं राष्ट्रभाषा का रूप लेने के लिये प्रतिस्पर्द्धा कर रही हैं। जिस देश में भाषा का कोई प्रश्न ही नहीं है, वहाँ भी अब भाषा की समस्या खड़ी होती जा रही है। जहाँ पहले एक राष्ट्रीय भाषा थी, अब वहाँ अनेक भाषाएँ होड़ ले रही हैं। कार्ल-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार पूंजी को एक जगह इकट्ठा करने की इच्छा बलवती होती है। किन्तु भाषा को खण्ड खण्ड करने में ही लोगों को आनन्द मिलता है। जब कि विज्ञान संसार में दूरी को कम कर रहा है, भाषावादी प्रचण्ड प्रयत्न से देश के अन्दर ही उस दूरी को बढ़ा रहे हैं।

भाषा के प्रश्न को हल करने के लिये वैज्ञानिकों की भी तलबी हुई। उनसे उम्मीद की गई कि वे किसी वैज्ञानिक चमत्कार से इस भाषा की समस्या को हल करें और विज्ञान ने इस सम्बन्ध में सबसे अधिक आश्चर्य सोवियत् रूस में करके दिखाया है। सोवियत् सोशलिस्ट रिपब्लिक अनेक जातियों और उपजातियों का देश है। सांस्कृतिक हैसियत से वहाँ प्रत्येक जाति को बराबरी का अधिकार है। सोवियत् पार्लमेण्ट में ज्यों ही कोई व्याख्यान देता है, त्योंही अनुवादकों की फ़ौज उसे दस-दस और बीस-बीस भाषाओं में फ़ौरन अनुवाद करती है। असेम्बली हाल में हर सीट के पास एक-एक 'इयर फ़ोन' लगा हुआ है। हर मेम्बर फ़ोन उठाकर अपने कानों में लगा लेता है, और बस होने वाले व्याख्यान उसे अपनी ही भाषा में सुनाई पड़ते हैं। इस तरह विज्ञान की मदद से सोवियत् रूस ने अपनी भाषा-समस्या को ज़ाहिरा तौर पर हल कर लिया है।

वास्तव में यह एक बड़ा भारी वैज्ञानिक चमत्कार है। हालाकि इसमें ख़र्च बेहद पड़ता है, किन्तु फिर भी शस्त्रों और दूसरी बातों में जो ख़र्च होता है, उसके मुक़ाबिले में यह ख़र्च कुछ भी नहीं है। किन्तु जहां तक लिपि का प्रश्न है, भाषा की समस्या को यह वैज्ञानिक चमत्कार भी हल नहीं कर पाया। अब भी महत्वपूर्ण लेखों और रचनाओं को अनेक भाषाओं में छपवाना पड़ता है। प्रवास में यात्री दूसरे मुल्कों की छोटी से छोटी बात भी आसानी से नहीं समझ पाता। भाषा की कठिनाई के कारण मानव-सम्पर्क की कड़ियाँ ढीली पड़ जाती हैं।

इनमें से बहुत सी दिक़्क़तें दूर हो सकती हैं यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिये एक भाषा निश्चित कर ली जाय। शुरू-शुरू में तो अनुवाद की फिर भी ज़रूरत पड़ेगी, दुभाषिये फिर भी रहेंगे और इयर फोन की तरकीब से भी काम लिया जायेगा; किन्तु थोड़े ही वर्षों के अन्दर लोग इस अन्तर्राष्ट्रीय भाषा में दक्ष हो जायेंगे। इसे आसानी से समझ बोल और पढ़ लेंगे और लोग दस वर्ष के अन्दर ही इस भाषा के बोलने, लिखने और पढ़ने में चतुर और विशेषज्ञ हो जायेंगे। मुरक्को वाले एक दिन के लिये भी स्कूल नहीं गये; मगर सुन सुनाकर वे सफ़ाई के साथ फ्रेंच और अंग्रेज़ी बोलते हैं। जब किसी के सामने उद्देश्य होता है, तो वह भाषा भी आसानी से सीख लेता है। हम अपने स्कूलों में जो भाषा सिखाते हैं, उसके पीछे कोई वास्तविक उद्देश्य नहीं होता और इसीलिये हमें इस सम्बन्ध में पूरी कामयाबी नहीं मिलती। आने वाली दुनिया इस अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की उपयोगिता को समझेगी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि थोड़े से थोड़े समय में वह इसे सीख लेगी।

किन्तु इस अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का यह अर्थ नहीं कि इसके कारण राष्ट्र भाषा के महत्व में कमी हो जायेगी। राष्ट्र भाषा तो रहेगी; फलेगी और फूलेगी ही। राष्ट्रीय भाषा छोटे से छोटे विचारों में भी आत्मीयता की गहराई भर देती है, जिस गहराई को बड़े बड़े दर्शन शास्त्री भी नहीं पहुँच पाते। मामूली से मामूली शब्दों के अन्दर राष्ट्र भाषा एक ख़ास ध्वनि और अर्थ पैदा कर देती है। मेरी नम्र सम्मति में मानव-संस्कृति के तीन विभाग हैं—(१) मातृभूमि और मातृ भाषा के साथ उसका गहरा सम्पर्क, (२) यात्रा द्वारा नई-नई खोजों में उसकी भावना और (३) अखिल विश्व में मानव अनुभवों का उसका उत्तराधिकार।

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र भाषाओं की जगह लेना नहीं है, बल्कि उन्हें उसे ऐतिहासिक और राष्ट्रीय रूप देना है। विज्ञान दोहरे ख़तरे के रूप में छोटी-छोटी भाषाओं के ऊपर मड़रा रहा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यदि ज़बरदस्त दृढ़ प्रयत्न नहीं किया जाता, तो आयरिश भाषा अब तक समाप्त हो जाती। छोटी-छोटी मोटी भाषाएं केवल बरदाश्त कर ली जाती हैं, किन्तु उन्हें बेहद तुच्छ समझा जाता है। बड़ी-बड़ी भाषाएं अपने साम्राज्यवादी रूप के कारण विकृत हो गई हैं। ग्रीक और लैटिन को भी ज्योंही अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का रूप मिला, त्योंही उनका महत्व समाप्त हो गया। फ्रेंच भाषा की यह बड़ी भारी जीत थी कि फैड्रिक (दूसरे) जैसे लोगों ने उसे अपनाया। फ्रेंच को किन्तु यही जीत फ्रेंच भाषा के लिए नाश का कारण साबित हुई। हिन्दुस्तान में बाबू इंगलिश अपनी निर्जीविता के लिए मशहूर है और जेनेवा में बोली जाने वाली अंग्रेज़ी बेहद कर्णकटु बन गई है।

यदि राष्ट्र भाषाओं को सुरक्षित रखना है, तब उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग में नहीं लाना चाहिये। हर व्यक्ति में अज्ञात रूप से एक हिटलर छिपा हुआ है। जब भी उसको मौक़ा मिलेगा सारे संसार में वह अपनी ही भाषा की डिक्टेटरी लाद देगा। बहुत से अमरीकनों में ज़ाहिरा तौर पर साम्राज्यवाद की भावना नहीं है। किन्तु ऐसे लोग भी इस बात में विश्वास करते हैं कि जैसे ही दुनिया अपने होश में आयेगी, वह हालीवुड की भाषा और हालीवुड के आचार-विचार को अपना लेगी। एच० जी० वेल्स चाहते हैं कि सारी दुनियां में एक ही सरकार क़ायम की जाय, लेकिन वेल्स ने अपनी इस दुनिया के लिये अंग्रेज़ी भाषा की ही कल्पना की है। आकडेन ने बेसिक अंग्रेज़ी ईजाद कर इस सम्बन्ध में बड़ा काम किया है। व्याकरण को उसने बेहद आसान बना दिया है। किन्तु इस सब के उपरान्त भी बेसिक अंग्रेज़ी, अंग्रेज़ी ही है। अंग्रेज़ी शब्दों के बेहूदा हिज्जे और अजीबो ग़रीब उच्चारण को दुरुस्त करने का उसने कोई प्रयत्न नहीं किया। और इसीलिये अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से बेसिक अंग्रेज़ी मुश्किल भाषा ही रह जाती है। अंग्रेज़ी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाने की वकालत करने वालों की दलीलें वास्तव में उनके ख़िलाफ़ ही जाती हैं। वे कहते हैं, अंग्रेज़ी बोलने वालों के पास बेहद धन है, उनकी बेशुमार तादाद है और सातों समुन्दर पर उनकी हुकूमत है। किन्तु उनकी इन साम्राज्यवादी भावनाओं के प्रति दुनिया को सदा सख़्त नफ़रत रहेगी। हमें एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की ज़रूरत है, जो प्रत्येक राष्ट्र के स्वाभिमान और उनके हितों को आदर के साथ देखे। मुझे विश्वास है कि संसार विजय का हिटलर का स्वप्न भंग हो जाएगा। किन्तु मुझे यह भी विश्वास है कि अंग्रेज़ी को संसार की भाषा बनाने का स्वप्न भी पूरा न हो पायेगा। अंग्रेज़ी और जर्मन तो अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन ही नहीं सकतीं। इसके लिये हमें दूसरी भाषा तलाश करनी पड़ेगी। ऐसी भाषा जिसे साम्राज्यवाद ने कलुषित नहीं किया है। इसके लिये मलाया, माल्टा या अलबानिया जैसे छोटे देशों की कोई भाषा उपयुक्त होगी।

यदि दुनिया में एकता और सामञ्जस्य पैदा करना है, यदि दुनिया में सांस्कृतिक बुनियादें क़ायम करनी हैं, तो हमें मानव-स्वतंत्रता पर अपना अन्तर्राष्ट्रीय महल खड़ा करना होगा। बग़ैर राष्ट्रीय स्वतंत्रता के अन्तर्राष्ट्रीय एकता असम्भव है। राजनैतिक साम्राज्यवाद की तरह ही भाषा में भी साम्राज्यवादी प्रवृत्तियां होती हैं। हम अपनी ही भाषा को संसार में सबसे महत्वपूर्ण भाषा समझ लेते हैं और दूसरी भाषाओं को और उसके बोलने वालों को अवज्ञा की दृष्टि से देखने लगते हैं। बहुत छोटे और ग़ुलाम राष्ट्रों की भाषा बिलकुल तुच्छ दिखाई देती है। उनसे कुछ ऊपर संरक्षित राष्ट्रों की भाषाएं थोड़ा बहुत सहन कर ली जाती हैं। उनसे ऊपर कुछ छोटे छोटे स्वतंत्र राष्ट्र हैं, जैसे स्वीडन और फ़िनलैण्ड और उन देशों की अपनी अपनी संस्कृतियाँ भी हैं। उनसे ज़रा ऊपर बड़ी-बड़ी क़ौमें और उनकी प्रसिद्ध भाषाएं हैं। और सबमें ऊपर साम्राज्यवादी राष्ट्र और उनकी साम्राज्यवादी भाषाएं हैं। भाषा का यह अभिजात पहलू जब तक दूर नहीं होता, तब तक हमारे दिल से भाषा सम्बन्धी कलुष भी दूर नहीं होगा। धन का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभिमान, जाति का अभिमान, राष्ट्र का अभिमान संस्कृति का अभिमान—छोटी जातियों को अवज्ञा से देखने का अभिमान हम में भरे हुए हैं। और आश्चर्य यह है कि इन झूठे अभिमानों को अपने हृदय के अन्दर सेते हुये भी हम अपने को सभ्य और सुसंस्कृत कहने का दावा करते हैं। यदि दुनिया को सुसंस्कृत बनाना है तो हमें इस अभिमान को दबाना होगा। अन्यथा हम कितना ही सभ्य बनने का दावा करें, हमारे हृदय के अन्दर बर्बर दानवता खेल करती रहेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के पीछे अनेक राजनैतिक पहलू भी हैं, अर्थात् अपने जातीय और राष्ट्रीय घमण्ड का परित्याग। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को अपनाने पर भी संसार में एकदम से शान्ति क़ायम नहीं हो जाएगी। विविध राष्ट्र इसीलिये आपस में लड़ते हैं कि वे एक दूसरे को ख़ूब समझते हैं। एक भाषा बोलने वाले ही एक दूसरे का गला काटने लगते हैं; किन्तु फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा स्वीकार करने का अर्थ यही है कि मानव जीवन को एक सूत्र में बांधने के लिये हम पहला क़दम उठाने के लिये तैयार हैं।

एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अपना लेने पर मध्य यूरोप के बहुत से झगड़े सदा के लिये शान्त हो जायंगे। वहाँ का झगड़ा धार्मिक नहीं हैं। वहाँ यहूदियों का प्रश्न नहीं है, न उनका अलग संगठन ही है; दोनों पक्षों में प्राटेस्टेएट, कैथालिक और स्वतंत्र विचार के लोग हैं। जिसका ज़रा भी दिमाग़ सही है वह यह जानता है कि यूरोप का झगड़ा साम्प्रदायिक झगड़ा नहीं है। जर्मन कोई जाति विशेष नहीं है। वह एक ऐतिहासिक भाषा बोलने वालों का समूह है। हिटलर ख़ुद ट्यूटन जाति का नहीं है। विजेताओं में अलबानियन जाति के लोग हैं और पराजितों में नार्डिक जाति के लोग भी हैं। यह मौजूदा युद्ध आर्थिक युद्ध भी नहीं है। जर्मनी, जिसकी शिकायत है कि उसके पास कुछ भी नहीं है, पोलैण्ड के मुक़ाबले में उसके पास कहीं अधिक हैं। यदि जर्मनी और फ्रान्स की चुङ्गी चौकियां उठा दी जांय तो जर्मनी का सारा धन फ्रान्स में आ जाय और फ्रान्स का सारा धन जर्मनी में चला जाएगा। लड़ाई का असली कारण राजनैतिक चौधरापे की भावना है। हिटलर जिस बराबरी का दावा कर रहा है, वही बराबरी वह यूरोप के दूसरे राष्ट्रों से छीन रहा है। पोलैण्ड वालों ने ख़ुद यही बात अपने शासन में यूक्रेनियन और लिथुनियन लोगों के साथ की थी। यूरोप का यदि दोबारा बटवारा कर लिया जाय, तब भी यह झगड़ा समाप्त नहीं होगा। इसका केवल एक ही रास्ता है। लोग ख़ुद शान्ति से रहें और दूसरों को भी शान्ति से रहने दें। हर एक व्यक्ति को अपने इच्छानुकुल धर्म पालन करने और अपनी इच्छानुकुल भाषा बोलने का अधिकार रहे। जब विविध भाषा भाषी व्यक्ति शासन की ग़रज़ से या व्यापार की ग़रज़ से एक जगह इकट्ठा हों तब वह कोई निष्पक्ष भाषा बोलें।

थोड़े ही व्यक्तियों को इसमें संदेह होगा कि नफ़रत का यह दरिया दस महीने या दस वर्ष में आख़िर सूखेगा ही। उसके बाद सारे यूरोप के लिये एक केन्द्रीय शासन बनेगा और फिर सारे संसार में केन्द्रीय शासन क़ायम होगा। इस तरह के केन्द्रीय शासन के लिये एक केन्द्रीय भाषा की भी ज़रूरत होगी। फ्रेंच, इटैलियन, स्पेनिश अथवा किसी भी भाषा को यह महसूस करने का मौक़ा न देना चाहिये कि वह किसी अन्य देश वालों की भाषा से घटिया है, या उनकी भाषा अंग्रेज़ी या जर्मन से घटिया है। यदि यही बात रही तो फिर ईर्षा की आग कभी नहीं बुझ सकेगी। हर मुल्क को अपनी-अपनी भाषा बोलने का अधिकार क्यों न मिले और सब मिलाकर एक केन्द्रीय भाषा क्यों न बोलें। केन्द्रीय भाषा के साथ-साथ केन्द्रीय शासन आसान हो जायेगा। चुङ्गी, आयात, निर्यात, रक्षा पुलिस, हवाई इन्तज़ाम आदि सभी बातों में सहूलियत हो जायेगी। फिर सारे यूरोप के लिये एक पार्लिमेण्ट और एक ही सिविल सर्विस की कल्पना मूर्खतापूर्ण कल्पना न रह जायगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम ऊपर कह आये हैं कि हमारी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा ऐसी होगी जिस पर साम्राज्यवाद का इल्ज़ाम नहीं लगाया जा सकेगा। इस काम के लिये हमें एक ऐसी भाषा चुननी चाहिये कि जिससे बड़ी भाषाओं का आपसी मनमुटाव न बढ़े और छोटी भाषाओं को अपमान की ठेस न पहुँचे। यदि यह नहीं होता तो मौत के परदे से किसी दफ़नाई हुई भाषा को बाहर निकाल कर इस्तेमाल करना चाहिये।

यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय भाषा विज्ञान कोई मज़ाक़ नहीं, बल्कि वास्तव में एक सच्चा और असली विज्ञान है। इनसान की शुरू की कोशिशों के पहले भद्दे नतीजे निकलेंगे और बहुत सी कोशिशें बेकार जायँगी। लेकिन जब तक मानव भ्रातृ-भाव की भावना हमारे अन्दर है तब तक हमें उम्मीद नहीं छोड़नी चाहिये।

मेरी राय में इस सम्बन्ध में सब में अधिक महत्व पूर्ण काम प्रसिद्ध गणितज्ञ और तर्कशास्त्री ग्युशेप पियानो ने किया है। उसने वैज्ञानिक तरीक़े से अन्तर्राष्ट्रीय इस्तेमाल में आने वाले तमाम शब्दों की एक सूची बना डाली है और उन शब्दों के इस्तेमाल के लिये उसने व्याकरण के थोड़े से नियम भी बना लिये हैं। उसका तो यहां तक कहना है कि व्याकरण की कोई ज़रूरत भी नहीं है। लेकिन व्याकरण का उद्देश्य तो भाषा को दुरूह बनाना नहीं है, बल्कि सहल बनाना है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को लेकर और अनेक लोगों ने प्रयोग किये हैं। किन्तु देखना यही है कि भाषा ऐसी हो जो बड़े और छोटे, विजित और पराजित, सभ्य और अर्ध-सभ्य सब मुल्कों को आकर्षित कर सके। इस सम्बन्ध में एसपेरेण्टो, आक्सीडेण्टल और लेटिनो नामक नई-नई भाषायें गढ़ी गई हैं। इनका पूरा व्याकरण एक पोस्टकार्ड पर छापा जा सकता है। इनमें न कोई मुहावरे हैं और न इनके कोई विशेष नियम। ध्वनि के अनुसार उनकी हिज्जे होती है। क्लिष्ट अक्षरों से भी इन भाषाओं को बचाया गया है। किन्तु इन भाषाओं को अपनाने में भी बहुत सी दिक़्क़तें हैं। फिर भी यदि निश्चित इरादा कर लिया जाय, तो अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को एक वास्तविकता बनाया जा सकता है।

हमारी सभ्यता की माँग है कि छोटे छोटे राष्ट्र टूटकर एक महान केन्द्रीय शासन स्थापित हो। कोई क़ौम दूसरी क़ौम की ग़ुलाम न रहे। जब तक प्रत्येक राष्ट्र बराबरी का रुतबा नहीं पाता, जब तक हर इनसान ग़ुलामी के बन्धन से छुटकारा नहीं पाता और जब तक साम्राज्यवादी राष्ट्रों का सपना चूर नहीं होता; तब तक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को भी व्यावहारिक रूप मिलना कठिन है। लेकिन यह काम आज किया जाय या बीस वर्षों के बाद, करना तो इसे है ही।

जीवन-तृण

श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी

गहन निशा है!
सागर की उत्ताल तरंगों पर जीवन-तृण,
प्रतिपल, प्रतिक्षण
आज खा रहा कठिन झकोरे
असहनीय हिलकोरे,
छाया तम घनघोर सूझती नहीं दिशा है!
गहन निशा है!

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैं तिनका था,
चढ़ा समीरण पर झूमा था,
उस सुदूर अम्बर के जगमग तारों को मैंने चूमा था।
मैंने पलकें खोल निहारा
पलटा अभिनय सारा,
तीक्ष्ण महासागर की धारा,
बहा जा रहा हूँ जिसमें मैं लघु तृण बिना सहारा।
श्रांत, क्लांत औ हारा,
वह उड़ने की साध अरे, मेरा वह सुख कितने दिन का था!
मैं तिनका था!

इसको कहते जीवन?
खटक रहा जग की आंखों में
लाल किए जग आखें,
अरमानों के तरु का पतझर
सूनी सारी शाखें,
टूट रहा मन हारा,
खोज रहा हूँ पा न सका पर
कोई कूल किनारा,
कोई एक सहारा,
झेल रहा तूफ़ान थपेड़े, आँधी साँसें गिन गिन!
इसको कहते जीवन?

आशा के दिन बीते?
बीत गए दिन अपने?
आज शीत मेरी श्वासों से
लगते नभ तारक भी कँपने,
गहरे अँधियारे में डूबे
तट के तरु भी नहीं डोलते,
गहरे सन्नाटे में सोये
झिल्ली स्वर भी नहीं बोलते,
गहन निशा है!
सागर की उत्ताल तरंगों पर जीवन-तृण
प्रतिपल, प्रतिक्षण
आज खा रहा कठिन झकोरे,
असहनीय हिलकोरे,
क्या जीवन के प्यारे प्यारे सपने सारे रीते?
आशा के दिन बीते?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फ़ासिस्ट बनाम साम्यवादी संस्कृति

श्री गोपाल हलदार, एम. ए.

जून की बाइस तारीख़ को धोखे से नाज़ी जर्मनी ने सोवियत् देश पर आक्रमण किया।

(मास्को की ओर)—अख़बार ख़त्म करके विदुषी पाठिका ने कहा—"देखा ना, हिटलर ने अपना चमत्कार दिखला दिया--एकदम मास्को की ओर। यह किसानों का काम नहीं है! केवल छैही वर्षों में जर्मनी ने क्या नहीं किया?"

साहित्यरसिक अध्यापक बोले--"पढ़ा आपने स्तालिन का भाषण? बिल्कुल बेजान है! सात दिन का धक्का भी संभाल नहीं सका। अब तो हिटलर मास्को की ओर चला।"

दिग्विजयी वैज्ञानिक ने सोवियत् के उद्योग में अब अपना विश्वास खोकर कहा--"उन लोगों ने हमें धोखा दिया है; नहीं तो उनकी हार क्यों हो रही है।"

युद्ध के भाग्य का निपटारा युद्ध ही में होता है, इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं। लेकिन इस युद्ध में मानव के भविष्य का भी अनेक अंशो में निर्णय होगा, इसमें भी सन्देह नहीं। युद्ध के फ़ैसले से ही संस्कृति की भाग्य-परीक्षा भी होती है; उसी हिसाब से युद्ध आज विभिन्न दृष्टिकोणों और विभिन्न संस्कृतियों का अनिवार्य संघर्ष-स्थल बन गया है। उसके अन्दर सभ्य जगत की विरोधी धारायें, जिस तरह स्पष्ट हो गई हैं, उसी प्रकार सभ्य मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण की भी परीक्षा हो रही है। युद्ध-रत शक्तियों की परीक्षा, उनके तन-मन और जीवन के सामर्थ्य की परीक्षा, उनके समग्र मनुष्यत्व की परीक्षा; और तटस्थ मनुष्य की बुद्धि, चेतना, जीवन के अनुभव तथा संस्कृति के दायित्व-बोध की परीक्षा होती है। भारतीय विदुषी और भारतीय अध्यापक की भी उसी तरह परीक्षा हुई। परीक्षा होती है उनकी बुद्धि की, उनके दृष्टिकोण की, और उनकी ज़िम्मेवारी की। युद्ध उनके स्वरूप का भी उद्घाटन कर देता है;—दाहिनी या बांई ओर, पीछे या आगे,—सभ्यता के संघर्ष में कौन कहां है, यह समझने में अब देर नहीं लगती।

प्रकृति का प्रतिशोध

सभ्यता के इस संघर्ष के मर्म को सचेत होकर समझ सकना सभ्यता का परिचायक नहीं है, यह तो सभ्यता की व्याधि का परिचायक है। इसी प्रकार की व्याधि से लड़ाई भी छिड़ती है। लड़ाइयां क्यों होती हैं, इसे इस युद्ध में सभी समझ गये हैं। मानव समाज में लड़ाई होती है, क्योंकि मनुष्य प्रकृति पर जितनी तेज़ी से विजय पाता जा रहा है, अपने चारों ओर की परिस्थितियों पर उतनी शीघ्रता से अपने को परिवर्तित करने में सफलता नहीं मिल रही है; और इसीलिए उसका स्वभाव, उसका अपना नहीं हो रहा है। इसीलिये चारों ओर की परिस्थिति के उस असामञ्जस्य और अपने स्वभाव के विरोध से वह लड़ाई के मुंह में जा पड़ता है। पिछली लड़ाई के अन्त में जिस जर्मनी ने श्मशान-वैराग्य की साधना की थी, उसी जर्मनी ने नाज़ी अभ्युदय के साथ साथ फिर संसार को श्मशान बनाने का आयोजन किया। पिछली लड़ाई के समय जो ब्रिटेन गणतन्त्र के नाम पर युद्ध करने चला था, वह घर लौटा अपने साम्राज्य-अंचल में नष्ट तुर्क-जर्मन-साम्राज्य के खण्ड हीरे-मोतियों को लेकर; और उसी ने फिर दुनिया की जनता की क्रमशः बढ़ती हुई ताक़त के डर से यूरोप के गणतंत्र से हिटलर के लिये डाली लगाई। इस तरह से अपने साम्राज्य के सबसे प्रबल शत्रु को उसी ने तैयार किया। जहां के बुद्धिजीवी अपनी ज़िम्मेवारी के सम्बन्ध में जितने बेख़बर हैं, वहां सभ्यता की यह व्याधि उतनी ही आसानी से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फैलती है; और वह बीमारी उतनी ही मात्रा में बुद्धिजीवी की बुद्धि को विकृत कर देती है।

युद्ध का स्वरूप

अपने चारों ओर की परिस्थितियों को बदलने की ज़रूरत जितनी बढ़ती जा रही है, उतना ही सनातन स्वार्थ (Vested interests) वाले उसे रोकने की कोशिश कर रहे हैं। संसार की सम्पत्ति अभी इन्हीं के हाथों में है, और ये ही संसार के ज्ञानी और गुणी लोगों को वज़ीफ़े देते हैं। अतएव इस पल्टन के पीछे दुनिया की संचित सम्पत्ति है, और उसके विरुद्ध खड़े होते हैं दुनियां के शोषित अभागे। यह बात कहाँ तक सच है यह आज के यूरोप की ओर देखने से समझ में आ जायगी;--मज़दूर-किसानों के राष्ट्र सोवियत् देश के ख़िलाफ़ सारा यूरोप एक हो गया। लड़ाई केवल रूस और जर्मनी में नहीं हो रही है,--सोवियत् के साथ सिर्फ़ नाज़ी-जर्मनी की ही लड़ाई यह नहीं है—बल्कि यह युद्ध है यूरोप के फ़ैसिज़्म और नवजात सोवियत् देश के बीच में। सारे यूरोप के धन, जन, मान की बाज़ी आज एक देश के ख़िलाफ़ लगा दी गई है—स्पेन से स्वयंसेवक आ रहे हैं, पराजित फ्रांस भी नई सेनायें ख़िराज के रूप में दे रहा है; मुसोलिनी की इज़्ज़त रखने के लिये इताली के वीर आ रहे हैं; रूमानिया, हंगरी के भी लाखों सैनिक जमा हुये हैं; स्वीडन-बुलगारिया ने रास्ता दे दिया है; और फ़िनलैण्ड ने भी अपना स्वरूप दिखाने में कसर नहीं रखी। इधर बल्कान के देशों से अनाज आ रहा है; हालैण्ड डेनमार्क से लूटी हुई खानों की चीज़ें इकट्ठा की गई हैं; लोरेने और स्वीडन के लोहे पर जर्मनी का एकाधिपत्य हो गया है, रूमानिया का तेल भी उसकी हथेली में है फ़ैसिज़्म के हथियारों के लिये स्कोडा के मशहूर कारख़ाने और फ्रांस के अस्त्र शस्त्रों के कारख़ाने तक दिन रात चल रहे हैं। यूरोपीय फ़ैसिज़्म के इस अभियान में प्रशान्त महासागर से जापान भी सहायता के लिये लड़ाई में कूद पड़ा है। दुनिया के इतिहास में इतनी बड़ी लड़ाई कभी नहीं हुई। यह युद्ध पूंजीवाद की चेष्टाओं के कारण ही सर्वव्यापी हो गया है—इसी चेष्टा से म्युनिख़ की योजना भी व्यर्थ हो गई। लेकिन स्पेन से सोवियत् रूस और आर्कटिक सागर से काला सागर तक फ़ैसिज़्म ने यह मोर्चा बनाया है, सोवियत् देश और साम्यवाद को ध्वंस करने के लिये। इस युद्ध में दो संसार और दो प्रकार की जीवन-प्रणालियों की भाग्य परीक्षा हो रही है।

सोवियत् और उसकी नवीन संस्कृति को अंत में इस प्रतिक्रिया के ख़िलाफ़ हथियार लेकर खड़ा होना पड़ा। यह दिन आता ही इसे वे भलीभांति जानते थे। इसलिये सोवियत् भी तैयार था! पर वह तैयारी अधिक दिनों की नहीं थी—वह तैयारी अभी भी समाप्त नहीं हुई है। दो पंच वर्षीय योजनायें पूरी हो चुकी हैं और तीसरी अभी अधूरी है। दस वर्षों में साम्यवाद ने एक देश को मध्य युग से उद्योग धन्धों के युग में पहुँचा दिया है। उसके सामने दुनियां की सर्व श्रेष्ठ उन्नति का रास्ता खोल दिया है। सारे संसार के सामने एक गौरवपूर्ण जीवन (Glorious life) की महान सम्भावना उपस्थित कर दी है—लेकिन उसका उद्योग अभी तक ख़त्म नहीं हुआ है। उसे अशेष विघ्नों का सामना करते हुए अपने उद्योगों को पूरा करना पड़ा है। बाहर की आर्थिक सहायता उसे नहीं मिली, बल्कि दुनियां भर में उसके ख़िलाफ़ साज़िशें होती रहीं। दूसरी ओर फ्रेडरिक दी ग्रेट के ज़माने से जर्मन जाति मध्ययुग को पार कर गई है; और दो सौ वर्षों से वह आधुनिक जीवन-यात्रा में संगठित हुई है। धन, जन, और मान में जर्मन भूमि बहुत पहले से ही बढ़ी हुई थी—केवल हिट्लर के 'चार-साले योजना' से वह संगठित नहीं हुई है, इसके पीछे कम से कम सत्तर साल का राष्ट्र-नियंत्रित आयोजन है।

नाज़ी-सोवियत् युद्ध के इस 'उद्योग पर्व, के इतिहास को याद रखना ज़रूरी है। ऐसा करने से तुलना में सुविधा होगी,—समाचार पत्रों के शीर्षकों को पार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करके इतिहास का विस्तृत संकेत हमें दिखाई पड़ेगा। वही संकेत वास्तविकता को पुष्ट करेगा। वास्तविकता के प्रमाण तो हमारी आंखों के सामने दिखाई पड़ रहे हैं—यूरोप की एक भी विरोधी शक्ति नाज़ी सेनाओं के सामने नहीं ठहर सकी। इसके बहुतेरे कारण हो सकते हैं। पर प्रधान कारण राजनैतिक है, यूरोप के शासक नाज़ियों का विरोध करना नहीं चाहते थे। फिर भी यह बात बहुत ठीक है कि नाज़ी सेना को हराना कठिन काम है। खोजने से पता चलेगा कि नाज़ियों की दुर्धर्षता का भी एक यथार्थ और बहुत साफ़ कारण है; वह है प्रधानतः विज्ञान का प्रयोग। लेकिन नाज़ियों के विज्ञान के प्रयोग में नये हथियारों या नई मशीनों का आविष्कार नाम मात्र को ही है—मैगनेटिक माइन या ऐकुस्टिक माइन कोई बड़ी बातें नहीं। इस युद्ध में नाज़ियों की विशेषता वैज्ञानिक आविष्कार में नहीं, बल्कि वैज्ञानिक संगठन में है।

वैज्ञानिक संगठन

सामरिक शक्ति का हिसाब लगाने वाले निपुण लोग हज़ारों प्रकार के लड़ाई के सामानों की बात हमें सुनावेंगे। लेकिन सामरिक शक्ति का मौलिक अर्थ है—योद्धा, उसके बाद आर्थिक व्यवस्था और युद्धोद्योग। दुनियां की बड़ी शक्तियों में अनेक जर्मनी के मुक़ाबले में इन तीन प्रकार के बलों में कुछ कम न थीं। लेकिन उनमें से अधिकांश के युद्धोपयोगी अस्त्र शस्त्रों के कारख़ाने उतने संगठित नहीं थे। उनमें से एक ने भी इन तीन प्रकार के बलों को एक साथ संगठित नहीं किया। पर इन तीनों ताक़तों के एक साथ न होने से सामरिक शक्ति कमज़ोर रह जाती है। सम प्रयोग का अर्थ है—व्यापक और योजना युक्त संगठन। इन्हीं कारणों से जर्मनी इतना शक्तिशाली हुआ है, जर्मनी से बढ़कर और किसी ने इस बात को अच्छी तरह नहीं समझा। पिछली लड़ाई के बाद से ही जर्मनी के सामरिक और असामरिक विशेषज्ञों ने इस विषय में गम्भीर गवेषणा की है। सबसे पहले उन्होंने इसका उद्योग-धंधों में प्रयोग किया—इसी का नाम है "रैशनालाइज़ेशन"; अमरीका में इसे 'वैज्ञानिक इन्तज़ाम' (Scientific Management) कहते हैं। इस बीच में जर्मन समर-विज्ञान-विशारदों ने युद्ध क्षेत्र के लिये भी इसी नीति का प्रयोग किया। हिटलर के अभ्युदय ने उनका रास्ता साफ़ कर दिया। इन्हीं को लेकर हिट्लर ने "ब्रेन ट्रस्ट" (Brain Trust) बनाया। जर्मनी के समग्र सामरिक और असामरिक विचारों का वैज्ञानिक संगठन के लिये प्रयोग किया गया और इस लड़ाई के उद्देश्य के लिये इस वैज्ञानिक संगठन का प्रयोग होने लगा, मूलतः जो समाज-विज्ञान के मतानुसार मनुष्य के अवैज्ञानिक सामाजिक संगठन का ही प्रमाण है। इस वैज्ञानिक संगठन से जर्मनी के पास आज काफ़ी अस्त्र-शस्त्र, विशाल युद्ध-सामग्री; अतुलनीय समर-सामर्थ्य है। इसी से उसका उद्देश्य 'टोटल वार' है। और उपर्युक्त बातों की अवहेलना करने के कारण उसके शत्रु उसका मुक़ाबला नहीं कर सके।

जर्मनी के अलावा एक दूसरे देश ने भी इस गम्भीर सत्य का आविष्कार किया—वह देश है सोवियत् रूस। वैज्ञानिक संगठन सोवियत् संस्कृति की पहली सीढ़ी है। सोवियत् योजनायें इसी का परिणाम हैं। लेकिन सोवियत् के रास्ते में दुर्जय बाधाएं थीं—समय की उसे बहुत कमी थी। फिर भी दस पन्द्रह वर्षों में ही सोवियत् ने एक ऐसा संगठन बनाया कि वही संगठन इस समय सारे यूरोप के बनियों की ताक़त के भी छक्के छुड़ा रहा है।

संस्कृति की विकृति

लेकिन नाज़ी वैज्ञानिक संगठन और सोवियत् वैज्ञानिक संगठन में मौलिक अन्तर है। अध्यापक और शिक्षित मध्यम वर्ग के लोग इन दोनों संगठनों को आम तौर से एक ही समझ बैठते हैं। इसका कारण है पारिभाषिक शब्दों के कारण ज़ाहिरा समानता (Apparent similarity)। वे देखते हैं कि,—(१) नाज़ी और सोवियत् दोनों सामूहिकता-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वादी हैं; नाज़ी अपने को 'सर्ववादी' (Totalitarian) कहते हैं, और सोवियत् वाले अपने को 'समूहवादी' (Collectivist); इन दोनों का मतलब एक ही है। (२) दोनों देशों में डिक्टेटरी हुकूमत है—गणतंत्र नहीं।

लेकिन यथार्थ में इन दोनों व्यवस्थाओं में बहुत अन्तर है। सोवियत् के प्रधान लक्षण और लक्ष्य सभी नाज़ी-जर्मनी की नीति के अनुसार त्याज्य हैं, जैसे:—(१) सोवियत् जिस जीवन-विज्ञान, अर्थनीति और समाज-विज्ञान में विश्वास करता है, फैसिज़्म उसे केवल अस्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसे दुनिया से मिटा देना चाहता है। (२) इसीलिये फ़ैसिज़्म का मौलिक सिद्धान्त है 'जर्मन जातिवाद' (Race Theory or Blood Theory)। वह यही सिद्ध करना चाहता है कि जर्मन लोग आर्य और 'स्वामी जाति' (Herrenvolk) हैं;* और सब जातियों के लोग गुलाम या छोटी जाति के हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस दिशा में सोवियत् का प्रयत्न नाज़ियों से बिल्कुल उल्टा और महान है। उसका कहना है कि परिस्थितियों और दृष्टिकोण के परिवर्त्तन से सभी जातियाँ "आदमी" बन सकती हैं; और प्रत्येक जाति की परम्परा और अधिकार के आधार पर भी मानव जाति का महासंघ बनाया जा सकता है—अपनी अपनी मानसिक संस्कृतियों के रूपान्तर से ही विश्व-संस्कृति का जन्म हो रहा है। (३) फ़ैसिस्ट राज में नारियों को घर ही में बन्द रहना चाहिये। सोवियत् की नीति इससे बिल्कुल उल्टी है। उसके मतानुसार स्त्री को वे सभी अधिकार मिलने चाहियें, जो पुरुषों को मिले हैं। उत्पादन के क्षेत्र में वह जो काम चाहे अपनी इच्छा से चुन ले। (४) नाज़ी जिस अर्थनीति में विश्वास रखते हैं, उसमें वे धनी वर्ग और उनके मुनाफ़ों को ज्यों का त्यों रखना चाहते हैं। पूंजीवादियों के स्वार्थ, उनके वर्ग-आधार और मुनाफ़े की नीति को क़ायम रखने और मज़दूर-किसान क्रान्ति से रक्षा करने के लिये ही फ़ैसिज़्म का जन्म हुआ है। उपर्युक्त वर्ग के स्वार्थ को पुख़्ता बनाने के लिये कभी कभी मुनाफ़े का एक हिस्सा काट लेने की ज़रूरत पड़ती है; क्योंकि धनी चाहते हैं अपने दुश्मन मज़दूरों के ख़िलाफ़ युद्धोद्योग को पूरा करना और युद्ध के संगठन को मज़बूत बनाना। फ़ैसिज़्म की बुनियाद हैं—पूंजीपति, क्रीत दास कलाकार और सेनापति गण; उसकी मौलिक नीति है मुनाफ़ा। दूसरी ओर सोवियत् की मौलिक नीति है उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत अधिकार को ख़त्म करना, व्यक्तिगत सम्पत्ति को मिटा देना, और उसके साथ पूंजीपतियों के मुनाफ़े को भी;—मनुष्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम करेगा और अपनी ज़रूरत के अनुसार सभी चीज़ें लेगा। इसीलिये मज़दूर-किसानों पर ही उसकी बुनियाद है। यही कारण है कि स्तालिन के भाषणों में आडम्बर नहीं होता; साहित्यिक मध्यम वर्ग वालों की नज़रों में वह 'आग उगलने वाला (Firy) नहीं जंचता। (५) वैज्ञानिक संगठन के लिये जर्मनी दुनियां में अतुलनीय है, पर उसका एक ही उद्देश्य है—युद्ध, विजय और फिर युद्ध। युद्धहीन जगत में फ़ैसिस्ट अर्थनीति को कोई स्थान नहीं है। क्योंकि फैसिस्ट अर्थनीति पूंजीवाद के अवैज्ञानिक ढांचे को क़ायम रखना चाहती है। इसी का अनिवार्य परिणाम है आर्थिक संकट। उसीसे बचने के लिये फ़ैसिज़्म युद्ध-यात्रा और युद्ध का आयोजन करता है। मनुष्य के परिश्रम से बनी हुई वस्तुओं का ध्वंस तथा नर संहार किये बग़ैर फ़ैसिज़्म ज़िन्दा नहीं रह सकता। इसीलिये कहा जाता है कि नाज़ी जर्मनी विश्राम नहीं ले सकता (Nazi Germany can not stop) (६) फ़ैसिस्ट डिक्टेटरी और सोवियत् डिक्टेटरी में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। फ़ैसिस्ट डिक्टेटरी नंगे पूंजीवाद की डिक्टेटरी है और सोवियत् डिक्टेटरी

*इसके भी वर्ग भेद हैं। जैसे नाज़ीवाद के प्रधान दार्शनिक [१] आर्थर रोज़ेनबर्ग ने अपनी Myth of the Twentieth Century नामक पुस्तक में लिखा है कि केवल उच्च वंशों के जर्मन ही इस सम्मान के अधिकारी हैं, मैले कुचैले अशिक्षित जर्मन मज़दूर नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मज़दूर-किसानों की डिक्टेटरी है। अर्थात् फ़ैसिज़्म में शासन सूत्र ५ फ़ी सदी लोगों के फ़ायदे के लिये है और उसके वास्ते ९५ फ़ी सदी लोगों को दबाया जाता है। सोवियत् में ९५ फ़ी सदी लोगों का शासन है। सोवियत् का शासन १९३७ ई० से गणतांत्रिक नीति से संचालित हो रहा है। १८ साल से ऊपर उम्र वाले हर एक नर-नारी को वोट देने और निर्वाचन के लिये उम्मेदवार होने का अधिकार है। वे सभी मिलकर अपना प्रतिनिधि चुनते हैं। वास्तव में इतने विशाल देश में इस तरह की उन्नततम गणतांत्रिक नीति का प्रयोग कहीं भी नहीं किया गया। इसका कारण यह है कि आज सोवियत् देश में मज़दूर-किसानों के अलावा और है ही कौन? ऊपर जिन ५ फ़ी सदी आदमियों का ज़िक्र आया है, वे कुलाक (ज़मीदार) आदि थे, लेकिन अब वे लुप्त हो गए हैं। * इसके अलावा फ़ैसिज़्म की डिक्टेटरी का अर्थ है एकाधिपत्य (Furerer Prinzes); सोवियत् डिक्टेटरी का अर्थ है सब का आधिपत्य। जर्मनी में सब कुछ हिटलर करता है; लेकिन सोवियत् में शासन का संचालन समिति के द्वारा होता है। स्वयं स्तालिन ने एमिल लुडविग से अपनी मुलाक़ात में कहा था—'एक आदमी का मत अनेक आदमियों की आलोचना से बढ़कर नहीं हो सकता।' यह बात सच है कि करोड़ों सोवियत् नर-नारी स्तालिन की नीति को ठीक समझते हैं। इतना दिमाग़ी दिवालियापन नहीं आया है कि वे सोचें कि ईश्वर अकेला है; हिटलर भी अकेला है। इसलिये हिटलर ईश्वर है (God is lonely Hitler is lonely so Hitler is God)। यही फ़ैसिज़्म का मन्तक़ है। (७) इसके अलावा फ़ैसिज़्म व्यक्ति को किसी प्रकार की मर्यादा प्रदान नहीं करता सिर्फ़ 'Fuehrer' और उसके मालिक पूंजीपतियों को छोड़कर। लेकिन सोवियत् ने व्यक्ति के लिये भी पूर्णतम विकास का, स्वतंत्रता का दरवाज़ा खोल दिया है। इसी ने रवीन्द्रनाथ जैसे व्यक्ति स्वरूप के उपासक को आश्चर्यचकित कर दिया था। किर्गिज़ और कज़ाक लड़कियों की गवाही से यह बात साफ़ हो जाती है। [रवीन्द्रनाथ—रूस की चिट्ठी परिच्छेद ६-५१-५४]

इन दोनों संस्कृतियों का संघर्ष बुनियादी है। असल में वह संघर्ष है पूंजीवाद और साम्यवाद का; इसीलिये सिर्फ़ उसके "वैज्ञानिक संगठन" को ही देख कर उसे वैज्ञानिक समझ बैठना सबसे बड़ी ग़लती है। बल्कि अर्थनीति, समाज-विज्ञान, और जीवन-विज्ञान के बारे में उसने जो लक्ष्य और आदर्श बनाया है, वह केवल विकृत ही नहीं है बल्कि हास्यास्पद भी है। अपने देश में हम डाक्टर से अधिक नीमहकीम पर विश्वास करते हैं; सभ्यता और संस्कृति की इस नीमहकीमी में उपरोक्त विदुषी और अध्यापक की श्रद्धा होना अचरज की बात नहीं है—लेकिन वे भूल जाते हैं कि उसका स्वरूप और नतीजा क्या है।

फ़ैसिज़्म प्रतिक्रिया के युग की अन्तिम चेष्टा है; और सोवियत् क्रान्तिकारी युग का प्रथम सफल प्रयास है। एक ओर है प्रतिक्रिया अर्थात् संस्कृति का विकृत रूप—और दूसरी ओर है विप्लव अर्थात् संस्कृति का प्रबुद्ध रूप।

---

* सोवियत् भूमि से लौटने के समय राहुल जी ताजिकिस्तान के एक शहर में एक स्कूल देखने गये। वहां एक बच्चे से उन्होंने पूछा कि क्या उसने पूंजीपति देखा है। उसने उत्तर दिया—हां, सिनेमा के पर्दे पर। देखिये 'सोवियत् भूमि'—राहुल सांस्कृत्यायन।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम पीड़ित और शोषित निग्रो : और है हमारी भी संस्कृति

कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन

१९३४ का वर्ष हज़रत ईसा के निर्वाण को इङ्गित कर रहा था। बसन्त ऋतु अपना लबादा समेट रही थी। मकान के दुतल्ले पर बैठे हुए मैंने सुना—गोरी अमरीकन जनता गरजते हुए स्वर में गा रही थी—

रुपहले अमरीकन क्षितिज पर,
घोर काले रङ्ग के निग्रो मेघ छा रहे हैं !
गौराङ्ग आत्माएं न चेतेंगी,
तो नाश अत्यन्त निकट है !

* * *

इतिहास के अतीत पृष्ठ मेरी नज़रों से घूम गये। पहली जनवरी सन् १८६३ को राष्ट्रपति लिंकन ने समस्त अमरीका से ग़ुलामी की प्रथा के अन्त की घोषणा की थी; और ९ अप्रेल सन् १८६५ को ग़ुलामी के समर्थक जनरल ली ने जनरल ग्राण्ट को आत्मसमर्पण किया था। समझा जाता था कि उस दिन से अमरीका से निग्रो जाति की आपदाओं का अन्त हो गया।

अमरीकन गृह-युद्ध के पहले किसी को यह गुमान भी न था कि क़ानून के सुनहले आवरण में ग़ुलामी से भी बदतर प्रथा ईजाद की जा सकती है। २५० वर्षों तक ग़ुलाम लोग गोरों की व्यक्तिगत जायदाद थे। गोरों को उनकी जान माल पर पूरा अधिकार था। उस ज़माने में किसी ग़ुलाम को जेल भेजने का अर्थ था गोरे मालिक को आर्थिक हानि पहुँचाना। उस ज़माने में छोटे मोटे अपराध पर मालिक ही उसे कोड़ों की सज़ा दे देता था। चोरी आदि की सज़ा के लिये उस ज़माने के ग़ुलाम निग्रों पर क़ानून की गिरिफ़्त न थी। किन्तु निग्रो के आज़ाद होते ही 'कानविक्ट लीज़ सिस्टम' नाम का एक क़ानून बनाया गया, जिसके अनुसार गत ४५ वर्षों से हज़ारों निग्रों को निर्दयतापूर्वक लम्बी लम्बी सज़ाएं देकर जेलख़ानों के अन्दर ठूंसा जाता है।

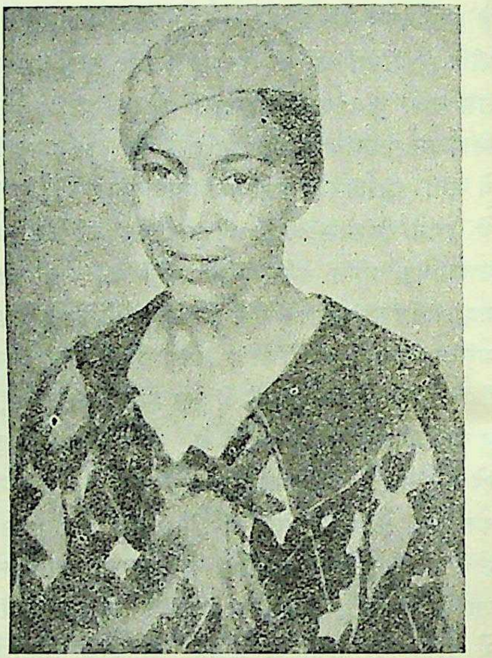

सन् १८६६ में फ़ेडरल गवर्नमेण्ट ने "सिविल राइट्स" क़ानून बनाकर निग्रो को भी वोट देने का अधिकार दिया। इस क़ानून के अमल में आने से पूर्व ही सन् १८६९ में दक्षिण अमरीका की रियासतों ने छोटे छोटे अपराधों पर निग्रो को बड़ी बड़ी सज़ायें देने का क़ानून बनाया और इन निग्रो क़ैदियों को थोड़े से धन में गोरे किसानों को किराये पर देने का तरीक़ा निकाला। इन निग्रो क़ैदियों से ये गोरे किसान निर्दयता पूर्वक अपने खेतों में काम लेते थे। पहले निग्रो एक व्यक्ति के ग़ुलाम थे अब वे किराये पर उठाये जाने वाले सरकारी ग़ुलाम बन गये। क़ैदी की तौक़ उनके गले में अलहदा पड़ी। इस घृणित प्रथा के होते हुए क्या आज कोई गोरा अमरीकन जनतंत्र की आवाज़ लगा सकता है ? निग्रो क़ैदियों को किराये पर उठाने की इस प्रथा से दक्षिणी रियासतों को लाखों डालर की आमदनी होती है। झूठे बहानों से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

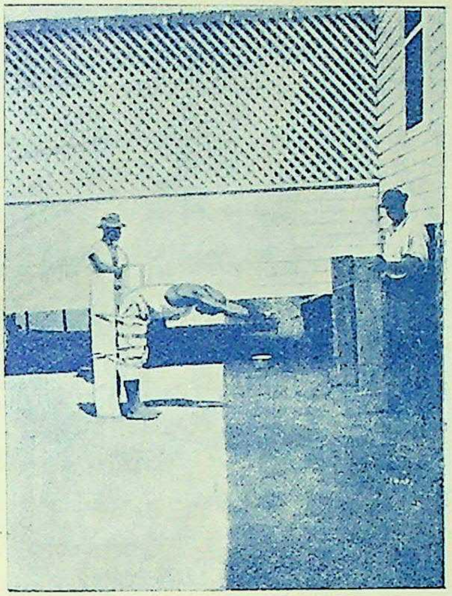

जार्जिया में कष्ट देने का एक तरीक़ा, जलती धूप में घण्टों इस तरह बांध कर रखा जाता है। घण्टे भर में ही पीड़ित बेहोश हो जाते हैं।

१९३५] [जान स्पाइवाक के सौजन्य से

कष्ट देने का दूसरा तरीक़ा। थोड़ी ही देर में पीड़ित निग्रो बेहोश हो जाते हैं फिर भी उन्हें घण्टों इसी तरह लटका कर रखा जाता है।

१९३७] [जान स्पाइवाक के सौजन्य से

१६ वर्ष का एक निग्रो बालक जिसे जलती धूप में लिटाकर रखा गया है। कष्ट देने का तीसरा तरीक़ा। बालक बेहोश हो गया है।

१९३८] [जान स्पाइवाक के सौजन्य से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

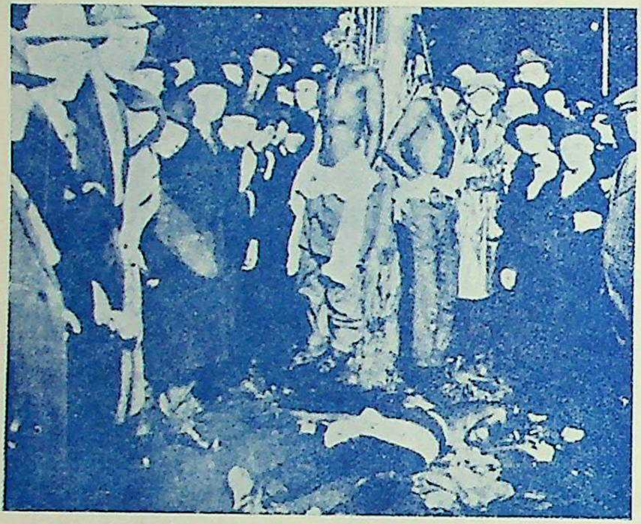

चार चार निग्रो बन्धुओं को एक साथ अमरीकन गोरी जनता द्वारा दरख़्त से सूली पर लटकाया जा रहा है।

फ़ोटो १९३७] [वैंगार्ड प्रेस के सौजन्य से

फ़्लोरीडा में अमरीकन गोरे एक निग्रो बन्धु को पेड़ से सूली पर लटका रहे हैं।

फ़ोटो १९३३] [वैंगार्ड प्रेस के सौजन्य से

शिकागो में इस निग्रो बन्धु को गोरे अमरीकनों ने पत्थर मार मार कर मार डाला है।

फ़ोटो १९३४] [वैंगार्ड प्रेस के सौजन्य से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बेकुसूर निग्रो को पकड़ कर सज़ा दे दी जाती है और उन्हें किराये पर उठा दिया जाता है। जिस जेल से सरकार को सब में अधिक आमदनी होती है, वह जेल सब में अधिक तारीफ़ के योग्य समझा जाता है। इतने भयंकर क़ैदख़ाने दुनिया के किसी हिस्से में भी नहीं हैं। ग़ुलामी की प्रथा भले ही मिट गई हो, किन्तु ग़ुलामी और अधिक क्रूरता के साथ क़ायम है।

बाज़ बाज़ अमरीकन रियासतों ने इन निग्रो क़ैदियों के प्रबन्ध के लिये 'कान्ट्रैक्ट सिस्टम' निकाला है। कुछ रियासतें इन निग्रो क़ैदियों को ५, १० अथवा २० वर्षों के लिये किराये पर उठा देती हैं। कुछ रियासतें जेलख़ानों के अन्दर ही क़ैदियों से काम लेती हैं। इन जेलख़ानों में पुरुष, स्त्री और बालक क़ैदियों से दिन भर काम लिया जाता है और शाम को छोटे छोटे कटघरों में उन्हें ठूंस दिया जाता है। न सोने को बिस्तर देते हैं न ओढ़ने को कम्बल। इन क़ैदियों को जो कष्ट होता है उसे ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। बाहर के किसी दर्शक को इन जेलों के निरीक्षण की इजाज़त नहीं।

क़ैदियों को नीलाम पर चढ़ाया जाता है और जो ठेकेदार सबसे ज़्यादा बोली बोलता है, उसी के सुपुर्द ये क़ैदी कर दिये जाते हैं। म्युनिसिपैल्टियां तक इन्हें ठेके पर लेकर इनसे भंगी का काम करवाती हैं। अबोध बच्चे और अबला स्त्रियां पुरुष क़ैदियों के साथ ही रखी जाती हैं। रात में भी उन्हें एक ही जगह सोना पड़ता है। कई जगह स्त्री क़ैदियों को पुरुषों के कपड़े पहना दिये जाते हैं ताकि इन गोरी सरकारों के कुकृत्य ढके रहें। विनचेस्टर राइफल लिये हुए पहरेदारों के संरक्षण में इन क़ैदियों को बाज़ार के बीच से अपने अपने कामों पर ले जाया जाता है। साथ में ख़ूनी शिकारी कुत्ते होते हैं, जो इन क़ैदियों को भागने से रोक सकें। बहुधा २५०-२५० क़ैदियों को एक ही ज़ंजीर में बांधकर जेल से बाहर निकाला जाता है। काम के बाद हर क़ैदी को रसद दी जाती है। चाहे वह कितना ही थक कर चूर हो गया हो, उसे अपना खाना ख़ुद ही पकाना पड़ता है। उसे एक ही जोड़ी कपड़ा पहनने को दिया जाता है। गीले कपड़ों को उसे या तो बदन पर सुखाना पड़ता है, या फिर नंगे रहना पड़ता है। १८×१८ फ़ुट के कमरों में ६०-६० क़ैदियों को सोना पड़ता है। न उन्हें चटाई दी जाती है, न कम्बल, ज़मीन पर ही उन्हें लेटना पड़ता है।

कुछ जेलों में क़ैदियों को हण्टर की सज़ा दी जाती है और कुछ में उन्हें ठण्डे पानी में तब तक डुबाया जाता है जब तक कि वे बेहोश नहीं हो जाते। स्त्री और बच्चों को भी यही सज़ाएं दी जाती हैं। औरतों को बिलकुल नंगा करके उन्हें मर्द क़ैदियों के ही सामने ५०-५० कोड़ों की सज़ा दी जाती है।

जार्जिया की विल्क्स काउण्टी में एक क़ैदी को इतना मारा गया कि वह ख़ून से लहू लुहान हो गया। फिर उसे एक पेड़ से कसकर बांध दिया गया। दयालु मृत्यु ने आकर उस अभागे का उद्धार किया।

और भी तरह तरह के अमानुषिक तरीक़े इन क़ैदियों को सज़ा देने के निकाले गये हैं। अमरीका जैसे स्वाधीन और जनतंत्रवादी देश में, जो आज दुनिया की स्वाधीनता के लिये लड़ रहा है, अटलांटिक चार्टर की जिसने घोषणा की है, 'कानविक्ट लीज़ सिस्टम' की प्रथा अत्यन्त लज्जाजनक है।

साइबीरिया के प्रसिद्ध अन्वेषक जार्ज कैनन ने जब अमरीका के इस भयंकर 'कानविक्ट लीज़ सिस्टम, को देखा तो बोस्टन को एक सभा में अनायास उसके मुंह से निकल पड़ा—

"मुमकिन है बहुत से अमरीकन मुझ पर अविश्वास करें और मुझे झूठा कहें यदि मैं उन्हें बताऊं कि मैंने दक्षिण अमरीका की कुछ रियासतों में क्या देखा है। २५० झुकी हुई कमर के बूढ़े और नौजवान निग्रो को एक साथ लोहे की ज़ंजीर में कसकर बंधा हुआ मैंने देखा। हर एक के गले में एक भारी तौक़ पड़ी हुई थी। और जो कुछ मैंने देखा, देखकर कांप गया। मेरी अपील है कि आप इस प्रथा को मिटा दें। मैंने ज़ार के साइबीरिया के क़ैदख़ानों में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ अमानुषिक बातें देखी हैं, किन्तु यहां तो मुझे उससे भी अधिक भयंकर और अमानुषिक बातें दिखाई दीं।"

किन्तु इन अत्याचारों के बावजूद भी निग्रो मानवता द्वारा स्वतः प्रदान किये हुये आत्माभिमान का प्रदर्शन करने से बाज़ नहीं आया। कठोर से कठोर अत्याचारों के बीच भी उसने अपनी गर्दन ऊंची रखने का निरन्तर प्रयत्न किया। अत्याचारों का जब उसने प्रतिरोध किया तो गोरी अमरीकन जनता ने क़ानून को अपने हाथों में ले लिया। हमें ग़ैर क़ानूनी सज़ा देने की उसने एक नई प्रणाली ईजाद की, जिसे दुनियां "लिंच" के नाम से जानती है। छोटे से छोटे अत्याचार का भी यदि हमने प्रतिवाद किया, तो हममें से ऐसे स्वाभिमानी स्त्री पुरुषों को या तो पत्थर मार मार कर मार डाला गया, या दरख़्तों से सूली पर लटका दिया गया, या फिर गैसोलाइन छिड़ककर ज़िन्दा जला दिया गया। इस नारकीय प्रथा को दुनिया "लिंच" के नाम से जानती है।

२३ जुलाई सन् १८९७ को लिंच के अनुमोदन में प्रसिद्ध गोरे पत्र "डेली कमर्शियल" ने "लैट गाड बी प्रेज़्ड" नामक शीर्षक से लिखा था--

"जार्जिया में आज जो निग्रो लिंच किया गया है उसे मिलाकर इस हफ़्ते में दो व्यक्ति लिंच हुए। जार्जियावासियो अपने प्रान्त के प्रति अपने कर्तव्य का इसी तरह पालन करते रहो। कुछ दम्भी जनतन्त्र वादी पत्रों के विरोध की परवाह न करो। अपनी अदालतों की मूर्खता पर हंसो, जो निग्रो को न्याय का आश्वासन देती हैं। परमात्मा के दिये हुए सूर्य के प्रकाश में तुम दिन के समय लोगों को लिंच करने का पवित्र कर्म करो। जो भी निग्रो अपनी गर्दन उठाये उसे सूली पर चढ़ा दो। हर नरक के कीड़े को लिंच करने के बाद तुम घुटने टेक कर परमात्मा से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें इस काम के लिये और अधिक बल और शक्ति दे।...''

इसके जवाब में जब कुछ पत्रों ने लिखा कि जार्जिया के पढ़े लिखे लोग लिंच में शामिल नहीं होते तो इसी पत्र ने उत्तर देते हुए लिखा था—

"यह एक मानी हुई बात है कि लिंच करने वालों में पढ़े लिखे और यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट भी शरीक होते हैं। जार्जिया के समस्त सम्भ्रान्त व्यक्ति वह दृश्य देखने आते हैं। पृथ्वी की सतह पर किसी भी देश में जो सभ्य व्यक्ति रहते हैं, जार्जिया के लिंच करने वाले उनसे तुलना कर सकते हैं।"

पूरे चालीस वर्ष से अब तक भयंकर वेग से ये चीज़ें चल रही हैं। राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर से जब इसमें दख़ल देने के लिये कहा गया, तो १५ अक्तूबर सन् १९३२ को हूवर ने वक्तव्य दिया—

"अमरीका की दक्षिणी रियासतों का सामाजिक वातावरण हमारा बनाया हुआ नहीं है और न उन्हें सुधारना ही हमारा काम है।"

जनवरी से जून सन् १९३३ की सरकारी रिपोर्ट में लिंचिंग के सम्बन्ध में कुछ घटनाएं दी गई हैं। उन्हें पढ़कर पाठक समझ सकेंगे कि किन किन अपराधों पर निग्रो को लिंच किया जाता है—

१--चार्ली जानसन, उम्र २० वर्ष, अपराध गिरजे में शोर किया, गोली से उड़ा दिया गया।

२—कैण्टकी में तीन निग्रों को गोली से उड़ा दिया गया। चूंकि उन्होंने एक गोरे की मोटर को शहर से मोटरख़ाने तक ठेलना स्वीकार नहीं किया।

३--एमर गूश, बुलाने पर नहीं ठहरा, गोली से उड़ा दिया गया।

४—टाम ग्रीन, श्रीमती एम्मा ग्रीन और विली वाशिंगटन तीनों निग्रो इस अपराध पर गोली से उड़ा दिये गये, चूंकि उन्होंने एक गोरे को दियासलाई देने से इनकार किया।

५—हैरी जानसन को एक गोरे पुलिस वाले ने इसलिये गोली से उड़ा दिया, चूंकि वह एक गोरे के बंगले से निकलता हुआ दिखाई दिया।

६—विलियम हेवर्ड को इसलिये गोली से उड़ा दिया गया, चूंकि उसने एक गोरी मेम की गाड़ी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

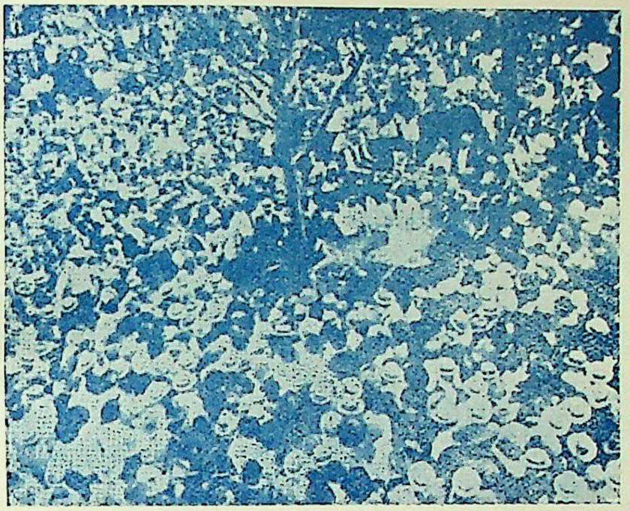

वाको टैक्साज़ में एक निग्रो बन्धु को ज़िन्दा जलाने के लिये हर्षित अपार गोरा समुदाय।
— एक पेड़ के सहारे चिता पर अभागे निग्रो को बांधा गया है।
१६३१] [श्री स्काट नीयरिङ्ग के सौजन्य से

जलने के बाद का दृश्य चारों ओर लपटें अब तक सुलग रही हैं। —
१६३१] [श्री स्काट नीयरिङ्ग के सौजन्य से

मिसीसिपी में एक निग्रो बन्धु को ज़िन्दा जलाया जारहा है और गोरे — स्त्री पुरुष पीड़ित के कष्ट को देखकर ख़ुशी मना रहे हैं।
१६३१] [श्री स्काट नीयरिङ्ग के सौजन्य से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कीचड़ से निकालने में मदद देते समय उससे बहस की।

७—होमर मेफ़ील्ड इसलिये गोली से उड़ा दिया गया, चूंकि वह एक पुलिस मैन के कहने से नहीं रुका।

८—पीटर गिलर इसलिये मारडाला गया, चूंकि वह मज़दूर आन्दोलन में भाग लेता था।

९—जेरी माइल्स इसलिये मारडाला गया, चूंकि उसने पुलिस की सब बातों का टेढ़ा जवाब दिया।

१०—एक निग्रो क़त्ल किया हुआ पाया गया, जिसकी शिनाख़्त नहीं हो सकी।

११—हैरी एटिंस इसलिये गोली से उड़ा दिया गया, चूंकि उसने एक गोरे का काम करने से इनकार किया।

१२—सिलास ड्रिवेरी, उम्र १८ वर्ष, होटल का कुली, इसलिये गोली से उड़ा दिया गया, चूंकि उसने एक पुलिसमैन को शराब की बोतल देने से इनकार किया।

१३—क्लीव हार्टन तेज़ी से चल रहा था। पुलिसमैन ने उसे गोली से उड़ा दिया।

१४—रूबन वेयर इसलिये गोली से उड़ा दिया गया, चूंकि उसने एक गोरे को अपनी गाय ज़बरदस्ती नहीं ले जाने दिया।

१५—जो पोर्टर जेल में मारडाला गया। कारण पता नहीं चला।

१६—जेसी डेविस को पुलिसमैन ने इसलिये मार डाला, चूंकि पिटते-पिटते उसने पुलिसमैन का हाथ पकड़ लिया।

१७—जैक सटन इसलिये डेपुटी शेरिफ़ द्वारा मारडाला गया, चूंकि उसने सन्देह में अपने पकड़े जाने का विरोध किया।

१८—गिलबर्ट कानबिन को जासूसों ने इसलिये मारडाला चूंकि वह बदतमीज़ी कर रहा था।

१९—बेन सिंगिलटन, उम्र १६ वर्ष, इसलिये मारडाला गया चूंकि उसने एक ऐसा लाल पक्षी बेंचा जो गाता नहीं था।

२०—लायड पिनियन को पुलिस ने इसलिये गोली से उड़ा दिया, चूंकि वह चार बजे सुबह मकान से निकल पड़ा था।

२१—लुई, जोसेफ़ और एडम तीन निग्रो इसलिये गोली से उड़ा दिये गये, चूंकि उन्होंने अपने खेत से बेदख़ल होने की अपील की थी।

२२—जान डेविस इसलिये मारडाला गया चूंकि उसने पुलिस से बात करते करते अपनी जेब में हाथ डाला।

२३—पर्सी जोन्स को इसलिये गोली से उड़ा दिया गया, चूंकि पुलिस के रोकने पर उसने अपनी मोटर नहीं रोकी।

२४—जूलियस डेनियल को इसलिये मारडाला चूंकि उसने गाली के जवाब में गाली दी।

२५—फ्रेड रोलर को चोरी के सन्देह में मारडाला गया।

२६—श्रीमती स्काट को डंडा मार मार कर इसलिये मारडाला गया, चूंकि उसने अपनी गोरी मालकिन से अपनी पिछली तनख़्वाह लेने की ज़िद की!

२७—अलबर्ट डासन, उम्र १५ वर्ष, इसलिये गोली से उड़ादिया गया, चूंकि उसने एक तरबूज़ चुराया।

२८—हैरी रास, फ़ैल जेनकिन और निग्रो मछुआ परिवार के तीन व्यक्ति गोरे जत्थों द्वारा मारडाले गये।

२९—राबर्ट रिचर्डसन इसलिये गोली से उड़ा दिया गया, चूंकि एक गोरी मेम को उसने ख़फ़ा कर दिया।

३०—नेलसन नौश, उम्र २४, एक पेड़ से सूली पर लटका दिया गया।

३१—जार्ज जीटर को इतना पीटा गया कि वह मर गया।

३२—लेवेन कारलाक, उम्र १९ वर्ष, पीटकर मार डाला गया।

३३—जान विलियम्स को लिंच कर दिया गया। क़ुसूर एक सुअर की चोरी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३४—विल किन्सी, उम्र २५ वर्ष, लिंच कर दिया गया।

ये आंकड़े सरकारी बयान के अनुसार दिये गये हैं, किन्तु हर सरकारी आंकड़ों की तरह ये बिलकुल अपूर्ण हैं। सन् १९३३ के बाद इस सम्बन्ध के सरकारी आंकड़े अप्राप्य हैं।

आज अमरीका के एक करोड़ तीस लाख निग्रो इस भयंकर और अमानुषिक परिस्थिति के बीच में रह रहे हैं। सन् १९३५ की लिंच की एक घटना का 'इएटर नैशनल लेबर आफ़िस" की विज्ञप्ति में नीचे लिखा वर्णन दिया है—

"मैथ्यू विलियम्स को लिंच करने के पहले उसकी उंगलियाँ और पंजे काट लिये गये। इन्हें निग्रो घरों में फेंककर उन्हें आगाह किया गया कि 'बदमाश निग्रो हम तुम्हारे गोश्त के सैएडविच बना देंगे।' उसके बाद गोरी जनता ने मैथ्यू के ऊपर गैस छिड़ककर आग लगाई। जब तक वह मानव रूपी मशाल जलती रही, तब तक गोरे स्त्री पुरुष शराब पीकर गाना गाते रहे।..."

गर्भवती निग्रो स्त्रियां तक इसी अमानुषिक तरीक़े से ज़िन्दा जला दी जाती हैं।

अमरीका की संस्कृति सदा से और आज भी अत्याचार के ऊपर आश्रित है। वर्ण भेद को रखकर कोई देश क्या सच्चे अर्थों में गणतन्त्रवादी कहलाने का दावा कर सकता है? राष्ट्रपति विलसन दुनिया को गणतन्त्रवादी बनाने का प्रयत्न कर रहे थे, जब कि उनकी ठोकर के नीचे निरीह निग्रो अपने अधिकारों के लिये तड़प रहा था। जो सरकार आज निग्रो पर शासन करती है, उसमें निग्रो का कोई दखल नहीं और न केन्द्रीय शासन में ही उसकी कोई आवाज़ है।

किन्तु निग्रो के अन्दर ईश्वर का दिया हुआ अदम्य साहस है। उसमें परिस्थितियों से ऊपर उठने की क्षमता है। निग्रो स्वभाव से ही सीधा, हंसमुख और उदार है। वह जानता है कि हंसी के ठहाकों में किस तरह दुख को भुलाया जा सकता है। ज़रा से प्रोत्साहन में उसकी हंसी ओठों को चीर कर वातावरण में गूंज जाती है। ऐसी हंसी जिसमें बनावट का कोई चिन्ह नहीं। अमरीका के जीवन में निग्रो संस्कृति ही प्राणों का संचार करती है। संसार गवाह रहेगा कि हम पर किये जाने वाले इन अत्याचारों का एक दिन अवश्य अन्त होगा। दुनिया में किसी जाति ने निग्रो से अधिक कष्ट नहीं झेला। उसका जीवन-पथ उसकी अपनी हड्डियों से जड़ा हुआ है। किन्तु निग्रो संस्कृति दो दिन की संस्कृति नहीं है। उसके पीछे हज़ारों वर्ष का इतिहास फैला हुआ पड़ा है। ऐतिहासिक काल से भी पूर्व प्रस्तर युग में निग्रो ही अखिल संसार का स्वामी था। यूरोप, एशिया और अफ़रीका में उसी के प्रभुत्व का झएडा फहराता था। सभ्यता और संस्कृति उसी की गोद में पहले पहल खेली हैं। ऐतिहासिक युग में भी जब जब उसने सिर उठाया, अन्य क़ौमों ने उसके चरणों पर अपना सर झुकाया। मिस्र के पेरोओं की महान सभ्यता ने नूबिया के निग्रो सैनिकों के आगे आत्मसमर्पण किया, और हज़रत ईसा से ६०० वर्ष पूर्व, पूरे २०० वर्ष तक, निग्रो पेरोओं ने मिस्र पर शासन किया। सिन्धु की सभ्यता पर निग्रो के वंशज अपनी अमर छाप छोड़ गये हैं। निग्रो क़ौमों ने दक्षिण यूरोप की कायापलट ही कर दी थी। यदि यूनान के गोरे ख़ून में निग्रो रक्त का सम्मिश्रण न हुआ होता, तो कवियों, कलाकारों और दार्शनिकों के उस देश ने संसार के सांस्कृतिक इतिहास में इतना गौरवपूर्ण स्थान न प्राप्त किया होता। रोम पर भी काली जातियों ने सांस्कृतिक विजय प्राप्त की थी।

डाक्टर विनशेल कहते हैं—

"संसार का एक भी देश आज यह दावा नहीं कर सकता कि उसकी धमनियों में मिश्रित रक्त नहीं बहता।"

वह दिन दूर नहीं जब अमरीका भी अपनी इस वर्ण समस्या को सफलता के साथ सुलझायेगा। कम से कम ग़रीब मज़दूर साम्यवाद के असर से इस वर्ण भेद की समस्या के ऐतिहासिक रूप को समझने लगे हैं। निग्रो के ऊपर जिस मिक़दार में अत्याचार बढ़ते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाते हैं, उसी मिक़दार – में उसके अन्दर साम्यवाद की भावना भी बढ़ती जाती है। कम्युनिस्ट पार्टी ने अमरीका के अन्दर निग्रो के उद्धार का बीड़ा उठाया है। गोरे और काले मज़दूरों को उसने एक साथ क़दम रखना सिखाया है। आज अमरीका साम्यवाद में जो इतना ज़बरदस्त खतरा देख रहा है, वह केवल अपने यहां की निग्रो आबादी के कारण ही। ज़रा सी सुविधा पाते ही लगभग डेढ़ करोड़ शोषित निग्रो साम्यवाद के झण्डा बरदार बन सकते हैं। सन् १९३२ के अमरीकन चुनाव में वाइस प्रेज़िडेण्टी के उम्मीद-वार जेम्स डब्ल्० फ़ोर्ड ने अपने एक वक्तव्य में कहा था—

"जितना ही निग्रो को लिंच पर चढ़ाया जायगा, उसे गोली से उड़ाया जायगा और उसे ज़िन्दा जलाया जायगा, उतना ही साम्यवाद के लिये क्षेत्र भी तय्यार होता जायगा। हम अफ़रीका और वेस्टइण्डीज़ के अपने निग्रो बन्धुओं से प्रार्थना करते हैं कि वे भी अपने को ब्रिटिश, फ्रेंच और इटली के साम्राज्यवादी चंगुल से छुटकारा दिलाने के लिये साम्यवाद को स्वीकार करें और एक होकर चीन और भारत की आज़ादी के लिये लड़नेवाले वीरों को सहायता दें...।"

निग्रो के अन्दर संगठन की भावना पैदा हो गई है। वह अंगड़ाई लेकर खड़ा हो गया है, दुर्धर्ष यौवन की भावना उसकी सम्पत्ति है। मन में उसके रुकावटें हैं, मगर वह दिन दूर नहीं जब वह इन रुकावटों को रौंदता हुआ अपने को बन्धन-मुक्त करेगा और—

निग्रो की बन्धन-मुक्ति ही मानव संस्कृति की प्रगति का पैमाना है।

गोरे और निग्रो मजदूरों की एकता का एक प्रदर्शन-चित्र

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुनिया में अरबों का राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थान

श्री अलबर्ट वाइटन

संसार के इतिहास की अत्यन्त नाजुक अवस्था में हम प्रवेश कर रहे हैं। जनतंत्रवादी राष्ट्र अपनी भूलों के लिये बहुत ज़बरदस्त क़ीमत चुका रहे हैं। रूढ़ियों से पूरी तरह चिपटे रहने के कारण उनके प्राण संकट में पड़ गये हैं। उत्तर और दक्षिण-पूर्व यूरोप के राष्ट्र बालू की भीत की तरह ज़मीन पर बिखर गये हैं। फिर भी अपने को जनतंत्रवादी कहने वाले राष्ट्र नहीं चेत रहे हैं। युद्ध का मौजूदा रुख़ जिस ओर इशारा कर रहा है, उससे यह साफ़ दिखाई देता है कि फ़ासिस्ट राष्ट्रों का अगला क़दम अरब देशों की ओर होगा।

गत बीस वर्षों से भूमध्य सागर में विविध शक्तियों के बीच संतुलन बनाये रखने के लिये अंग्रेज़ों ने अरबों को बराबर उल्लू बनाया है। तुर्कों और इटालियनों के मुक़ाबले के लिये अरबों को उकसाकर तैयार रक्खा गया है। अंग्रेज़ों ने ही 'पैन-अरब' आन्दोलन का छुपे-छुपे संगठन किया। किन्तु लारेन्स जैसे अनेक कूटनीतिज्ञों ने अथक परिश्रम के बाद यह देख लिया कि दुनिया के और दूसरे देशों की तरह अरब देशों में एक क्षत्र अंग्रेज़ी असर क़ायम नहीं रक्खा जा सकता। प्रश्न उठता है कि दुनिया की इस उथल-पुथल में आख़िर अरबों का क्या हश्र होगा?

पिछली सदी के अन्त में जब अब्दुल हमीद ने यूरोपीय संकट के विरुद्ध "पैन इसलाम" का नारा बुलन्द करके अरबों का संगठन करने का प्रयत्न किया, तभी से अरब देशों ने दुनिया के राजनीतिज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। यूरोपीय दिमाग़ों की पुरानी स्मृति जाग उठी। उन्हें वे दिन याद आ गये जब सन् ६३२ ई० में मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद अरब योद्धाओं ने आधे यूरोप को रौंद डाला था, स्पेन से लेकर हिन्दुस्तान तक अपना एक क्षत्र साम्राज्य क़ायम किया था और जब अफ़रीका में इसलामी निशान फहराता था। इसके साथ-साथ उन्हें वे दिन भी याद आए जब कि यूरोप के समस्त ईसाई राष्ट्रों ने मिलकर पूरे दो सौ वर्षों तक 'रिलीजस क्रूसेड्स" के नाम पर अपनी खोई हुई सत्ता को फिर से प्राप्त करने का असफल प्रयत्न किया था। मिस्र और फ़िलिस्तीन में उन्हें नैपोलियन के असफल प्रयत्न भी याद आने लगे।

पिछले महायुद्ध में टी० ई० लारेंस ने तुर्कों और जर्मनी के ख़िलाफ़ अरबों को सफलतापूर्वक उकसाया था। उस समय से यूरोपीय दुनिया में अरबों की प्रतिष्ठा फिर से क़ायम हुई। सन् १९२५-२७ में सीरिया के अरबों ने फ़्रान्सीसी सत्ता के ख़िलाफ़ भीषण विद्रोह किया। इराक़ में भी लड़ाई के बाद ही अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ अरबों ने आन्दोलन शुरू किया। फिर सन् १९३६-३९ में फ़िलिस्तीन में इनक़लाबी आन्दोलन हुआ, जिससे अरबों के प्रति स्वाधीनचेता मनुष्यों की श्रद्धा बेहद जाग उठी। सन् १९३८ ई० में मुझसे एक अंग्रेज़ औपनिवेशिक अधिकारी ने कहा था—"इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुनिया के इन हिस्सों में अरबों से कोई पार नहीं पा सकता। यूरोपीय शक्तियाँ अरबों को पूरी तरह क़ाबू में करने में नाकामयाब रहीं।"

दुनिया के राजनैतिक शतरंज में भूमध्य सागर के कारण अरब देश बहुत महत्त्वपूर्ण मोहरे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इतिहास ने हज़रत इसमाइल की औलाद को दुनिया के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भौगोलिक स्थानों पर बसाया है। भूमध्य सागर के पूरे दक्षिणी किनारे पर टैञ्जियर से एण्टीआक तक अरब लोग बसे हुये हैं। यूरोप से निकट पूर्व आने का रास्ता अरबों की आबादी के बीच से आता है। बेरूत और दमिश्क से ईरान की खाड़ी तक का स्थल मार्ग पूरी तरह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अरबों के अधिकार में रहा है। लाल सागर और उस का प्रवेश-द्वार बाबुलमन्देब उसी तरह अरब हैं तरह मक्का। स्वेज़ नहर के दोनों किनारों पर अरबों की आबादी है। कोई भी शक्तिशाली और परिश्रमी क़ौम इन आश्चर्यजनक स्थानों के बल पर क्या से क्या नहीं कर सकती?

दूसरी बात यह है कि निकट पूर्व को प्रकृति ने बेहद उपजाऊ बनाया है। वहाँ की ज़मीन काफ़ी ज़रख़ेज़ है और नाज वहाँ बहुतायत से पैदा होता है। नील नदी की उपत्यका में संसार में सबसे अच्छी रुई पैदा होती है। मृत्यु सागर तो विविध वैज्ञानिक रसायनों का ख़ज़ाना ही है। इन सब के अलावा तेल और पेट्रोल की तो कोई बात ही नहीं है। पूरा का पूरा निकट पूर्व तेल के समुद्र में तैरता सा है और तेल की ही यूरोप को आज सोने से ज़्यादा ज़रूरत है। हालाकि यहाँ लोहा, ताँबा और दूसरी धातुएं थोड़ी मिक़दार में हैं, लेकिन चूंकि इन चीज़ों के लिये अभी तक पूरी छानबीन नहीं हुई है, इसलिये अन्तिम नतीजे पर पहुँच सकना मुश्किल है।

किन्तु संख्या की दृष्टि से अरबों की शक्ति नहीं के बराबर मालूम पड़ती है। फिर भी वह इतनी थोड़ी नहीं है कि उसकी उपेक्षा की जाय। सब मिलाकर अरबों की लगभग चार करोड़ आबादी है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि स्पेन की कुल दो करोड़ तीस लाख आबादी है। पुर्त्तगाल की, जो एक बड़े साम्राज्य का अधिकारी है, कुल सत्तर लाख आबादी है। अरबों की कुल आबादी में से एक करोड़ सत्तर लाख आबादी मिस्र में रहती है। अरब प्रायद्वीप की ७० लाख आबादी, सीरिया और इराक़ की तीस तीस लाख आबादी और फ़िलिस्तीन की दस लाख आबादी है। ट्रान्स जोरडान की पांच लाख आबादी है। इसके अतिरिक्त कुवैत, बहरैन, अदन और ईरान की खाड़ी के दूसरे अरब टापुओं की क़रीब पांच लाख आबादी है।

शानदार भूतकाल की यादगारें दस लाख वर्ग मील से भी अधिक क्षेत्रफल में बसे हुये इन अरबों को एकता के बन्धन में बाँधती हैं; और उनके दिलों में अपनी खोई हुई सत्ता को फिर से प्राप्त करने की लालसा पैदा करती हैं; थोड़े से बिखरे हुये क़बीले जिनका कुछ महत्त्व नहीं है, जैसे ख़ुर्द और असीरियनों को छोड़कर इस भूभाग पर रहने वाले बाक़ी सब लोगों की भाषा अरबी है। एक भाषा के कारण इन लोगों में आश्चर्यजनक एकता है। भाषा के साथ-साथ इनकी एक संस्कृति है और जीवन का एक विशेष दृष्टि कोण है। एक से सामाजिक आचार-विचार और एक सी इनकी ख़ासियतें हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनमें एकता क़ायम रखने में इसलाम एक बड़ा ज़बरदस्त साधन है। ३० लाख ईसाई और यहूदी यहाँ की राजनीति पर कोई ख़ास असर नहीं डालते। इसलाम ही यहां का प्रमुख धर्म है। इस्लामी क़ानून और शरीयत के मुताबिक़ ही लोगों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी चलती है। क़ुरान ने लोगों की भाषा और उनके विचारों पर ज़बरदस्त असर डाला है।

इन सब बातों से लोगों पर ज़ाहिरा तौर पर यह असर पड़ता है कि मौजूदा युद्ध में अरबों की कोई ख़ास अहमीयत है। किन्तु सचाई यह है कि अरब यदि इस संसार व्यापी नाटक में महज़ तमाशबीन ही नहीं हैं, तो भी उनका कोई अधिक महत्त्व भी नहीं है। तराज़ू के तोल यदि बराबर हों तो मुमकिन है अरब इधर या उधर थोड़ा बहुत असर डाल सकें। किन्तु यह अँगरेज़ों की भूल है यदि वे यह समझते हैं कि इस युद्ध में अरब उन्हें कोई ख़ास मदद दे सकेंगे। ज़ाहिरा तौर पर धर्म, संस्कृति और भाषा ने अरब समाज में एकता क़ायम कर रखी है। किन्तु वास्तव में यह एकता अस्थायी एकता है। अरब समाज में जितने टुकड़े हैं, उतने शायद दुनिया की दूसरी क़ौम में नहीं हैं। न तो इसलाम की भावना और न अरबीयत की भावना ही अरबों को उन क़बीलों के जाल से निकाल कर उनमें एक सामाजिक संगठन बना सकी। फ़िलिस्तीन में अरबों पर कितना ज़ुल्म हुआ मगर महीनों के प्रचार के बाद केवल बग़दाद और दमिश्क में और बाद में कुछ थोड़े से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिस्री शहरों में उनके प्रति सहानुभूति दिखाई गई। एक लमहे के लिये भी अरब नेता मिलकर एक संयुक्त राजनैतिक कार्यक्रम नहीं बना पाये। कभी उन्होंने गम्भीरता से इस पर ध्यान ही नहीं दिया कि पूरे निकट पूर्व को एक करके वे उसे एक महान राष्ट्र बना सकते हैं। कुछ अरबों ने फ़िलिस्तीन के अपने भाइयों के साथ सहानुभूति दिखाई, अखबारों में गरमा गरम लेख लिखे, जुलूस निकाले और बस सब खत्म। असली मदद उन्हें कुछ भी नहीं दी गई। इस काम के लिये अरब मुल्कों में जो चन्दा इकट्ठा हुआ, वह भी नहीं के बराबर। मिस्र, सीरिया, इराक़ ने जो सैनिक और डाक्टरी मिशन फ़िलिस्तीन में भेजने के वादे किये वे कभी पूरे नहीं किये गये।

फिर भी फ़िलिस्तीन के आन्दोलन ने अरबों को एक करने के लिये जो कुछ किया उतना किसी भी बड़े आन्दोलन ने नहीं किया। सन् १९३५-३६ में मिस्र और सीरिया में भी राजनैतिक आन्दोलन खड़े हुये थे, मगर अरबों पर उसका कोई व्यापक असर नहीं पड़ा था। उस आन्दोलन में दमिश्क में पूरे दो महीने तक हड़ताल रही। हज़ारों अरब जेल में ठूस दिये गये, सैकड़ों अरब गोली से उड़ा दिये गये। नेताओं ने अखबारों के ज़रिये समस्त अरबों को हज़रत मुहम्मद के झंडे के नीचे आकर एक होने की अपील की। मसजिद में मुल्लाओं ने फ्रांसीसियों के ख़िलाफ़ बग़ावत का फ़तवा दिया। नवयुवकों ने सीरिया को फ्रान्स के चंगुल से आज़ाद करने की क़सम खाई। मगर फिर भी सीरिया के बाहर अरब दुनिया पर इस क्रान्तिकारी उथल-पुथल का कोई खास असर नहीं पड़ा। अलबत्ता फ़िलिस्तीन में एक दिन हड़ताल हो गई थी। न सीरिया को कोई मदद दी गई और न फ्रान्सीसी माल का अरबों ने बहिष्कार ही किया।

फिर भी यह नहीं समझना चाहिये कि अरब एकता का आदर्श ही समाप्त हो गया। इसके विपरीत वह और तीव्र होता जा रहा है। जितने पढ़े लिखे अरबों से मैंने बात की है, वे सब इस आदर्श के क़ायल हैं और यही कहते हैं कि जब तक अंग्रेज़ इस एकता के बीच हायल हैं तब तक यह एकता सम्भव नहीं हो सकती। हर नवयुवक अरब एकता का नारा लगाता है और अरब साम्राज्य की महत्ता का बखान करता है। सर्व साधारण में प्रान्तीयता जैसी कोई बात नहीं। सीरिया का फ़ेला (किसान) फ़िलिस्तीन के अरबों को विदेशी नहीं समझता, और न दमिश्क के अरब ही बग़दाद में विदेशी समझे जाते हैं। किन्तु फिर भी इस एकता के बीच में अनेक बाधाएं हैं।

निकट पूर्व की राजनीति में विविध राज घरानों की प्रतिस्पर्धा बेहद महत्व रखती है। इब्न सऊद और अमीर अब्दुल्ला दोनों सुलतान अरब एकता के क़ायल हैं, किन्तु दोनों चाहते हैं कि एकता उन्हीं के घराने के झण्डे के नीचे हो। इसी को लेकर उन्हें एक दूसरे से सख्त नफ़रत है। अब्दुल्ला वहाबी बादशाह को बचा शक्का समझता है और इब्न सऊद हाशमी घराने को नफ़रत की नज़र से देखता है। यमन का राज घराना सऊदियों से नफ़रत करता है, और सऊदियों को मिस्र के मोहम्मद अली के घराने से नफ़रत है। यहाँ तक कि अम्मान और बग़दाद के दोनों हाशमी घरानों में भी आपस में प्रतिस्पर्धा है और ये सबके सब मिस्र के बादशाह फारुख़ी से ख़तरा महसूस करते हैं। इनमें आपस में संधियाँ भी हुईं, किन्तु उन संधियों की क़ीमत एक काग़ज़ के टुकड़े से अधिक नहीं। हालत यह है कि कुछ अरबों की सहानुभूति अंग्रेज़ों के साथ है, कुछ निष्पक्ष हैं और कुछ की सहानुभूति धुरी राष्ट्रों की तरफ़ है।

यही नहीं हर अरब मुल्क में आपस में भी झगड़े हैं। फ़िलिस्तीन में मैंने वहाँ के आपसी मतभेदों को समझने के लिये हफ़्तों ख़र्च किये; कि आख़िर वहाँ 'नेशनल डिफ़ेन्स पार्टी,' 'रिफ़ार्म पार्टी,' 'पैलेसटाइन अरब पार्टी' और 'इस्तक़लाल पार्टी' में क्या सैद्धान्तिक मतभेद हैं? किन्तु मैंने यही समझा कि उनमें ज़र्रा भर भी राजनैतिक और आर्थिक मतभेद नहीं हैं। उनके झगड़े सिर्फ़ व्यक्तिगत हैं। इन्हीं आपसी मतभेदों के कारण अब तक एक अखिल अरब संगठन न हो सका। इसके लिये इसलाम का नारा भी निकम्मा साबित हुआ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाहर वाले भले ही समझते हों कि इसलाम धर्मावलम्बी होने के कारण अरबों में आपसी एकता होगी। किन्तु यह एक महान भ्रम है। यह सही है कि शिया और सुन्नी अब आपसी क़त्लेआम नहीं करते, किन्तु एक सच्चा वहाबी अब भी उस मुसलमान को दुनिया से विदा करने के लिये तैयार है, जो पूरी तरह हज़रत अब्दुल वहाब की शिक्षा को नहीं मानता। इसके अतिरिक्त अरब राजनीतिज्ञों में जो सबमें बड़ी कमी है वह यह कि विदेशी शासक आसानी से चाँदी की गोलियों से उनका शिकार कर सकते हैं।

कहा जाता है कि गो अरब में सैनिक संगठन नहीं है, फिर भी गुरिल्ला लड़ाई में अरब बड़े निपुण हैं। किन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि गुरिल्ला लड़ाई का चाहे जितना महत्त्व हो, फिर भी वर्तमान युद्धों को केवल गुरिल्ला लड़ाई से नहीं जीता जा सकता। यदि अरबों ने अंग्रेज़ों के साथ साल भर से ज़्यादा लड़ाई लड़ी, तो उसका कारण सिर्फ़ यह था कि अंग्रेज़ों ने उनके ख़िलाफ़ युद्ध के आधुनिक हथियार इस्तेमाल नहीं किये थे। सीरिया दो वर्षों से क्रान्तिकारी आन्दोलन चला रहा था, किन्तु जब सन् १९२६ ई० में सीरियन देशभक्तों के ख़िलाफ़ फ़्रान्सीसियों ने बिला लिहाज़ बम बरसाये, तो सीरिया का स्वतन्त्रता का आन्दोलन चूर होकर रह गया।

वह समय बीत गया जब सारी दुनिया अरबों की तलवार की धाक मानती थी। उस ज़माने की लड़ाई बहादुरों की लड़ाई थी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि अरबी घोड़ों पर चढ़कर अरबी घुड़सवार अपने यूरोपीय दुश्मनों के कान काटते थे। परन्तु न तो वे दिन ही रहे और न आज व्यक्तिगत बहादुरी का कोई मूल्य ही रहा। अरब योद्धाओं के साहस में किसी को सन्देह नहीं है। बद्दुओं ने अपनी मामूली बन्दूकें लेकर विदेशी तोपख़ानों पर हमले किये हैं। जैसे जैसे युद्ध की भयंकरता बढ़ती है, वैसे-वैसे अरबों की हिम्मत भी बढ़ती है। किन्तु इससे कोई ख़ास फ़ायदा तो है नहीं। वहाबियों को ही ले लीजिये; उन्होंने अन्य प्रतिद्वन्द्वी अरबों को हरा दिया। इससे उनकी हिम्मत बढ़ी और उन्होंने इराक़ पर भी धावा बोल दिया। पर जब अंग्रेज़ों ने उन पर बम बरसाये तब वे ख़ामोश हो गये।

सच तो यह है कि जब तक कोई मुल्क औद्योगिक दृष्टि से बेहद उन्नत नहीं है, तब तक दुनिया की मौजूदा राजनीति पर वह कोई ख़ास असर नहीं डाल सकता। मिस्र में थोड़े बहुत उद्योगधन्धे हैं। मिस्री मज़दूर सूती कपड़े, बटन, सिगरेट, खिलौने, कम्बल आदि बनाते हैं। किन्तु फ़ौजी मामलों में इन टुटपुंजहे धन्धों का कोई मूल्य नहीं। इस दृष्टि से समूचा निकट पूर्व दुनिया का सब से कमज़ोर क्षेत्र है। लोहा, तांबा, सीसा, जस्ता या दूसरी भारी धातुएं रेगिस्तानी मुल्कों में नहीं होतीं। मुमकिन है लेबनान और ख़ुर्दिस्तान के पहाड़ों के नीचे या मरुस्थल की रेत के नीचे ये धातुयें दबी पड़ी हों, किन्तु इनका अब तक पता नहीं लगाया गया। सैनिक दृष्टिकोण से एक ही बात में अरब देशों का महत्त्व है और वह है पेट्रोल। दक्षिण ईरान तेल का ख़ज़ाना है, जो अंग्रेज़ी कम्पनी के मातहत है। इसी तेल से अंग्रेज़ी नेवी हिन्द महासागर और सुदूरपूर्व में अपना असर रखती है। इराक़ में भी हर साल ६० लाख पीपे तेल निकलता है और यह सब भी अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में है।

यह सही है कि भारी धातुओं के अभाव के कारण यह तो नहीं है कि फ़ौज का भारी सामान न बन सके। इटली और जापान को ही लीजिये। दोनों देशों में लोहा नहीं होता, कोयला और पेट्रोल नहीं होता, फिर भी वहाँ भारी-भारी कारख़ाने हैं। किन्तु इटली और जापान के मुक़ाबले में अरब देशों के सामने एक बड़ी कठिनाई है। इटली और जापान में वहाँ की सरकारें भारी कारख़ाने चला रही हैं। इटली और जापान आज़ाद मुल्क हैं; और अरब देश पूरी तरह से विदेशियों के असर में हैं; और ये विदेशी हुकूमत अरब देशों की इस क़िस्म की तरक़्क़ी कभी पसन्द नहीं करेंगी।

यूरोपीय यात्री फ़िलिस्तीन में यहूदी औद्योगिक उन्नति के गीत गाते हैं; किन्तु फ़िलिस्तान के यहूदी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कारखानों में केवल १ लाख मज़दूर काम करते हैं और कुल ४० करोड़ डालर का माल तैयार होता है। यह कोई ऐसी रकम तो नहीं जिसकी प्रशंसा के गीत गाये जाँय। फिर इन एक लाख मज़दूरों में अधिकाँश मकान बनाने में लगे हुये हैं। उनसे उतर कर लोग खेती में लगे हुये हैं, तीसरे दर्जे के कपड़े के कारखानों में हैं। बिजली और रसायन के कारखानों में मज़दूरों की संख्या नहीं के बराबर है।

जो विदेशी पत्रकार धुरी राष्ट्रों या अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ अरबों के जेहाद की कल्पना करते हैं, वे इस बात को ध्यान में नही रखते कि यदि अंग्रेज़ हार भी गये, तब भी धुरी राष्ट्र आसानी से अरबों की स्वतन्त्रता को क़ब्ज़े में कर लेंगे। थोड़े से ज़हरीले गैस के बम अरबों को दबाने के लिये काफ़ी हैं। फिर अरब देश के पास न तो लड़ाई के टेकनिकल साधन हैं और न पैसा ही है। अरब देशों में इराक़ की ताक़त सब में बड़ी है। किन्तु उसके पास भी कुल ५० हवाई जहाज़ हैं। थोड़े से चुप-पुट के बाद अंग्रेज़ों ने उसे आख़िर क़ाबू में कर ही लिया। मिस्री फ़ौज के पास बेशक थोड़े बहुत माडर्न हथियार हैं, किन्तु लोगों की यह राय है कि मिस्री सैनिक इतने अच्छे नहीं होते, जितने कि इराक़ी। सन् १९४० में मिस्र के पास ३ हल्की तोपें व ३ हवाई जहाज़ थे और कुल फ़ौज में २५ हज़ार अफ़सर व सिपाही थे। ट्रांस ज़ोरडान और सऊदी अरब फ़ौजों के पास तो माडर्न हथियार हैं ही नहीं।

जब तक लड़ाई चल रही है, तब तक अरबों का महत्व नहीं है। उनका महत्व हो सकता था यदि अरब जनता में जागृति होती। तब वे फ़ौजों को खाना देने से इनकार करते, क़ि वे लूट लेते. सड़कें तोड़ देते और तार काट देते। किन्तु अरब जनता इतनी दबी हुई है कि यह सब करने की उसकी हिम्मत नहीं है। जब चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड और फ्रान्स जैसे देशों को सैनिक ताक़त से दबाया जा सकता है, तब फिर अरबों की क्या वक़त ? अरब इसे जानते भी हैं। ज्योंही मौजूदा लड़ाई शुरू हुई फ़िलिस्तीन की बग़ावत वैसे ही ख़त्म हो गई।

लड़ाई के बाद भी अरबों का कोई महत्व न होगा। अभी दसियों वर्ष तक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में उनका स्थान नहीं के बराबर रहेगा। अरब क़ौम ने दुनियां के इतिहास के इस बदले हुए रुख़ में ज़माने के साथ अपना क़दम नहीं उठाया। उन्हें हर चीज़ में नया तरीक़ा सीखना है। दुनिया को देने के लिये इस समय उनके पास कुछ भी नहीं है। वर्तमान अरबी साहित्य बिल्कुल निकम्मा है। अरबी संगीत पुराने ढर्रे पर चल रहा है। अरबी नाटक भी पुराने हो चुके। क़ब्ल इसके कि ये अरब देश दुनिया के रंगमंच पर गौरवपूर्ण स्थान लें, उन्हें अपने अन्दर ज़बरदस्त नैतिक और अध्यात्मिक सुधार करने पड़ेंगे।

कंकड़-पत्थर

श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन'

मैं पथ का कंकड़ पत्थर हूँ
जाने किस शिल्पी की टाँकी से
टकराकर मैं चूर हुआ।
अपने विशाल गिरि-गृह-कुटुम्ब
से छिन्न भिन्न हो दूर हुआ।
आ पहुँचा मानव बस्ती में
चिर परिचय हीन प्रवासी-सा।

पग पग पर ठोकर पर ठोकर
खाने को मैं मजबूर हुआ।
तुम पूछ रहे मेरा परिचय,
तुम पूछ रहे मेरा निश्चय,
मैं क्या जानूं इस जगती में
अभिशाप रूप हूँ या वर हूँ!
मैं पथ का कंकड़-पत्थर हूँ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(२)

आँखों के रहते भी अंधे
आकर मुझसे टकरा जाते !
गर्वित निज बल की क्षमता में
दो लातें और जमा जाते।
मैं लुढ़क-पुढ़क टकटकी बाँध
परखा करता उनकी क़ीमत।
मुझ ऐसे दीन-हीन जग को
फूटी आँखों भी कब भाते ?
वे नहीं जानते, मेरे भी दिन थे,
मैं था चैतन्य कभी,
चेतनता के उपहासरूप अब
भावी जड़ता का स्वर हूँ !
मैं पथ का कंकड़-पत्थर हूँ।

(३)

चेतन जग का कोई प्राणी
मुझसा बेबस, लाचार नहीं।
अपना दुःख सुख तक कहने को
मेरा कोई संसार नहीं।
आहें भर सकता, तो अपनी
निश्वासों से जग भर देता।
पर मुझे सांस तक लेने का
मिलपाया है अधिकार नहीं।
मैं पद-लुंठित, पदमर्दित बन,
आया हूँ जीवन के पथ पर,
परवश अपनी सीमाओं से
मैं मूक-व्यथाओं का घर हूँ !
मैं पथ का कंकड़-पत्थर हूँ।

(४)

चिर-स्पंदन-हीन हुआ जब से
बेसुध सा कोमल मन मेरा।
पड़ जीवन के संघर्षों में
घिसता जाता है तन मेरा।
भूले भटके भी हाय, तरस
खाने वाला कोई न मिला।
चिर-व्यथित, उपेक्षित विरही-सा
सूने में लय जीवन मेरा।
मैं कहूँ कहाँ तक सुनने को
कोई, गाथा तय्यार नहीं,
मैं नव जागृति के इस युग में
चिर-सुप्त समस्या-सागर हूँ !
मैं पथ का कंकड़-पत्थर हूँ।

(५)

पर मैंने कल पथ पर देखी
पददलित मानवों की टोली।
थी जिनकी आह कराहों में
मेरी परवशता की बोली।
उनकी भी हाहाकारों पर
देता था कोई ध्यान नहीं।
अपने सूखे जर्जर तन में
लगते थे मेरे हमजोली।
जीवन में पहले-पहल मुझे,
अपने पर कुछ कुछ गर्व हुआ,
मैं जड़ होकर भी इन चेतन
नर-कंकालों से बढ़कर हूँ !
मैं पथ का कंकड़-पत्थर हूँ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मानव संस्कृति और सोवियत् रूस

प्रोफ़ैसर बुद्धदेव वसु

रूस पहुँचने के पहले कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने क्या देखने की कल्पना की थी और वहां क्या देखा, इसका वर्णन उन्होंने नीचे लिखे शब्दों में किया है—

"जब रूस के लिये रवाना हुआ, तब बहुत ज़्यादा पाने की आशा नहीं की थी। कितना साध्य है और कितना असाध्य, इसका आदर्श मुझे ब्रिटिश-भारत से मिला है। भारत की उन्नति की दुरूहता कितनी अधिक है, इस बात को स्वयं ईसाई पादरी टामसन ने बहुत ही करुण स्वर में सारे संसार के सामने रखा है। मुझे भी मानना पड़ता है कि कठिनाई है अवश्य, नहीं तो हमारी ऐसी दशा क्यों होती? यह बात मुझे मालूम थी कि रूस में प्रजा की उन्नति भारत से ज़्यादा ही मुश्किल थी, कम नहीं।......इसीलिये, मेरे लिये ऐसी आशा करना कि रूस जाकर बहुत कुछ देखने को मिलेगा, अनुचित होता। हमने अभी देखा ही क्या है और जानते ही कितना हैं जिससे हमारी आशा का ज़ोर ज़्यादा हो सकता। अपने दुःखी देश में पली हुई कमज़ोर आशा लेकर मैं रूस गया था। वहां जाकर जो कुछ देखा, उससे आश्चर्य में डूब गया।...सुना जाता है कि यूरोप के किसी किसी तीर्थ-स्थान से देव की कृपा से चिरपंगु भी अपनी लाठी छोड़कर पैदल वापस आये हैं; देखते देखते ये पंगु की लाठी को छोड़कर दौड़ने-वाला रथ बनाते चले जा रहे हैं—जो पैदल सेना से भी गये-बीते थे, दस ही वर्ष में वे रथी बन गये हैं। मानव समाज में वे सिर ऊंचा किये खड़े हैं, उनकी बुद्धि अपने वश में है, उनके हाथ-हथियार सब अपने वश में हैं। हमारे बादशाह के वंश के ईसाई पादरियों ने भारतवर्ष में बहुत वर्ष बिता दिये हैं; मुशकिलें कैसी अचल हैं बस यही बात वे समझे बैठे हैं। अच्छा हो यदि एक बार वे मास्को आवें।"[1]

२

सोवियत् रूस ने दुनियां को अचरज में डाल दिया है। ज़ार के शासनकाल में रूस की कैसी दुःसह दुर्गति हुई थी, शायद हिन्दुस्तान और चीन के अलावा दुनिया में कहीं इसका दृष्टान्त नहीं मिलेगा। यह तो उस दिन की बात है और इतने ही दिनों में, केवल बीस वर्ष की साधना से, वही देश आज किसी किसी बात में अगुआ पश्चिम के देशों का ईर्षा भाजन हो गया है। शिक्षा के विस्तार और संस्कृति को व्यापक बनाने में वह अतुलनीय है। आज सारी दुनिया की नज़रें यूरोप से एशिया तक फैली हुई इस विशाल सोवियत् भूमि की ओर लगी हुई हैं, केवल शोषित मज़दूर-किसानों की ही नहीं, कवि की, कलाकार की, मनीषी की भी। इसका कारण क्या है? वह यह है कि पश्चिम के देशों में आज संस्कृति का अनादर पग-पग पर हो रहा है, ज्ञानी, विज्ञानी, कलाकार, जिनके जीवन और कार्य में मनुष्यत्व की श्रेष्ठ अभिव्यञ्जना होती है वे या तो सरे आम सताये जाते हैं, नहीं तो परोक्ष रूप से निरुत्साहित किये जाते हैं, या तो वे नज़रबन्द कैम्पों में भेज दिये जाते हैं, नहीं तो अपमान अनाहार से परलोक में अमरत्व की आशा में मिटते जा रहे हैं। संस्कृति तथा मनुष्यत्व की मर्यादा में विश्वास रखने वालों के लिये सोवियत् भूमि आशा और उत्साह का अक्षय भंडार है।

जब पश्चिम के देशों की दशा ऐसी है, तो हमारे देश की बात ही क्या? असीम अशिक्षा के अंधकार में हिन्दुस्तान डूबा हुआ है।[2] भीषण निर-

१—रूस की चिट्ठी, पृ० ७०-७४

२—१६११ की मर्दुमशुमारी से पता चलता है कि इस देश में सैकड़े ७ आदमी साक्षर थे, १६२१ में ८ और १६३१ में ६। अर्थात् हर दस मनुष्यों में १ फ़ी सदी आदमी साक्षर हो रहे हैं। अगर इस चाल से साक्षरता का विस्तार होता रहा तो हमें सम्पूर्ण रूप से साक्षर होने में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्षरता विषधर नागिनी की तरह हमारा कंठावरोध किये हुये है जहां अशिक्षा नहीं है वहां कुशिक्षा है। एक हिसाब से वह और भी दुःखदायी है। मुट्ठी भर मध्यम वर्ग के लोग मैकाले द्वारा प्रवर्तित नक़ली विद्या से निर्जीव से हो गये हैं। हम में से जिन्हें यह शिक्षा मिली है, और जो प्रतिदिन इसे वितरण भी कर रहे हैं, इस बात को निःसंकोच होकर कह सकते हैं कि यह हमारे लिये लज्जा, ग्लानि और कलंक की बात है। इतना बड़ा घातक मज़ाक़ शिक्षा के नाम पर और किसी भी देश में नहीं चल सकता था, परन्तु इस अभागे भारत में सब कुछ सम्भव है। विदेशी भाषा के माध्यम से बिल्कुल मामूली विदेशी विचार धारा का अत्यन्त क्षीण संक्रामण, यही तो हमारी शिक्षा है। इम्तहान में सफल होना इसका उद्देश्य, और नौकरी पा जाना इसका मोक्ष है। इसका नतीजा होता है आजन्म दूसरों पर निर्भरशीलता, बुद्धिवृत्ति का अविरत दासत्व। हमारे जीवन से लेशमात्र भी सम्बन्ध न रखने के कारण यह शिक्षा जितनी सारहीन है, उतनी ही अवास्तविक भी है; कला, ज्ञान, विज्ञान के सम्बन्ध में मनुष्य की स्वाभाविक रुचि तथा उत्साह को समूल नष्ट करने की इसमें असाधारण निपुणता है। इसका फल यह होता है कि हमारे देश में कवि गुरु रवीन्द्रनाथ के पाठकों की संख्या कुछेक दर्जन है। कलापूर्ण चित्रों का ख़रीदनेवाला ही कोई नहीं मिलता। ज्ञानी लोग या तो जीवन संघर्ष में पार ही नहीं पाते या अन्त में कोई बड़ी सी नौकरी पाकर स्वाधीन विचार को स्वाहा कर देते हैं। जिस किसी भी क्षेत्र में जो गुणवान है, जनता के पास पहुँचने के लिये उसे कोई रास्ता नहीं है, क्योंकि निरक्षरता की दुर्भेद्य दीवार ने उन्हें घेर रखा है। दूसरी ओर मूर्ख मध्यमवर्ग की उदासीनता के कारण वह अपनी जीविकार्जन नहीं कर सकता। कुशिक्षितों की खुल्लम-खुल्ला या छिपी हुई दुश्मनी के कारण वह पग-पग पर सताया जाता है।

६०० वर्ष और लगेंगे अर्थात् २८४१ ई० में 'हिन्दुस्तान में एक भी आदमी निरक्षर नहीं रहेगा!!

यही है हमारी हालत!

(३)

राजनीति का मर्म नहीं समझता; लेकिन यह जानता हूं कि मरने से ज़िन्दा रहना अच्छा है। मैं मार्क्सवादी पण्डित नहीं हूं, साम्यवादी कहकर गर्व करने का मुझे अधिकार नहीं है, मैं एक साधारण लेखक मात्र हूं। मेरा विश्वास है कि संस्कृति से जिन वस्तुओं का बोध होता है, वे सभी मानव की सर्वश्रेष्ठ सम्पदा हैं, वे ही सभ्यता का महान परिचय प्रदान करती हैं। राष्ट्रनीति और समाज व्यवस्था की सार्थकता वहीं तक है, जहाँ तक वे संस्कृति का निर्भय, उज्ज्वल और व्यापक रूप से प्रचार कर सकती हैं। धन, वाणिज्य फ़ौजी शक्ति आदि में देश कितना भी उन्नत क्यों न हो, अगर संस्कृति के विस्तृत क्षेत्र में नई फ़सलें नहीं दिखाई पड़तीं, तो मैं उपर्युक्त चीज़ों को व्यर्थ समझता हूं। हमारे जीवन के पार्थिव आधार को मज़बूत बनाना अत्यावश्यक है; हम अन्न वस्त्र दवादारू ख़रीदने की सामर्थ्य चाहते हैं, आशंकाहीन आलस्यहीन शान्तिमय जीवन चाहते हैं, काम करना चाहते हैं, विश्वमानव की यह मांग दुनिया के वायुमंडल में प्रतिध्वनित हो रही है। ये सभी साधन मात्र हैं, उद्देश्य नहीं; ये लक्ष्यस्थल पर पहुंचने के रास्ते हैं, लक्ष्यस्थल नहीं। सभी मनुष्यों को खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, दवा-दारू इसलिये चाहिये, जिससे वे संस्कृति के अमूल्य उत्तराधिकार के हिस्सेदार बन सकें। जिस ऐश्वर्य का प्रचलन केवल मुट्ठी भर धनी अथवा बुद्धिजीवी लोगों में ही सीमित हो, उसे अगर मनुष्यमात्र को पाने का अधिकार नहीं है तो राष्ट्रीय उन्नति और वाणिज्य आसुरिक शक्ति और व्यर्थ विस्तार मात्र हैं। कौन देश कितनी ताक़त वाला है, अर्थात् नरसंहार की शक्ति उसमें कितनी है, आज चारों ओर इसी की चर्चा हो रही है। इसके बीच में खड़े होकर हम लेखकों को कहना होगा—तुम्हारी 'शक्ति को' देखकर हम मुग्ध नहीं हो सकते, हम जिसे संस्कृति कहते हैं उसके लिये बताओ तुमने क्या किया है? इसके अलावा तुम्हारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जांच करने का दूसरा रास्ता हमें मालूम नहीं है। वह तो गुज़र बसर करने के लिये ही नहीं है, वह तो जीवन के सृजन की माँग है; हम उन्हें इसलिये चाहते हैं, जिसमें जीवन को साहित्य, कला, ज्ञान, विज्ञान के क्षेत्र में सार्थक कर सकें। पके धानों के खाने से पेट तो भर जाता है, परन्तु मन को भरने के लिये मनीषा के प्रकाश की आवश्यकता है। अगर कहा जाय कि देशवासियों को खाना-कपड़ा मिल रहा है, सभी कारख़ानों में लगे हुये हैं, अस्त्रागारों से लगातार झनझनाहट आ रही है, लेकिन इसी के साथ उनके हाथ से पोथियां छीन ली गई हैं, वीणा को नीरव कर दिया गया है, वैज्ञानिक को नये-नये अस्त्रशस्त्र के आविष्कार में लगा दिया गया है, कवि को राजमहिमा के रथ में जोत दिया गया है, तब मैं कहूँगा कि तुम्हारा दम्भ कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह खोखला है, शून्य है।

हम लेखक जो किसी न किसी प्रकार की कला ज्ञान आदि का अनुशीलन किया करते हैं, यह कहने के लिये बाध्य हैं।

(४)

दुनिया के इतिहास में ऐसा समय अभी तक हमें देखने को नहीं मिला है, जब संस्कृति का द्वार सबके लिये खुला था। प्राचीन युग में शिक्षा दो छोटे सम्प्रदायों—धर्म-व्यवसायी और युद्ध-व्यवसायी, अर्थात् पुरोहित और राजा, ब्राह्मण और क्षत्रिय, में ही दिखाई पड़ती थी, राजा तो केवल भोक्ता था, वह साहित्य, संगीत, चित्र, नृत्य, नाट्यकला का उपभोग करता था, और यथा उचित पुरस्कार वितरण करके अपना जय जयकार सुना करता था। विभिन्न देशों तथा विभिन्न समयों में किसी किसी भूपति या धर्माधिपति के संरक्षण में कला की आश्चर्यजनक उन्नति हुई है, इसका निदर्शन हमें इतिहास में मिलता है। पर उस शुभ दिन में भी देश की साधारण जनता उन उत्सवों से दूर थी। जो खेती करते हैं, कपड़ा बुनते हैं, लोहा पीटते हैं, जिनके हाथ में संसार के भण्डार की कुञ्जी है, उन्हें कला के आनन्द भोग में नहीं बुलाया गया था, वे दरिद्रता में डूबे हुए थे, अशिक्षा से वे अंधे थे, उनका अनुन्नत मनोरंजन होता था—गाँव के पूजा-त्योहारों, नाच-गानों से। वह स्थूल था, बर्बर था, लेकिन उस ज़माने में जनता की अपनी कला थी, रस के क्षेत्र में उन्हें अखण्ड उपवास नहीं करना पड़ता था। इस ग्राम्य-कला या जनता की कला की आश्चर्यजनक जीवनी शक्ति का परिचय इस बात से मिलता है कि आज के सबसे अग्रणी कलाकारों में उसका प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। लेकिन विज्ञान की कृपा से दुनिया में जब युगान्तर हुआ, तब अग्रगति की तीव्र धारा ने समग्र पुराने मूल्यों को धूल में मिला दिया, मनुष्य के आपसी पुराने सम्बन्ध को तोड़ डाला, जनता के जीवन में भी ग्रामीण कला की सरसता नहीं रह गई। सुनने में यह बात विचित्र सी लगती है कि साधारण लोगों को इस नवीन समाज-व्यवस्था ने एक ओर तो उन्नत किया, लेकिन दूसरी ओर बिल्कुल कंगाल बना दिया। पश्चिमी दुनिया में प्राथमिक शिक्षा जंगल में आग की तरह फैली। छापाख़ानों से किताबों के ढेर निकलने लगे, सिनेमा, रेडिओ का आगमन हुआ, पर क्या साधारण लोगों का सांस्कृतिक स्तर रंचमात्र भी उन्नत हुआ? ऊपर उठने की बात तो दूर रही, वह और भी नीचे गिर गया। उस युग में ग्रामीण-उत्सवों में अंधता, कुसंस्कार, स्थूलता सभी थीं, लेकिन उसमें जो आनन्द था वह विशुद्ध था; क्योंकि वह पैसे से ख़रीदा नहीं जाता था, उसका सृजन होता था अपनी ही आन्तरिक प्रेरणा से। वह समाज जो पैसे-कौड़ी के सम्बन्ध के अलावा और किसी दूसरे प्रकार का सम्पर्क नहीं मानना चाहता, उसमें उपर्युक्त प्रकार के आमोद-प्रमोद भी बन्द हो गये। उसकी जगह असंख्य किताबें, अगणित फ़िल्म घर-घर में रेडिओ का आगमन हुआ। यह तो अच्छी बात है, संस्कृति के आधुनिक वाहन तो ये ही हैं। लेकिन दुनिया भर के लोग अवाक् हो गए, जब उन्होंने देखा कि मुट्ठी भर लोगों के बीच में संस्कृति बन्दिनी बनी हुई है। अच्छी पुस्तकें वे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही पढ़ रहे हैं, अच्छे गाने वे ही सुनते हैं जिनके पास साधन हैं। लिखना-पढ़ना जानने वाले आम लोग भकोस रहे हैं वाहियात किताबें; देख रहे हैं रद्दी फ़िल्म; सुन रहे हैं सड़े हुये गाने। उसी के साथ हम यह भी देखते हैं कि साधारण जनता ही जब संख्या में अधिक है, तब उसकी विशाल भूख मिटाने के लिए साहित्य, संगीत, चित्रकला में रुचि नाम की कोई वस्तु नहीं रह गई। घासलेटी लेखकों का बाज़ार पर क़ब्ज़ा है। अच्छे लेखकों को रोटी भी नहीं मिलती। शिक्षा का विस्तार हुआ, आर्थिक उन्नति भी ख़ूब देख पड़ती है, पर जो कवि और कलाकार यथार्थ में प्रतिभावान हैं, उन्हें जीवन में कैसा दुःसह संघर्ष करना पड़ता है, उनकी आमदनी कैसी तुच्छ है और कितने अत्याचार और अपमान उन्हें सहने पड़ते हैं !

इस डरावने दृश्य को देखकर पश्चिमी दुनिया के अनेक मनीषी आज निराशा की चरम सीमा पर पहुँच गए हैं। उन्होंने कहना शुरू किया है साधारण जनता को लिखने पढ़ने से क्या लाभ होगा, अगर वह सिर्फ़ निम्नकोटि के अख़बार और रोमांचक जासूसी उपन्यासों को ही पढ़ती है? साधारण जनता को अधिक अवसर क्यों दिया जाय, जब वह शेक्सपीयर का अध्ययन या आकाश के तारों की ओर निहारकर गंभीर चिन्तन नहीं करती? बात तो यह नहीं है, उन्हें जितना अधिक अवसर मिलेगा वे उतना ही फ़िज़ूल के कामों में उसे बिता देंगे। हम जिसे पाश्चात्य सभ्यता कहते हैं, उसकी व्यर्थता के सम्बन्ध में पाश्चात्य मनीषियों में प्रायः मतभेद नहीं है। देख सुनकर हमारी भी धारणा हो गई थी कि संस्कृति नामक वस्तु वास्तव में थोड़े से लोगों के भोग की चीज़ है, साधारण जनता में उसे फैलाने की चेष्टा सफल हो ही नहीं सकती।

हमारी—अर्थात् सारी दुनियाँ की समस्त मानव जाति की—धारणा को ग़लत साबित कर दिया है सोवियत् यूनियन ने। दुनियां के प्रत्येक कवि और मनीषी को मुक्तकंठ से सम्बोधन करके उसने कहा है—'हताश मत हो, मित्र इधर देखो। और इस बात को मानना ही पड़ेगा कि सोवियत् देश की ओर देखने से हमारे हृदय में निराशा का कोई स्थान नहीं रह जाता। इस पागल दुःखग्रस्त दुनियाँ में नवीन आशा की गौरवमयी मूर्त्ति हमें वहीं दिखाई पड़ती है! सोवियत् देश में एक भी निरक्षर आदमी नहीं है। जिस देश में अशिक्षा प्रायः भारतवर्ष सी ही सीमाहीन थी, वहां इतने थोड़े दिनों में यह जन्मान्तर कैसे सम्भव हुआ, इस बात को हम सोच भी नहीं सकते। फिर भी मैं कहूंगा कि यह बहुत बड़ी बात नहीं है, क्योंकि ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, अमरीका आदि देश शिक्षा आंकड़ों में सोवियत् देश से कुछ ही पीछे हैं। इसके साथ दिखाई पड़ती है सोवियत् यूनियन में संस्कृति के पुनर्जीवन की कहानी साहित्य, चित्र, स्थापत्य, संगीत, नाट्यकला, रेडिओ, फ़िल्म आदि तक में। नवीन जीवन का उल्लास देश के कोने कोने में फैल गया है, विशाल जनसंख्या की शाखा प्रशाखा में। इस आनन्द यज्ञ का आह्वान सुदूर प्रान्तों में भी पहुँचा है। किर्गिज़ जिनका दो दिन पहले नर हत्या ही पेशा था, आज वे संस्कृति की दौड़ में आगे हैं। तातारों को अब कौन कह सकता है कि यही उस दिन के दुर्धर्ष डाकू हैं। रूस की संस्कृति की दौड़ में सम्मिलित हुए हैं अर्मेनी, आज़ुर्बाइज़ान, उज़बेकिस्तान के वे नर-नारी, जिनका जीवन एक दिन एशिया के अंधकार में ढका हुआ था। इस दौड़ में आई हैं महिलाएं और—सबसे अचरज की बात है कि इस मैदान में वे राष्ट्र की कर्णधार भी हैं। और यह अन्तिम घटना आश्चर्यजनक इसलिए है कि आधुनिक पाश्चात्य देशों में राष्ट्र के साथ संस्कृति का कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं है, संस्कृति की रक्षा तथा विकास में राष्ट्र की ज़िम्मेवारी है, यह बात किसी आधुनिक राजनैतिक मतवाद में नहीं आती है। प्राचीनकाल में यह दायित्व राजा के मत्थे था। उस समय छोटे छोटे राज्यों तथा मुट्ठीभर शिक्षित समाज में उसका पालन करना असम्भव भी नहीं था। कौन जानता था कि आज के ज़माने में भी कोई राष्ट्र उस कार्य को ग्रहण करेगा, और वह भी सोवियत् यूनियन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जैसा विशाल और विचित्र जन समूहों की आबादी वाला देश। जिस प्रकार धन उत्पादन और वाणिज्य की पूरी ज़िम्मेवारी सोवियत् राष्ट्र पर है, उसी प्रकार शिक्षा और संस्कृति का सारा भार भी राष्ट्र ने अपने ही कंधे पर लिया है। हर एक आदमी के लिए जीविका का यथेष्ट प्रबन्ध करने के लिए वह बाध्य है। प्रत्येक मनुष्य की योग्यता के अनुसार उसे शिक्षित करने, कला का आनन्द प्रदान करने, ज्ञान-विज्ञान में अधिकार देने के लिए भी वह बाध्य है। केन्द्रीय राष्ट्र के निर्देशानुसार सब कुछ हो रहा है, पर विभिन्न संघ-रिपब्लिक, स्वायत्त-रिपब्लिक, स्वायत्त ज़िला या जाति क्षेत्र की स्वतन्त्रता पर रंच मात्र भी हस्तक्षेप नहीं हुआ है। मातृ भाषा ही सब जगह शिक्षा का माध्यम है। रूसी भाषा पढ़ना अनिवार्य नहीं है। सोवियत् यूनियन से जिस देश का बोध होता है उसमें रूसी के अलावा और भी बहुत सी भाषाओं में साहित्य तैयार हो रहा है। उनमें बहुत सी ऐसी भाषाएं भी हैं जिनमें बर्बर बातचीत को छोड़कर और कोई भाव व्यक्त किए जा सकते है, इसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी।

साहित्य की ही बात लीजिये। सोवियत् यूनियन में प्रत्येक लेखक के लिये औसतन डेढ़ लाख पाठक हैं। और ये लेखक हैं कौन? दारोग़ा-दफ़्तर या जासूस सीरिज के लेखक वे नहीं हैं, या केवल हँसिया हथौड़े की जयजयकार मनाने वाले चारण भी वे नहीं हैं। वे सब समय और सब देशों के महान लेखक हैं। वहां शेक्सपीयर, हाइने, फ़्लोबेअर, तल्सतय, दस्तयेवस्कि रोमां रोलाँ, आदि की रचनाओं की खपत के अंक देखकर आश्चर्य होता है। प्रथम पंच वर्षीय योजना के अंत में सोवियत् यूनियन में प्रकाशित पुस्तकों की संख्या इङ्गलैण्ड, जर्मनी और जापान में प्रकाशित पुस्तकों के कुल जोड़ से भी अधिक थी। नाज़ियों द्वारा निर्वासित विश्व विख्यात यहूदी वैज्ञानिक आइन्सटाइन की किताबें इतनी संख्या में शायद और किसी भी देश में नहीं बिकीं, १९२७ और १९३६ के बीच में आइन्सटाइन की ५५,००० किताबें बिकीं। शेक्सपीयर की ३७५ वीं जयन्ती उसके अपने देश में उतनी धूमधाम से नहीं मनाई गई जितनी सोवियत् यूनियन में। १९३५ की बसन्त ऋतु में मास्को में करीब दो लाख लोगों ने 'किं लीयर' नामक शेक्सपीयर के नाटक को देखा। नन्हे से आर्मेनी संघ में पिछले पांच वर्षों में शेक्सपीयर की १२,००० प्रतियां बिकीं। तल्सतय के नाटकों को देखने के लिए लोगों की अपार भीड़ हुआ करती है, और वह भीड़ होती है किन लोगों की? जो काम करते हैं (कमकर), उनकी। रूसी साहित्य के महान क्रान्तिकारी साहित्यिक मैक्सिम गोर्की जो आधुनिक समय में जीवित थे, उन्हें सोवियत् सरकार ने जिस तरह सम्मानित किया है, वह इतिहास का एक अमर उदाहरण है। इस बात को विश्वास करने में किसी प्रकार की हिच-किचाहट नहीं होनी चाहिए कि गोर्की को यह सम्मान मिला था इसलिए नहीं कि उन्होंने मज़दूरों के सम्बन्ध में लिखा है बल्कि उनके असाधारण लेखक होने के कारण। क्रान्ति के बाद सामयिक उत्तेजना की तीव्रता के कारण साहित्य का आदर्श जब ख़तरे में पड़ गया था, तब सबसे पहले गोर्की ने ही उसका प्रतिवाद किया, और उन्हीं के निर्देशानुसार साहित्य और कला को स्वतंत्रता मिली। विप्लव पूर्व लेखक बुर्जोआ होने के कारण अछूत नहीं समझे जाते। पुश्किन, लारमेण्टव, तल्सतय, दस्तयेवस्की का पुनरागमन हुआ। विदेशी साहित्य का ज्वार भी उमड़ आया। अब मास्को में दुनिया की करीब सभी भाषाओं में पुस्तकें छपती हैं। विदेशी साहित्य का अनुवाद ज़ोरों से हो रहा है। सारी दुनिया के श्रेष्ठ विचारों की धारा देश में बहाने का सोवियत् राष्ट्र का संकल्प है। सोवियत् यूनियन में पुस्तक प्रकाशन का भार भी राष्ट्र पर है। किस साल कितनी किताबें प्रकाशित होंगी, यह भी राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत है। देखा गया है कि प्रकाशित पुस्तकों की संख्या इङ्गलैण्ड या अमरीका से कम होने पर भी मुद्रित प्रतियों की संख्या अनेकों गुना अधिक है, और उसमें भी अधिकांश उत्कृष्ट साहित्य है, क्योंकि वह ज़्यादा-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तर पुराने रूसी साहित्य का पुनर्मुद्रण और श्रेष्ठ विदेशी साहित्य का अनुवाद होता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि समसामयिक सोवियत् लेखकों का अनादर होता है, या उनकी रचनाओं के प्रकाशन की सुविधा कुछ कम है, बल्कि यह बेख़ौफ़ कहा जा सकता है कि आज संसार के किसी भी देश में लेखक या कलाकार की ज़िन्दगी इतनी स्वतंत्र और निःशंक नहीं है जितनी रूस में। दरिद्रता और दुःख में ही प्रतिभा का विकास होता है, पाश्चात्य देशों के इस संस्कार पर सोवियत् सरकार का विश्वास नहीं है। उसने ऐसा इन्तज़ाम किया है जिसमें किसी भी हालत में कलाकार को कभी आर्थिक कष्ट न उठाना पड़े और हाथ का काम जल्दबाज़ी में ख़त्म न करना पड़े और लिखने-पढ़ने, आलोचना, विशेषज्ञों के परामर्श वग़ैरह की जब और जितनी ज़रूरत होती है, उसे मिलती है। राष्ट्र ही प्रकाशक है, अतएव अपनी किताबों, चित्रों या संगीत से जितनी आमदनी होती है, वह सभी लेखक को मिलती है। किसी किसी कलाकार का उपार्जन इतना अधिक है कि सुनकर अचरज होता है। इसके अलावा मन के लायक घर का इन्तज़ाम है। साल में एक बार वे सरकारी ख़र्च से किसी स्वास्थ-निवास में रहकर विश्राम कर सकते हैं। वास्तव में लेखक, कलाकार, मनीषियों को सोवियत् राष्ट्र में विशेष सुविधा प्राप्त है।

यहाँ संशयी व्यक्ति प्रश्न करेगा कि क्या इतनी सुविधा पाकर भी शेक्सपीयर और तल्सतय सी प्रतिभा का उदय हुआ है? बुर्जोआ सभ्यता का ऐश्वर्य असीम है, लेकिन उस तुलना का प्रश्न तो उठ ही नहीं सकता। बुर्जोआ सभ्यता कितने शताब्दियों की है और सोवियत्-समाज की स्थापना तो अभी उस दिन हुई है। और संस्कृति को तो शायद बुर्जोआ कहा ही नहीं जा सकता। इतिहास में इसकी धारा निरवच्छिन्न है, नहीं तो आजकल सोवियत् यूनियन में 'बुर्जोआ' लेखकों का प्रताप इतना अधिक क्यों है?*

एक बात और; किसी भी समाज में, किसी भी हालत में प्रतिभावान को फ़रमाइश से तैयार नहीं किया जा सकता। उसे जब दिखाई पड़ना चाहेगा, तभी वह दिखाई पड़ेगा। हमें देखना चाहिये कि साधारण जनता का सांस्कृतिक स्तर कितना ऊपर उठा? देखना होगा ज्ञान, विज्ञान और कला का सम्मान तथा समादर कितना हो रहा है? सोवियत् साहित्य और कला से मेरा परिचय नाम मात्र है। साहित्य और कला पर वहाँ कोई प्रतिबन्ध है या नहीं, इसे विश्लेषण करने का अवसर मुझे नहीं मिला। परन्तु ऊपर जिस हालत का वर्णन किया है, वह हमारे देश—सिर्फ़ हमारे ही देश के क्यों—किसी भी देश के लेखक, कलाकार और मनीषी के लिये अत्यधिक लोभ की वस्तु है, इसे स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं होता। हम कलाकारगण इस देश में जिस प्रकार का जीवन निर्वाह करते हैं, वह दरिद्रता के कारण संकीर्ण है; अपमान अत्याचार से भरा है, और प्रतिभा के विकास में सहायक नहीं है, बल्कि वह प्रतिभा के अंकुर को दिनों दिन ध्वंस कर रहा है। इस बात को हम सभी भली भांति जानते हैं कि दरिद्रता महान नहीं बनाती, वह तो मनुष्यत्व को भी नष्ट कर देती है। इस सत्य को जिस देश ने कार्यक्षेत्र में, स्वीकार कर लिया है, स्वतंत्र जीवन का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को जिस देश ने प्रदान किया है, कलाकार तथा मनीषी के आत्मविकास और आत्म-प्रकाश की परिपूर्णतम सुविधा जिस देश ने दी है, उसका अभिनन्दन करना मनुष्य के नाते हमारा आनन्दमय अधिकार है।

---

* मेरा अनुरोध है कि साहित्य समालोचक इस बात को याद करलें कि किसी लेखक को 'बुर्जोआ' कहकर वे यह न समझें कि वह कोई नाकाम लेखक है—लेखक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिंसात्मक बनाम अहिंसात्मक संस्कृति

श्री मेरिक डाड

गत महायुद्ध के साथ साथ शान्तिवादियों की चरचा भी चारों ओर सुनाई देने लगी है। शान्तिवादी यह कहते हैं कि मौजूदा युद्ध दो प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादी गिरोहों का युद्ध है। इस युद्ध से जनता को कोई लाभ नहीं। युद्ध की हार जीत में जनता को ज़रा भी दिलचस्पी नहीं। साम्राज्यवादियों का एक दल चाहता है कि सारी दुनिया का वही शोषण करे और दूसरा दल इस शोषण में हिस्सा बटाना चाहता है। शान्तिवादी हम लोगों से कहते हैं कि नैतिक दृष्टि से युद्ध में भाग लेना अहितकर है। युद्ध में शरीक न होकर उसके परिणाम भोगना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। वे कहते हैं साम्राज्यवादी अपनी व्यक्तिगत ख़्वाहिशों को मातृभूमि की रक्षा के झूठे रंग से रँग कर पेश करते हैं। शान्तिवादियों का एक दल इस युद्ध को धार्मिक दृष्टि से देखता है और कहता है कि युद्ध में शरीक होकर लोग स्वर्ग के राज्य को अपने से वंचित करते हैं। उसका कहना है कि पाप पाप से दूर नहीं होता और घृणा घृणा से नहीं बुझती। स्टैनफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर ट्रू ब्लड लिखता है कि यदि शान्तिवादी अपने प्रचार में सच्चे हैं और उनमें अनुशासन है तथा वे युद्धवादियों के अत्याचार सहने को तैयार हैं तब यह सम्भव है कि वे संसार को अपने विचारों का बना सकें। अनेक शान्तिवादी यह कहते हैं कि अहिंसात्मक प्रवृत्ति से हिंसात्मक सेनाओं के दिलों को पिघलाया जा सकता है। कुछ शान्तिवादियों का कहना है कि गो विजेताओं को अहिंसात्मक उपायों से फ़ौरन ही अपनी राय का नहीं बनाया जा सकता, किन्तु लगातार कोशिशों के बाद विजेता में भी अहिंसा की ज्योति जगाई जा सकती है।

मेरी नम्र सम्मति में यह सब भुलावे की बातें हैं। मौजूदा दुनिया में आधुनिक फ़ौजों को न पर्वत श्रेणियाँ और न महासागर ही रोक सकते हैं। ऐसे राष्ट्र जो अब भी स्वतंत्र हैं अहिंसात्मक उपायों से काम लेने लगें, तो यह सभ्यता की आत्महत्या के बराबर होगा। आजकल बिजली की सी तड़प के साथ फ़ौजी हमले होते हैं। शान्तिवादियों के तरीक़ों की सफलता में अनन्त काल की ज़रूरत है और मेरा अपना कहना यह है कि यदि उन्हें काफी समय भी दिया जाय, तब भी वे सभ्यता की रक्षा नहीं कर सकते।

संसार की शान्ति अहिंसा से क़ायम नहीं रखी जा सकती। जब तक दुनिया में फ़रिश्तों का वास नहीं होता, तब तक हिंसा की ज़रूरत रहेगी। देश की आन्तरिक शान्ति और लोगों को क़त्ल तथा डाके से बचने के लिये शस्त्रों की ज़रूरत होगी। हर समाज में अपराधी होते हैं और ऐसे अपराधियों को दया से अपने बस में नहीं किया जा सकता, बल्कि समाज के फ़ायदे के लिये उन्हें डंडे से ही क़ाबू में रखना पड़ेगा। अनेक शान्तिवादियों के अनुसार यदि एक पुलिसमैन के लिये भागे हुये ख़ूनी को गोली मार देना जायज़ है, तब एक सैनिक के लिये सशस्त्र आक्रामक को गोली मारना क्यों जायज़ नहीं? शान्तिवादी इस बात का सीधा जवाब नहीं देते। वे सिर्फ़ यही कहते हैं कि यदि हम निरन्तर युद्ध नहीं चाहते, तो हमें शान्तिवादी उपायों को ही ग्रहण करना चाहिये। उनकी राय में दुनिया के लोग धीरे-धीरे शान्तिवादी उपायों से और परिवर्त्तन ही से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित कर सकते हैं, ऐसी शान्ति जो बिना सैनिक तरीक़ों के हासिल की जाय।

दुर्भाग्य से मानव जाति के इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि जिससे यह साबित हो कि शान्तिवादी उपायों से दुनिया में शान्ति सम्भव है। जनता ने इसे पूरी तरह कभी नहीं अपनाया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शुरू के ईसाई और क्वेकर युद्धवादी समाज के बीच में रहने वाले छोटे छोटे दल थे। ईसाइयों के एक दल ने अन्तिम रोमन साम्राज्य पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु यह उन्होंने अहिंसा को तिलांजलि देकर ही किया।

एशिया के कुछ हिस्सों में अवश्य इन शान्तिवादी तरीक़ों पर अधिक व्यवहार किया गया है। १९ वीं सदी के चीनी और महात्मा गान्धी के अनुयायी इसके उदाहरण हैं। किन्तु चीनियों और भारतीयों के इतिहास का गम्भीरता से अध्ययन करने पर पता चलेगा कि ये देश भी शान्तिवादी उपायों के लिये पूरी तरह उपयुक्त साबित नहीं हुए।

चीन का ही उदाहरण ले लीजिये। बुद्ध, लाओत्ज़े और कनफ़्युशिअस की शिक्षा में अहिंसा का ज़बरदस्त पुट था और अनेक सदियों तक चीनी जनता का बहुमत अपनी इन महान आत्माओं की शिक्षा के अनुसार सैनिक के काम को अवज्ञा से देखता रहा। नतीजा क्या हुआ? अनेक बार छोटे छोटे सशस्त्र गिरोहों ने चीन पर क़ब्ज़ा कर लिया। लगभग १७ वीं सदी में सशस्त्र तरीक़ों से मांचुओं ने चीन को जीता था। यह अक्सर कहा जाता है कि अनेक दृष्टियों से मांचुओं की जीत चीन के लिये कष्ट कर साबित नहीं हुई; यानी चीनी जीवन और चीनी सभ्यता पर उसका कोई बुरा असर नहीं पड़ा। यह सही है। पर यह भी सही है कि मांचू साम्राज्य के समय में चीनी जीवन गांव का जीवन था। मांचू विजेता, जो संख्या में थोड़े थे, उन्हें गाव वालों के मामलों में कोई दिलचस्पी न हो सकती थी। वे उनसे केवल टैक्स वसूल करना चाहते थे। इसलिये चीनी गावों की ज़िन्दगी ज्यों की त्यों क़ायम रही। किन्तु पिछले कुछ वर्षों के अन्दर क्या से क्या हो गया? जापान के साथ इस मौजूदा युद्ध में चीन तेज़ रफ़्तार के साथ 'मार्डन' बनता जा रहा है। वहाँ औद्योगिक कारख़ाने क़ायम हो रहे हैं। गाँवों की आर्थिक प्रणाली की जगह अब राष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली ले रही है। जगह-जगह रेलें बिछाई जा रही हैं। सड़कें बनती जा रही हैं। विश्वविद्यालय क़ायम किये गये हैं, जिनमें दूर तथा पास के हज़ारों विद्यार्थी इकट्ठा हो रहे हैं। चीन अख़बार पढ़ने वाला और रेडियो सुनने वाला देश बनता जा रहा है।

ऐसा राष्ट्र जो वैज्ञानिक और आर्थिक तरीक़े पर संगठित हो रहा हो, विदेशी आक्रामकों के आगे सिर नहीं झुका सकता। आजकल की ग़ुलामी का अर्थ है नैतिक, आर्थिक और बौद्धिक दृष्टि से देश के समस्त जीवन का पतन। आजकल के साम्राज्यवादी ग़ुलाम राष्ट्रों के शोषण के तरीक़ों से पूरी तरह परिचित हैं। मंचूरिया और कोरिया पर जापान ने अपना यह उद्देश्य पूरा कर लिया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह जुलाई १९३७ में चीन विजय के लिये निकला।

सौभाग्य से अपने और दुनिया के कल्याण की दृष्टि से चीनियों ने इस हमले का मुक़ाबला करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने परिचित अहिंसात्मक उपाय से काम नहीं लिया। वे अपने टूटे-फूटे हथियारों से ही जापानियों से लड़े और आत्मविश्वास के साथ अब भी लड़ रहे हैं। चीन को पूरा भरोसा है कि वे इन ख़ूंख़ार आक्रामकों को अपने देश से बाहर निकाल देंगे।

हिन्दुस्तान की भी समस्या इसी तरह की है; किन्तु चीन की जनता की तरह अहिंसा को यहाँ की समूची जनता ने कभी नहीं अपनाया। अहिंसा हिंदुस्तान के एक वर्ग का ही शस्त्र रहा है जिसके महात्मा गांधी नेता हैं। किन्तु हाल में इण्डियन नैशनल कांग्रेस ने यह ऐलान किया है कि वह बराबरी की हैसियत से युद्ध में भाग लेने को तैयार है, ग़ुलाम की हैसियत से नहीं। यदि इस युद्ध में हिन्दुस्तान हिस्सा नहीं ले रहा है, तो इसका कारण उसकी अहिंसा नहीं है, बल्कि यह कि हिन्दुस्तान आज़ाद नहीं है और आजकल भारत से जो युद्ध में मदद मिल रही है, वह उसकी मर्ज़ी से नहीं मिल रही है।

जहां तक अमरीका का सम्बन्ध है, यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हमें हिन्दुस्तानियों और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चीनियों की तरह अहिंसा की शिक्षा नहीं मिली। इस तरह की शिक्षा का व्यावहारिक दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मानव जाति का इतिहास सभ्यता के इतिहास की तरह ही है। अनेक निर्बल सभ्यताएं दुनिया से मिट गईं और अपने बाद अपना चिन्ह छोड़ गई हैं, जो पुरातत्त्ववेत्ताओं के लिये केवल खोज के विषय हैं। बाबुल, मिस्र, असुरिया आदि के खंडहर और युगतान के माया मन्दिर इसके उदाहरण हैं।

जिस तरह पिछले महायुद्ध के बाद शान्तिवादियों को किसी तरह की सफलता नहीं मिली, उसी तरह आज भी उन्हें असफलता ही मिलेगी। सभ्यता की रक्षा शान्तिवादी तरीक़ों से नहीं हो सकती। सभ्यता की रक्षा तलवार से ही, हिंसा से ही हो सकती है। अहिंसा से सांस्कृतिक दुनिया को बचाने में सफलता कभी न मिलेगी। हिंसा से ही सांस्कृतिक दुनिया को बचाया जा सकता है। हमारी तलवार शांतिवादियों की भी रक्षा करेगी और उनको इस बात का मौक़ा देगी कि वे अहिंसा का प्रचार करें। सभ्यता आज इसीलिये क़ायम है कि उसका बहुमत शान्तिवादी उपायों को अवज्ञा से देखता है और हिंसा के आधार पर ही मानव संस्कृति की रक्षा करना चाहता है।*

गीत

श्री गोपीकृष्ण

मौन स्वरों में पत्थर बोला,
मानव, तू सुन भी पाया क्या ?
"वह जो तुझसे प्रीत निभाता,
तू जीवन को सफल बताता,
तूने भला किया कब, किसका
और निबाहा किससे नाता,
स्वर्ग धरा पर माँग रहा है,
पर देने को तू लाया क्या ?
"वह कल था, इतना क्या कम है,
आज नहीं है तो क्या दुःख है !
याद दिलाने को दीवारें हैं,
इतना क्या थोड़ा सुख है !
झरें वृक्ष के मीठे फल यदि—"
मधुर नहीं तरु की छाया क्या !
मैंने समझ देव पत्थर में—
पत्थर पूजा, शीष झुकाया,
कलि मुरझाई, गई चढ़ाई,
दीप बुझा जो गया जलाया,
प्रथम उसी दिन पत्थर बोला—
'क्यों ! तेरा मन भर आया क्या' ?

* विचार स्वातंत्र्य के नाते ही हम श्री डाड का यह लेख छाप रहे हैं—सम्पादक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिख साम्राज्य की एक झांकी

सर शफ़ात अहमद खां

१९ वीं सदी के भारतीय इतिहास में जिन व्यक्तियों की छाप पड़ी है, उनमें रणजीत सिंह का नाम प्रमुख है। रणजीत सिंह असीम प्रतिभाशाली शासक था। उसकी दिमाग़ी शक्ति ग़ज़ब की थी। ज़िन्दगी के विविध पहलुओं से उसकी हमदर्दी में ही उसकी सफलता का रहस्य है। कैम्प में, दरबार में, खेल कूद में, शिकार में हर जगह वह एक-सा रहता था। उसका शानदार दरबार सैनिकों के जीवन में वे सब लुत्फ़ पैदा कर देता था, जो संस्कृति और तहज़ीब के लिये सम्भव था। यदि ख़ुशदिल और आरामपसन्द लोग उसे अमन चैन का जीवन बिताने वाला समझते, तो सैनिक उसे सब में महान सेनापति के रूप में देखते जिसने ख़ालसा सेना के हाथों में विजय का झण्डा दिया। धर्मभीरु लोग उसे ख़ालसा सम्प्रदाय का महान नरेश समझते कि जिसकी नम्रता और धार्मिकता ने अकालियों तक के हृदय को जीत लिया था। बग़ैर अत्युक्ति के यह कहा जा सकता है कि वह अपनी जाति के महान से महान गुणों का मूर्तरूप था और ख़ालसा लोगों ने तो उसमें शौर्य का अवतार ही देखा।

रणजीत सिंह के ज़माने में राज्य की समस्या ख़ास तौर पर व्यवस्था और शासन की समस्या थी। अत्याचार और अन्याय को रोककर योग्य व्यक्तियों को उन्नति का पूरा मौक़ा देना यही उस समय के शासक का कर्तव्य था। इस कसौटी को ध्यान में रखते हुए रणजीत सिंह का शासन पूरी तरह सफल था। सर हेनरी लारेन्स सन् १८४४ में प्रकाशित अपनी एक पुस्तक—'पैसेजेज़ इन दी लाइफ़ आफ़ एन एडवेंचरर इन दि पञ्जाब' में लिखता है—"रणजीत सिंह के शासन ने हर एक को उम्मीदें दिलाईं, लोगों के हौसले बढ़ाये और राज्य के अनुचरों को उसने मुस्तैद बनाया।" रणजीत सिंह को बेहद अनुभव था। शासन सम्बन्धी छोटी से छोटी बात पर भी वह धैर्य के साथ ध्यान देता था। पेचीदा हिसाब उसे इस तरह ज़बानी याद रहते थे कि लोग सुनकर दङ्ग रह जाते थे। यूं तो समझा जाता है कि एक व्यक्ति का शासन सुचारु नहीं हो सकता, किन्तु रणजीत सिंह ने सिख राज शासन को पूरी तरह केन्द्रीय बनाकर भी उसकी व्यवस्था को जौ भर बिगड़ने नहीं दिया। उसका राज्य शासन सफल राज्य शासन था। माल के मुहकमे में तो उसे ग़ज़ब की क़ामयाबी मिली, किन्तु दीवानी मुहकमे में दक्ष अफ़सरों के अभाव के कारण समस्त मुहकमों को अच्छी तरह एक सूत्र में नहीं पिरोया जा सका। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जो जाट उस समय पंजाब पर हुकूमत कर रहे थे वे ख़ास तौर पर सैनिक थे। अपने राज्य की सीमाएं बढ़ाना उनका ख़ास लक्ष्य था, इसीलिये वे हुकूमत की पेचीदगियों में उतना वक़्त नहीं दे सकते थे।

ख़ालसा सत्ता प्रधानतः सैनिक सत्ता थी। फ़ौजी ज़रूरतें बहुधा शासन की ज़रूरतों के ऊपर हावी हो जाती हैं। उन्होंने एक हुकूमत क़ायम की थी। अफ़ग़ानों को उन्होंने पंजाब की सीमा से निकालकर बाहर कर दिया था और अनेक ज़िले, शहर और सूबे अपने मातहत कर लिये थे, जो शिक्षा, संस्कृति और आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे से बिलकुल भिन्न थे। इन सब विविध टुकड़ों को जो इससे पहले हमेशा एक दूसरे से लड़ा करते थे, एक में जोड़कर उनमें एकता और अखण्डता क़ायम करना एक कमाल का काम था। असंख्य आत्म निर्भर और स्वतंत्र व्यक्तियों को मिलाकर केन्द्रीय शासन सृजन करने का काम रणजीत सिंह के लिये आसान न था, किन्तु रणजीत सिंह की असाधारण क्षमता के कारण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ये समस्त विरोधी शक्तियां एक हुईं, इनमें राष्ट्रीयता का भाव जागा और बाहर के हमलों से बचने के लिये इनमें जागरूकता पैदा हुई। जन साधारण के अन्दर न तो धार्मिक मतभेद थे और न धार्मिक एकता, मगर उनका बटवारा मज़हबी बिना पर न था। सारी आबादी फ़ौजी और ग़ैर फ़ौजी टुकड़ों में बंट गई थी। फ़ौजी अपने को समाज का विशिष्ट अङ्ग समझने लगे। हुकूमत पर अपने अनन्याधिकार की बात वे सोचने लगे। किन्तु बाद में राज्य की एकता पर इसका भयङ्कर असर पड़ा। रणजीत सिंह अपनी असाधारण क्षमता से अपने सैनिकों और सूबेदारों को अनुशासन में रखता था। रणजीत सिंह की मृत्यु होते ही सैनिक अनुशासन और नियंत्रण से स्वतन्त्र हो गये। रणजीत सिंह ने जागीरदारों की ताक़त को तोड़ दिया था और पंजाब के हर हिस्से में अपना अनन्य प्रभुत्व क़ायम किया था, किन्तु फिर भी वह सेना को राज्य शासन के मातहत करने में असफल रहा और पंजाब को इसके लिये बड़ी ज़बर्दस्त क़ीमत चुकानी पड़ी। सिक्खों की आध्यात्मिक और धार्मिक भावना सैनिक भावना के अन्दर परिवर्तित हो गई और इस सैनिक भावना ने सिक्खों की संस्कृति में ही आमूल परिवर्तन कर दिये। जागीरदारी प्रथा छद्मवेश में अपना असर क़ायम करती रही और रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद ही वह सैनिक समाज में अभिजात्य बन गई। लोग इन सैनिक जागीरदारों के झण्डे के नीचे ख़ुशी ख़ुशी आकर इकट्ठा होने लगे और धर्मभक्ति और देशभक्ति की जगह व्यक्तिभक्ति की शपथ खाने लगे। इन जागीरदारों ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये सीधे सादे किसानों का ख़ूब शोषण किया और थोथे नारों के बहाने उन्हें चकमा दिया। ख़ालसा का जनतन्त्र नष्ट होकर निरंकुश जागीरदारी प्रभुत्व क़ायम हो गया। यदि रणजीत सिंह अक्षुरण सिख शासन क़ायम करने में असफल रहा, और यदि रणजीतसिंह के मरते ही सिख साम्राज्य फ़ौरन बालू की भीत की तरह गिर पड़ा तो उसके लिये अपराधी उसके उत्तराधिकारी हैं कि जिनमें न तो शक्ति ही थी और न उद्योगीवृत्ति ही और जो न छोटी छोटी बातों से ऊपर ही उठ सके।

रणजीतसिंह ने सिखों के अन्दर न केवल बहादुरी से भरी हुई आत्म रक्षा की भावना को ही जाग्रत किया बल्कि उनके अन्दर ऐसे आक्रामक साम्राज्यवाद की भावना जाग्रत की जिस भावना को व्यापक रूप देने के लिये सिखों को अपनी समस्त कार्यशील शक्तियों को अमली रूप देना पड़ा। रणजीतसिंह ने विरोधी और विपरीत अवयवों को मिलाकर उनसे सृजन का काम लिया। उसने शासन की एक ऐसी प्रणाली ईजाद की जो क्षणिक काल के लिये तो बेहद कामयाब रही, किन्तु उसके अन्दर वह लचीलापन नहीं था जो उसे हर परिस्थिति का मुक़ाबला करने के योग्य बनाता। उसने मुग़ल शासन प्रणाली का, कि जो अठारहवीं सदी की पेचीदगियों के बीच भी काम देती रही, बहिष्कार करके उसकी जगह अपनी परिस्थिति के अनुकूल काम चलाऊ शासन प्रणाली क़ायम की। सिखों को अपनी ज़िन्दादिली के सामने हर चीज़ आसान दिखाई देती थी और उस समय तक पतन की सीमा भी दूर थी। थोड़े ही अरसे के अन्दर उन्होंने जो काम कर दिखाया वह सचमुच आश्चर्यजनक था और यदि रणजीतसिंह के बाद उसकी जगह कोई योग्य शासक गद्दी पर बैठा होता तो सिख साम्राज्य, जो इतनी शक्ति लगा कर क़ायम किया गया था, मुमकिन है बहुत दिनों और चलता।

रणजीतसिंह की योग्यता उसकी दिमाग़ी महत्ता और कल्पनाशक्ति के ऊपर निर्भर थी। उसकी कल्पनाशक्ति उसके समकालीन लोगों की अपेक्षा उसे अधिक दूर ले गई और उसने लोगों के दिमाग़ और स्वभाव को ध्यान में रखते हुए अपना राजनैतिक कार्यक्रम गढ़ा। सहज बुद्धि, मानव भावना, सहानुभूति और जनता के प्रति असीम विश्वास ने रणजीतसिंह को हिन्दुस्तान के बड़े से बड़े निर्माणकारों में स्थान दिया है। उसके कार्य, उसके युद्ध, उसकी शक्तिमत्ता, उसकी शासन संचालन की विधि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आदि चीज़ों का भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों को गम्भीरता से मनन करना चाहिये। उसका सफल जीवन प्रत्येक भारतीय के लिये एक प्रोत्साहन की वस्तु है। उसका लम्बा और सुखी शासन और उसका सफल सैनिक कार्यक्रम आज भी राजनीति के विद्यार्थियों के लिये अध्ययन की सामग्री है।

वसंत

श्री गंगाप्रसाद पांडेय

नव - बसंत की साँझ सुनहला सुन्दर सा आकाश!
एक वर्ष के बाद हर्ष फिर
वन्य - प्रकृति में छाया,
अलियों ने कलियों का—
चुम्बन एक बार फिर पाया,
रोम-रोम को पुलकित करता बहता मलय वतास!

निझरे, झरे, सुमन तरु लहरे
कोयल मधु - स्वर गाती,
रंग-बिरंगे फूलों से मिल
तितली फिर इठलाती,
सुख-दुःख का परिचित परिवर्तन जीवन का इतिहास!

किन्तु करुण कितनी मानवता
ममता लिये अथाह,
बिछुड़े, जुड़े न फिर जीवन में
भरना केवल आह,
क्या मानव के इस जीवन का दुःख ही चरम विकास!

सृष्टा की इस स्नेह - सृष्टि में
मानव सबसे सुन्दर,
अपनेपन की चेतनता से,
आकुल उसका अन्तर,
इसीलिये मैं पुलकित हो होकर भी आज उदास!
नव-बसंत की साँझ सुनहला सुन्दर सा आकाश!

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संसार की नव-व्यवस्था

श्री शङ्कर गणपतराव कोकने

पिछले दिनों न्यूयार्क में जो अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर सम्मेलन हुआ, उसमें संसार की आगामी नव-व्यवस्था, सामाजिक न्याय और युद्ध के बाद के निर्माण को लेकर काफ़ी चरचा हुई। वहाँ जो विचार व्यक्त किये गये, उनसे हमें गत महायुद्ध के ज़माने के बुलन्द नारों और राष्ट्रपति विलसन की १४ शर्तों की याद आ गई। पिछले महायुद्ध को जनतन्त्र के लिये लड़ा जाने वाला युद्ध कहा गया था, और हमें बताया गया था कि वह युद्ध स्वतन्त्रता का युद्ध था। किन्तु बीस वर्ष का शान्तिमय जीवन भी हमें उस उद्देश्य के एक इंच निकट नहीं ले गया। इसके विपरीत आज सारा का सारा संसार एक महान भयानक युद्ध में—ऐसे युद्ध में जो पिछले युद्ध से दस गुना भयंकर है, फंसा है। गत महायुद्ध के बाद का इतिहास मित्र राष्ट्रों द्वारा घोषित सुन्दर भावनाओं का काला इतिहास है। नरक का मार्ग इसी तरह की घोषणाओं से जड़ा हुआ है, महज़ इन भावनाओं के दुहराने से ही संसार का कल्याण नहीं हो सकता। जब तक लड़ाई के बाद किसी अन्य उद्देश्य को जहां तक सम्भव हो शीघ्र व्यावहारिक रूप नहीं दिया जाता, तब तक अटलांटिक की इस सुन्दर घोषणा का भी विलसन की १४ शर्तों की तरह ही अन्त होने की सम्भावना है। वार्साई के सन्धि-गृह में बैठकर विलसन ज़बरदस्त प्रयत्न करने पर भी मित्रराष्ट्रों के बदले की भावना और उनके लोभ को दबाने में असफल रहा। विलसन हारा हुआ, धोखा खाया हुआ और निराश होकर अमरीका लौटा था। शान्ति और समृद्धि से भरे हुये संसार के नव-निर्माण का उसका सुनहला स्वप्न टुकड़े-टुकड़े हो गया था। आज हमारी आंखों के सामने जो दूसरा दुखान्त नाटक हो रहा है, उसके भी पिछले ही नाटक की तरह अन्त होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। सिर्फ़ अन्तर यही है कि राष्ट्रपति विलसन की जगह राष्ट्रपति रूज़वेल्ट लड़ाई के बाद के नव-निर्माण के सम्बन्ध में अपने पूर्वाधिकारी की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ निश्चयी दिखाई देते हैं। मुमकिन है उनके इस निश्चय में दुनिया की स्वतन्त्रता और शान्ति की नव-व्यवस्था तथा सामाजिक न्याय की सम्भावना निहित हो।

नव-व्यवस्था को लेकर अनेक तरह की बहसें चल रही हैं। धुरी राष्ट्र यूरोप में नव व्यवस्था क़ायम करना चाहते हैं। जापान सुदूर पूर्व में नव-व्यवस्था क़ायम करना चाहता है और मित्र राष्ट्र हिटलरवाद के नाश के बाद एक उत्तमतर संसार बनाने की कल्पना कर रहे हैं। सारा संसार इस समय शान्ति और समृद्धि के नव युग के जन्म की वेदना के बीच से निकल रहा है।

यह शान्ति और समृद्धि कैसे प्राप्त हो ?

जब तक हम दुनिया के पिछले दो तीन सौ वर्षों के इतिहास पर नज़र न डालें तब तक इस प्रश्न का समुचित उत्तर नहीं दे सकते। मशीनों के आविष्कार ने संसार के अन्दर एक नई समस्या पैदा कर दी है। यातायात के साधन बढ़ गये हैं और मशीनों के द्वारा बड़ी मिक़दार में चीज़ों की पैदावार बढ़ गई है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के विकास और आर्थिक तथा राजनैतिक साम्राज्यवाद की अवहेलना कर हम संसार की नव-व्यवस्था पर उचित राय क़ायम नहीं कर सकते।

ब्रिटेन और फ्रांस औपनिवेशिक क्षेत्र क़ायम करने की दौड़ में सबसे पहले मैदान में आये और १९ वीं सदी के अन्त तक अफ्रीका, एशिया और प्रशान्त महासागर के द्वीपों में ये बड़े-बड़े साम्राज्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के स्वामी बन गये। पिछली सदी का इतिहास, पूर्वी राष्ट्रों के ऊपर यूरोप के प्रभुत्व का इतिहास है। वह पश्चिमी शक्तियों के औपनिवेशिक सत्ता क़ायम करने का कलुषित इतिहास है। फ्रांस और ब्रिटेन को अपने औपनिवेशिक साम्राज्य के ऊपर नाज़ है। उन पर शासन करना वे अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं। उनके ये साम्राज्य अफ्रीका और आस्ट्रेलिया निवासियों के ख़ून से तर हैं। ब्रिटेन की साम्राज्य-लिप्सा ने भारत के ४० करोड़ निवासियों को ग़ुलाम बनाया है। जब ब्रिटेन और फ्रांस के राजनीतिज्ञ हिटलर पर ग़ुस्सा उतारते हुये कहते हैं कि नाज़ी अत्याचार की चक्की एक के बाद एक यूरोप के राष्ट्रों की स्वाधीनता को पीस रही है, तब एक निष्पक्ष दर्शक को यह बात दिखाई देती है कि जिन तरीक़ों से यूरोप के साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने अपने उपनिवेशों को क़ायम किया था, वही तरीके अब भस्मासुर के वरदान की तरह उनके ऊपर उलट पड़े हैं। श्री नार्मन लीज़ के शब्दों में—"जर्मनी के कलुषित कुकृत्य की तुलना में हम अंग्रेज़ और फ्रांसीसी दूध के धुले हुये मालूम होते हैं, किन्तु बारीकी से देखने पर, मिसाल के तौर पर, लेओनर्ड की पुस्तक बताती है कि हमारी चादर में भी धब्बा है और उसमें यहाँ वहाँ ख़ून के निशान हैं।

महायुद्ध के पहले जनरल वान एप के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य ब्रिटेन का १०५ गुना बड़ा, बेलजियम साम्राज्य बेलजियम से ८० गुना बड़ा, हालैंड का साम्राज्य हालैण्ड से ६० गुना बड़ा और फ्रांस का साम्राज्य फ्रांस से २२ गुना बड़ा था। किसी तरह का भी प्रचार इस बात को नहीं छिपा सकता कि इन लम्बे चौड़े साम्राज्यों का ये राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिये शोषण नहीं करते। ये बड़े-बड़े साम्राज्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और दुनिया की शान्ति के लिये ज़बरदस्त ख़तरा साबित हो रहे हैं। ये साम्राज्य हिंसा या हिंसा की धमकी से क़ायम किये गये हैं। वान एप द्वारा बताये हुये आँकड़े स्वयं ही अपनी कहानी कहते हैं। अब बताइये इस कैफ़ियत के होते हुये ब्रिटेन अन्य राष्ट्रों पर कैसे नैतिक असर डाल सकता है? जिन मुल्कों के पास इस तरह के साम्राज्य नहीं हैं और जो एक शताब्दी बाद ही सही, अपने लिये इस तरह के साम्राज्य गढ़ने निकले हैं, उन पर ब्रिटेन का कैसे असर पड़ सकता है? साम्राज्य की लालसा ने आज यूरोप को अपने पाश में जकड़ रक्खा है। साम्राज्य की इसी प्रतिस्पर्द्धा ने दो युद्धों को जन्म दिया। एक पिछला महायुद्ध और दूसरा पिछले महायुद्ध से भी अधिक भयंकर वर्तमान महायुद्ध। जब तक साम्राज्यवाद की भावना यूरोपीय मुल्कों में बनी रहेगी, तब तक इस तरह के युद्ध की ज्वालामुखी साम्राज्यवादी और साम्राज्यहीन राष्ट्रों के बीच फूटती रहेंगी।

किन्तु क्या किसी मुल्क की समृद्धि के लिये उपनिवेशों और साम्राज्यों की ज़रूरत है? बहुत से ईमानदार अंग्रेज़ मुमकिन है यह सोचते हों कि साम्राज्य द्वारा प्राप्त सुविधाओं पर ही उनका सुख और समृद्धि निर्भर है। फ़र्ज़ करिये इसमें सचाई है, किन्तु आज ऐसे अंग्रेज़ के सामने दो बातों में से एक चुनने का प्रश्न खड़ा हो गया है। वे या तो अपने साम्राज्य पर दख़ल बनाये रहें और हर पीढ़ी के बाद अपने यहाँ के सपूत युवकों को युद्ध क्षेत्र में तोपों के सामने बलि देते रहें, या फिर दुनिया में शान्ति और स्वतंत्रता क़ायम करें और हर राष्ट्र के अन्दर यह भावना पैदा करें कि वह ख़ुद भी ज़िन्दा रहे तथा दूसरों को भी ज़िन्दा रहने दे। यदि दुनिया में शान्ति और नव-व्यवस्था क़ायम करनी है, तो इसके लिये बहुत बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ेगी। सारे साम्राज्य भंग करने पड़ेंगे और ग़ुलाम राष्ट्रों को आज़ाद करना होगा। मुमकिन है कि यह क़ीमत बड़ी मालूम होती हो, किन्तु इससे जो लाभ होगा, उसे देखते हुये यह क़ीमत हरगिज़ बड़ी नहीं है। साम्राज्यवाद व्यक्तिगत पूंजीवाद को जन्म देता है और पूंजीवाद व्यक्तिगत मुनाफ़े की भावना को जन्म देता है। साम्राज्यों को भङ्ग होने से रोकने के लिये पूंजीपति ज़मीन आसमान एक कर देंगे। उनके निकट साम्राज्यों को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भङ्ग करने का अर्थ होगा अपने माल की बिक्री के बाज़ारों को, कच्चा माल प्राप्त करने की सुविधा को और बड़े-बड़े मुनाफ़ों को खो देना। दुर्भाग्य से हर साम्राज्यवादी मुल्क पर पूंजीवादियों की टोली हुकूमत करती है और ये लोग शान्ति के हर प्रयत्न की जड़ काट देते हैं, किन्तु मज़दूरों का इसी में हित है कि वे देश के लाभ को व्यक्तिगत लाभ की जगह दें। सुख और शान्ति हर मुल्क के क़दमों पर है; यदि पैदावार को समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार संगठित कर लिया जाय; तो शान्ति और समृद्धि हर मुल्क की मुट्ठी में है। यदि विज्ञान ने इन्सानों की हत्या करके आश्चर्यजनक सफलता पाई है, तो उसे मानवता के लाभ के लिये भी इस्तेमाल किया जा सकता है। साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने साम्राज्य को खोकर भी नुक़सान में नहीं रहेंगे। मुमकिन है लोग यह कहें कि इतना बड़ा परिवर्तन ज़िन्दगी और मौत में लगे हुये इस युद्ध के समाप्त हुये बग़ैर न हो सकेगा और बीच धार में नाव बदलना मूर्खता है। किन्तु जब हम देख रहे हैं कि नाव हमें उस पार नहीं पहुँचा सकती; क्योंकि उसके पेंदे में एक बड़ा सा छेद हो गया है इस स्थिति में भी दूसरी नाव न बदलना बड़ी भारी हिमाक़त है। ज़रा कल्पना तो कीजिये कि यदि सारे यूरोप में समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार व्यवस्था की घोषणा करके फिर जर्मनी के मज़दूरों से हिटलरी व्यवस्था को तोड़ फेंकने की अपील की जाय, तो सारे यूरोप के मज़दूरों के दिलों में किस तरह उत्साह की बिजली दौड़ जायेगी! क्या हिटलर ने स्वयं एक बार नहीं कहा था कि यदि ब्रिटेन भारत को स्वराज्य दे दे, तो वह ब्रिटेन के क़दमों पर सिर रख देगा। क्या हिटलर की इस घोषणा का ब्रिटिश सरकार ने अब तक कोई जवाब दिया है? हिटलर के इस वक्तव्य के साथ अंग्रेज़ों के सारे बयान और उनकी लफ़्फ़ाज़ी, चेम्बरलेन, अमेरी, और चर्चिल की सारी घोषणायें फीकी पड़ गईं। यदि ब्रिटिश सरकार समाजवादी व्यवस्था की घोषणा करते हुये भारत को स्वतंत्र होने का अधिकार दे देती, जिस तरह कि उसने अपने दूसरे उपनिवेशों को दिया है; यदि दक्षिणी अफ्रीका में एक सच्चा जनतंत्र क़ायम हो जाता, जिसमें वहाँ के ४०–५० लाख बाण्टुओं को भी यूरोपियनों के मुक़ाबले में बराबरी का दर्जा मिल जाता, तो दुनिया के दृष्टिकोण में कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता? क्या हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि ऐसा होने पर इस महायुद्ध में मानव शक्ति की बरबादी और यह हत्याकाण्ड रुक जाता। शासन की नीति से यदि शोषण प्रणाली अलग कर दी जाय, तब क्या सारा संसार एक ही कुटुम्ब की तरह न हो जाय? असली ज़रूरत इस बात की है कि हमारे दिल और हमारे सोचने के तरीक़े बदलें।

किन्तु क्या साम्राज्यवादी जनतंत्र इस परिवर्तन के लिये तैयार हैं?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दू ला और हमारी सांस्कृतिक प्रगति

सर सीताराम एस. पाटकर, रिटायर्ड जज, हाईकोर्ट, बम्बई

अदालतों में हिन्दुओं के लिये सामाजिक मामलों और जायदाद के सम्बन्ध में जो क़ानून व्यवहार में आता है उसके आधार हैं (१) श्रुति, (२) स्मृति, (३) टीका और व्यवस्था तथा (४) रीतिरिवाज। हिन्दू ला का मुख्य स्रोत है 'स्मृति' अर्थात् धर्मशास्त्र और टीकाएं। इनके अतिरिक्त नज़ीर के तौर पर अदालत के पिछले फ़ैसले, और हाल के क़ानूनी सुधारों को भी काम में लाया जाता है। ब्रिटिश भारतीय शासन के शुरू में न्यायाधीश हिन्दू और मुसलमान ला अफ़सरों से इस बात की पूछताछ करते थे कि वे विविध मुक़दमों में अपने-अपने धर्म व मज़हब की व्यवस्था अथवा शरीयत बतायें। ये अफ़सर अदालतों को विविध मुक़दमों में अपनी सलाह देते रहते थे, किन्तु इस तरीक़े से काम नहीं चला और आगे चलकर यह तरीक़ा छोड़ दिया गया।* न्यायाधीशों को अपने फ़ैसलों के लिये स्मृतियों के अनुवाद पर निर्भर होना पड़ता था। बहुत सी अनेक स्मृतियों में बाद में इधर-उधर की चीज़ें जोड़ दी गई हैं। अनुवाद भी बाज़ दफ़ा ग़लत होते थे। वे मौलिक व्यवस्थाओं के साथ मेल नहीं रखते थे। बहुत से न्यायाधीश संस्कृत भाषा नहीं जानते थे और मूल स्मृतियां संस्कृत में ही लिखी गई हैं।

हिन्दू ला को ठीक ठीक समझने में अनेक दिक्क़तें थीं। हाईकोर्ट के फ़ैसले या तो, हाईकोर्ट की फुल बेंच उलट सकती है या प्रीवि कौंसिल। बम्बई हाईकोर्ट में पहले यह प्रथा थी कि हिन्दू ला के मुक़दमों में हाईकोर्ट की ही अन्तिम राय होती थी; किन्तु प्रीवि कौन्सिल ने बाद में बम्बई हाईकोर्ट की इस प्रथा को रद्द क़रार दिया और यह फ़ैसला किया कि प्रीवि कौन्सिल का फ़ैसला ही इस सम्बन्ध में उस समय तक अन्तिम फ़ैसला होगा, जब तक कि व्यवस्थापिका सभा उन क़ानूनों में कोई परिवर्तन न करे।

अंग्रेज़ी सत्ता के प्रारम्भ होने से पहले स्मृतियों के व्यवस्थाकार हर क्षण बदलते हुये ज़माने को ध्यान में रखकर अपनी व्यवस्था देते थे। इस तरह हिन्दू ला की व्यवस्था में समय समय पर परिवर्तन होते रहते थे। ये परिवर्तन मूल स्मृति को ध्यान में रखते हुये किन्तु समाज के बदले हुये रूप को देखकर ही किये जाते थे। किन्तु अब ब्रिटिश न्यायालयों के फ़ैसलों को ही अन्तिम नज़ीर मान लिया जाता है। इसी कारण हिन्दू ला की प्रगति रुक गई है। हिन्दू स्मृतियों का निर्माण समाज की उस व्यवस्था को

* See Regulation (1) of 1827, section 27 repealed by Bombay Act IV of 1869.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देखकर हुआ, जो व्यवस्था आज से बिलकुल भिन्न थी। इसीलिये स्मृतियों की मौलिक व्यवस्था हमारी आज की सामाजिक प्रगति के साथ खपती नहीं।

पुराने ज़माने में हिन्दू समाज में सम्मिलित कुटुम्ब ही समाज की इकाई थे। व्यक्ति की उस समाज में स्वतन्त्र सत्ता नहीं थी। परिवार में 'कर्त्ता' ही पूरे परिवार का एकछत्र स्वामी होता था। सर हेनरी मेन ने लिखा है कि समाज का यह संगठन हिन्दू और रोमन ला में एक-सा था और चल तथा अचल जायदाद, बीवी, बच्चे, दास, दासी, खेती-बाड़ी और दूसरी चीज़ों पर कुटुम्ब के पुरुष अधिपति का, चाहे वह पिता हो, दादा या पड़ बाबा हो, सम्पूर्ण अधिकार होता था। जो बच्चे गोद लिये जाते थे, वे भी उस परिवार के अंग हो जाते थे और उन्हें अपने असली माँ-बाप के साथ सारा सम्बन्ध त्यागना पड़ता था। क़ानूनन वे अपने परिवार के लिये मृतक के समान थे।

किन्तु हिन्दू सम्मिलित परिवारों की अब वह स्थिति नहीं रही। बँटवारे आदि के कारण अब प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों पर ज़ोर देने लगा है। समाज की इकाई अब सम्मिलित परिवार न रहकर व्यक्ति हो गया है। हिन्दुओं की सम्मिलित परिवार की प्रथा समाजवाद के सिद्धान्त पर क़ायम थी। समाज का कोई व्यक्ति अपनी मेहनत से पैसा पैदा करता था और परिवार के सब लोगों का उस पर बराबरी का हिस्सा होता था। सम्मिलित परिवार में पैदा होते ही बालक सम्मिलित परिवार की पूंजी का अधिकारी समझा जाता, था, चाहे बाद में वह अपनी मेहनत से परिवार की दौलत में एक पैसे की भी वृद्धि न करे। परिवार का कोई व्यक्ति यदि परिवार के धन से पढ़-लिख कर कमाऊ बनता था, तो उसकी कमाई पर भी परिवार का पूरा अधिकार होता था। इस प्रथा का परिणाम यह हुआ कि परिवार के अनेक सदस्य अहदी बन गये और परिवार के कार्यशील व्यक्तियों ने भी सिर खपाकर धन कमाना छोड़ दिया। इस प्रथा में सन् १९३० की धारा ३० (The Hindu Gains of Learning Act) के अनुसार सुधार किये गये। यह सही है कि सम्मिलित परिवार से समाज की बेहद वृद्धि हुई। बीमार पैसे के अभाव से मौत का मुंह नहीं देखते थे। लड़के लड़कियों की शादी आसानी से हो जाती थी। किन्तु फिर भी ऐसे सम्मिलित परिवारों का एक तरह से अन्त ही हो गया और जो बचे हैं, वे भी बड़ी तेज़ी के साथ नष्ट होते जा रहे हैं। हिन्दू सम्मिलित परिवारों को लेकर क़ानून में जो पेचीदगियाँ हैं, उससे समाज के सामने बहुत बड़ी दिक्क़तें पैदा हो गई हैं। सम्मिलित परिवारों के ही कारण बैंक हिन्दुओं को रोज़गार के के लिये क़र्ज़ा नहीं देता, क्योंकि बाद में परिवार का कोई भी सदस्य उस क़र्ज़ की ज़िम्मेवारी से इन्कार कर सकता है। यदि हिन्दू परिवारों का प्रत्येक सदस्य स्वतंत्र होता, तो अपने हिस्से की जायदाद की अमानत पर व्यापार के लिये क़र्ज़ ले सकता था। क़ानून में ज़रूरी सुधार करके यह सुविधा पैदा की जा सकती है।

हिन्दू ला का दूसरा मौलिक आधार है उसका आध्यात्मिक अंग। हिन्दू ला दीवानी और धार्मिक दोनों क़ानूनों को साथ लेकर चल रहा था। हिन्दू ला के अनुसार क़ानून धर्म का अंग था। आजकल पिण्डदान और श्राद्ध के ऊपर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। अनेक पढ़े लिखे लोग इसलिये श्राद्ध नहीं करते कि उनके मृतक रिश्तेदार को स्वर्ग प्राप्त होगा, बल्कि दिखावे के लिये करते हैं। वे मृतक आत्मा की अपेक्षा जीवित आत्मा की शिक्षा और उनकी दवाई आदि के प्रबन्ध में अधिक विश्वास रखते हैं।

मूल स्मृतियों की व्यवस्था के अनुसार स्त्री जायदाद की स्वामिनी नहीं हो सकती थी। वैदिक मंत्रों के आधार पर बौद्धायन ने कहा है कि स्त्री 'निरिन्द्रिय" होने के कारण जायदाद में किसी तरह का हिस्सा पाने के अयोग्य है। किन्तु माधव की राय है कि जिन वैदिक मंत्रों में स्त्रियों को सोमरस का अधिकारी नहीं माना गया है, उन मंत्रों का जायदाद के सम्बन्ध में व्यवहार नहीं होना चाहिये। विद्यारण्य ने भी इन्द्रिय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का अर्थ 'सोमरस' किया है। इस सम्बन्ध में बम्बई हाईकोर्ट में एक फ़ैसला, जो लल्लू भाई बनाम मान कुँवर बाई के बीच में हुआ है, ग़ौर करने लायक है।

स्त्रियों के सम्बन्ध में अनेक अच्छी बातों को स्वीकार करते हुये मनु ने लिखा है कि वे स्वतंत्रता के योग्य नहीं हैं। बचपन में पिता उनकी रक्षा करता है, यौवन में भर्ता उनकी रक्षा करता है और बुढ़ापे में पुत्र उनकी रक्षा करता है। किन्तु यह श्लोक जायदाद के उत्तराधिकार ये सम्बन्ध में लागू नहीं होता; उस ज़माने में परिवार सम्मिलित होते थे, इसलिये स्त्रियों के उत्तराधिकार की बात ही नहीं उठती थी। फिर उपरोक्त वैदिक मंत्रों के अलावा और बहुत से मंत्र ऐसे हैं, जिनके अनुसार पत्नी, माता और प्रमाता का हिस्सा जायदाद में बँधा हुआ है।

आजकल स्त्रियों की शिक्षा बड़े वेग से बढ़ रही है। राजनैतिक आन्दोलन में स्त्रियों ने बेहद दिलचस्पी दिखाई है। स्त्रियों की सभाओं ने सामाजिक क़ानूनों की बहसों में ख़ास हिस्सा लिया है। बम्बई की धारा सभा में देसाई के 'गोद लेने वाले बिल' का स्त्रियों ने इतना ज़बरदस्त विरोध किया कि उसे छोड़ना पड़ा। स्त्रियों को अब वोट देने का भी अधिकार मिल गया है। प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं में स्त्रियां सदस्य भी चुनी गई हैं। बम्बई के कांग्रेसी मंत्रिमंडल में एक स्त्री पार्लिमेण्टरी सेक्रेटरी थी और युक्त प्रान्त में एक स्त्री मिनिस्टर थी। यदि स्त्रियां आजकल विश्वास और ज़िम्मेवारी की जगहों को योग्यता पूर्वक निभा रही हैं, तो मनु के उन श्लोकों का कोई मूल्य नहीं कि जिनके अनुसार स्त्री निकम्मी है और वह किसी तरह की जायदाद को नहीं संभाल सकती। हिन्दू समाज की प्रगति में ज़बरदस्त परिवर्तन हुआ है। पुरानी स्मृतियाँ, जिनके आधार पर हिन्दू क़ानून बनाये गये हैं, आजकल के लिये उपयुक्त नहीं हैं। पढ़ी-लिखी जनता अब प्राचीन स्मृतियों पर निर्भर होना पसन्द नहीं करती। वह न्याय, सच्चाई, तर्क और बराबरी को अपना आधार बना रही है।

हिन्दू समाज में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। विधवा विवाह का एक समय हिन्दू शास्त्रों ने समर्थन किया और विधवा से उत्पन्न होने वाले पुत्र को शास्त्रों ने जायज़ माना। किन्तु समय पाकर विधवा विवाह की प्रथा मिट गई। धीरे-धीरे फिर विधवा विवाह जायज़ माना जाने लगा और सन् १८५६ ई० में विधवा-पुनर्विवाह का क़ानून (Widow Re-Marriage Act.) बनाना पड़ा। इस क़ानून के मुताबिक विधवा-विवाह और उस विवाह से उत्पन्न होने वाली सन्तानें जायज़ समझी जाने लगीं। पिछली सदी के अन्त में जनसाधारण की राय फिर विधवा विवाह के विरुद्ध होने लगी। किन्तु अब इस समय विधवा विवाह का उतना विरोध नहीं है। यह सही है इसका उतना समर्थन भी नहीं है ताहम लोग विधवा विवाह को अब बर्दाश्त कर लेते हैं।

दूसरे जिस विषय को लेकर हिन्दू समाज की राय बदल रही है वह है जाति पाँति का प्रश्न। बहुत प्रारम्भिक काल में भारत में जाति पांति का भेद नहीं था। डाक्टर भंडारकर की राय के अनुसार, जब आर्य हजरत ईसा से चार हज़ार वर्ष पूर्व भारत में आये, उस समय उनके अन्दर ३ विभाग थे—ब्राह्मण राजन्य और विस। किन्तु तीनों मिलकर एक ही जाति के अंग थे। यहां के जो लोग आर्यों के प्रभाव में आये, वह दासों की चौथी श्रेणी में हो गये। समय बीतने पर इन चारों वर्णों में अनेक उप वर्ण हो गये और इस समय सारे भारत में लगभग चार हज़ार जातियां हैं। भगवद्गीता के अनुसार गुण कर्म के अनुसार चारों जातियों का सृजन हुआ था (४·१३, १८·४१ से ४४)। याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में व्यवस्था (आचार अध्याय ५६, ६३) में अन्तर्जातीय विवाह की चर्चा करते हैं और इतर जाति की लड़कियों के साथ विवाह हो सकता है, इसकी विवेचना करते हैं। याज्ञवल्क्य अपने व्यवहार अध्याय (श्लोक १२५) में इस तरह के अन्तर्जातीय विवाह से उत्पन्न सन्तानों के उत्तराधिकार के नियम बताते हैं। इसके सम्बन्ध

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में मिताक्षर अध्याय १, सेक्शन ८, और अध्याय १ सेक्शन ११—४१-४२ और मनुस्मृति अध्याय ९, श्लोक १६४ को इसके समर्थन में पेश किया जा सकता है। याज्ञवल्क्य ने अनुलोम विवाह पद्धति या उच्च जाति के पुरुष का अपने से नीचे की जाति की स्त्री के साथ विवाह का समर्थन किया है। उन से उत्पन्न सन्तान को जायज़ माना गया है, किन्तु उत्तराधिकार में उन्हें पिता की सम्पत्ति से क्रमशः वर्ण के अनुसार सम्पत्ति का $\frac{३}{४}$, $\frac{२}{४}$ और $\frac{१}{४}$ भाग मिलता है। लेकिन याज्ञवल्क्य शूद्र स्त्री के साथ विवाह को अधर्म बताते हैं। अन्य तीनों जातियों के अन्तर्जातीय विवाह में उन्हें कोई विरोध नहीं। मिताक्षर की याज्ञवल्क्य स्मृति टीका के व्यवहार अध्याय के श्लोक १२५ में बृहस्पति की टीका का उल्लेख है, जिसके अनुसार द्विज पुरुष द्वारा शूद्र स्त्री की सन्तान को ज़मीन में हिस्सा नहीं मिलता। पर इसका यह भी अर्थ होता है कि उसे जङ्गम सम्पत्ति में हिस्सा मिल सकता है। मिताक्षर के अनुसार यदि इस तरह की सन्तान को पिता अपनी जीवित अवस्था में कोई ख़ास हिस्सा नहीं देता, तो उसे उत्तराधिकार में पैतृक सम्पत्ति का $\frac{१}{१०}$ हिस्सा मिलेगा।

मिताक्षर के अनुसार यदि शूद्र स्त्रियों का पुत्र जायज़ (औरस) भी है, तो भी उसे सम्पत्ति में उस सूरत में भी $\frac{१}{१०}$ हिस्सा मिलेगा जब कि कोई अन्य सन्तान मौजूद न हो। बृहस्पति भी मिताक्षर की टीका का समर्थन करता है। उसी टीका को ध्यान में रखते हुये बम्बई हाईकोर्ट में गुलाब बाई बनाम जीवन लाल (इंडियन ला रिपोर्टर) के मुक़दमे का यह फ़ैसला है कि उच्च जाति के पुरुष और नीच जाति की स्त्री का अनुलोम विवाह जायज़ है; चूंकि स्मृतियाँ अनुलोम विवाह पद्धति को जायज़ समझती हैं; इसलिये उनकी सन्तानें भी जायज़ ही होनी चाहियें। बम्बई हाईकोर्ट ने नाथ बनाम मेहता छोटे लाल (I. L. R. 55) के मुक़दमे में फैसला दिया था कि ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न सन्तान अपने पिता के जीवन में ही सम्पत्ति के $\frac{१}{१०}$ हिस्से की अधिकारी है। इस फ़ैसले पर अब तक प्रिवि कौंसिल की मुहर नहीं लगी है। प्रिवि कौन्सिल ने अपने एक पिछले फ़ैसले (L R. 63. I. A. 295) में जातियों और उपजातियों के बीच के विवाहों की सन्तानों को जायज़ माना है। किन्तु उसने अब तक अनुलोम विवाह के औचित्य पर अपना कोई फ़ैसला नहीं दिया है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति तीसरी सदी ईसा पूर्व और दूसरी सदी ईस्वी के बीच में रची गई हैं। मिताक्षर १०५० और ११२० ई० के बीच में लिखी गई है और 'मयूख' १७ वीं सदी ईस्वी के शुरू में लिखी गई है। श्री मांडलिक 'निर्णय सिन्धु' के आधार पर कहते हैं कि कलियुग में अपनी जाति से भिन्न जाति के साथ विवाह की मनाही की गई है। 'निर्णय सिन्धु' १६१२ ई० में लिखी गई है। इससे स्पष्ट है कि पिछली कुछ सदियों में ब्राह्मणों के प्रभुत्व में आकर इस तरह के विवाह समाज में नाजायज़ क़रार दिये गये।

पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण हिन्दू समाज में अनेक क्रान्तिकारी भावनाएं पैदा हुई हैं। परिणाम स्वरूप लोगों के सामाजिक विचार और तर्ज़ तरीक़े बदल गये हैं। इस परिवर्तन को ध्यान में रखकर सन् १८७२ ई० में 'स्पेशल मैरिज ऐक्ट' बनाना पड़ा, जिसके अनुसार अन्तर्जातीय अन्तर साम्प्रदायिक विवाह जायज़ क़रार दिये गये। किन्तु सन् १८७२ के क़ानून के अनुसार इस तरह के ब्याह करने वालों को अपने-अपने धर्म को तिलांजलि देनी पड़ती थी। यह असुविधा सन् १९२३ ई० के 'गौड़ मैरिज ऐक्ट' के अनुसार दूर कर दी गई। गौड़ ऐक्ट के अनुसार हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख और जैनों को यह कहना पड़ता है कि वे इन चारों में से किसी भी एक धर्म को मानते हैं। इस समय जनता के अन्दर यह भावना पैदा होती जा रही है कि यदि भारतीय राष्ट्र के आदर्श को प्राप्त करना है, तो जाति पांति को तिलांजलि देनी होगी। राष्ट्रीय लहरों में साम्प्रदायिकता और जातीय भेद भाव शीघ्र ही बह जायेंगे। सेनार्ट ने अपने एक निबन्ध में लिखा है कि पश्चिम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में राजनैतिक और राष्ट्रीय भावना की जाग्रति के कारण वहां के नक़ली सामाजिक बन्धन टूट गये। भारत में राष्ट्रीय भावना के अभाव के कारण ही इस तरह की बुराइयाँ प्रचलित हैं।

अस्पृश्यता भारतीय सभ्यता के ऊपर एक ज़बरदस्त कलंक है। महज़ मन्दिर-प्रवेश से ही हरिजनों का उद्धार नहीं हो सकता। इसके लिये हिन्दू समाज के सामने क्रान्ति की ज़रूरत है। हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश का अधिकार देने के अतिरिक्त उनमें शिक्षा का प्रचार करना होगा। हमें लोगों के दृष्टिकोण को ही बदलना होगा, ताकि वह किसी तरह के और किसी क़िस्म के भी सामाजिक भेदभाव न स्वीकार करें। यह काम आसानी से नहीं हो सकता। इसके लिये ज़बरदस्त जन-आन्दोलन, सरकारी दख़ल और क़ानून में नये नये सुधार करने की ज़रूरत होगी।

यदि स्त्रियों और हरिजनों को क़ानूनी सुविधाएँ देकर उनके पथ की बाधाएं दूर कर दी जांय, तो भी समाज की बहुत कुछ बुराइयां दूर हो सकती हैं। बहुत सी सामाजिक बुराइयाँ आन्दोलन और शिक्षा के प्रचार से मिटाई जा सकती हैं। सरकारी क़ानून से भी बहुत सी बुराई दूर की जा सकती हैं; किन्तु यदि जनता सरकारी क़ानूनों का समर्थन न करे, तो क़ानून भी निकम्मे साबित हो सकते हैं। मानव संस्थाओं का अस्तित्व और सुधार जनता की अपनी इच्छा पर ही निर्भर करता है। मौजूदा सामाजिक संस्थाओं में जो भी अच्छाइयां हैं, उन्हें हमें क़ायम रखना चाहिए और भारतीय संस्कृति को जो बुराइयां खोखला कर रही हैं, उन बुराइयों को दूर करना चाहिए। इस सम्बन्ध में हमें श्री महादेव गोविन्द रानाडे के उस कथन को याद रखना चाहिए, जिसमें उन्होंने कहा था कि बन्धनों को स्वतन्त्रता, अविश्वास को विश्वास, अधिकार को बुद्धि, असंगठन को संगठन असहिष्णुता को सहिष्णुता और अंध-विश्वास को ज्ञान से दूर करना चाहिये।

संत कवि रविदास के प्रति

श्री 'निराला'

ज्ञान के आकर मुनीश्वर थे, परम
धर्म के ध्वज, हुए उनमें अन्यतम,

पूज्य अग्रज भक्त कवियों के, प्रखर
कल्पना की किरण नीरज पर सुघर

पड़ी ज्यों, अँगड़ाइयाँ लेकर खड़ी
हो गई कविता, कि आई शुभ घड़ी

जाति की, देखा सभी ने मीचकर
दृग तुम्हें श्रद्धा-सलिल से सींचकर।

रानियां अवरोध की घेरी हुईं
वाणियां ज्यों बनीं जब चेरी हुईं।

छुआ पारस भी नहीं तुमने, रहे
कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे

ज्ञान-गङ्गा में, समुज्ज्वल चर्मकार,
चरण छूकर कर रहा मैं नमस्कार।*

* महान सन्त-कवि के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संहार या संस्कार

श्री 'धूमकेतु'
[मूल गुजराती से अनु० श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार]

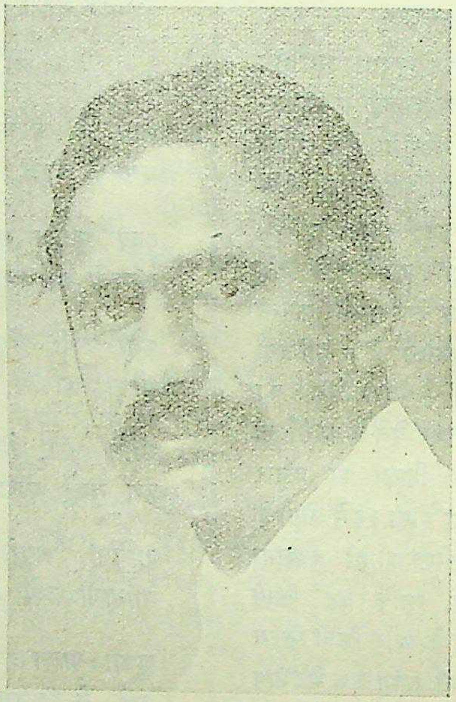

अहिंसा प्रत्येक धर्म का प्राण-परिमल है, और हिन्दू संस्कृति का तो यह अमूल्य पुष्प है। अहिंसा-विहीन हिन्दू संस्कृति की तो कल्पना भी अशक्य है। आज जब समस्त संसार स्वयं उपजाये हुये विविध प्रश्नों के हल के लिये हिंसा के मार्ग पर अग्रसर होरहा है, उस समय हिन्दू संस्कृति के पास एक ही संदेश है, और वह है—अहिंसा।

परन्तु केवल अहिंसा का संदेश देने से ही अहिंसा के मार्ग की प्रतीति नहीं कराई जा सकती। हिन्दू संस्कृति ने यदि यही अंतिम संदेश देने का निर्णय किया हो, तो इस संदेश को अपने रोम रोम में से प्रकट करने वाले शुद्ध अहिंसक सैनिक भी आवश्यक हैं। परन्तु ऐसे शुद्ध अहिंसक सैनिक किसी जादूगर की लकड़ी से उत्पन्न नहीं किये जा सकते। चौमासे में बोकर चौमासे में ही प्राप्त होने लायक भिण्डी और तुरई के शाक की तरह वे उत्पन्न नहीं किये जा सकते। यह कोई ऐसा सरल सा सूत्र भी नहीं है, जिसको राजनीति के खेल के लिये तोते की तरह उच्चारित किया जाय। हिन्दू संस्कृति के अहिंसा के संदेश को हृदय में पचाने वाले सैनिक—देश-देशान्तर में भ्रमण करने वाले धर्म पुरुष—आज उसके पास नहीं हैं। अतः समाचार पत्रों के शीर्षकों की तरह बोले हुये अहिंसा के संदेश की आज कुछ भी क़ीमत नहीं है। दुनिया का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस वस्तु को पौरुषहीन पुरुषों का वाग् विलास समझता है। अहिंसक सैन्य तो वर्षों की संस्कार-साधना के पश्चात् प्राप्त होने वाली परिस्थिति है।

ऐसे अहिंसक बल को उपजाने के लिये तो एक नवीन ही प्रकार का नियंत्रण, एक नई ही प्रणाली की, एक नये ही वातावरण और नये ही प्रकार के संस्कारों की आवश्यकता है। शंकराचार्य जी ने जिस प्रकार अपना तत्त्वज्ञान उत्पन्न किया, उसी प्रकार की तीव्र लगन और धुन से, इस एक वस्तु के लिये ही जीवन समर्पण करने वाले, अत्यन्त विशुद्ध चरित्र-बल वाले किसी भव्य पुरुष की आवश्यकता है। इसी कारण तो आज यह बात अशक्य है।

सामान्य नित्य के जीवन-क्रम में जिस वस्तु को सिद्ध करने के लिये अत्यन्त भव्य वातावरण की आवश्यकता होती है, उसी वस्तु को हिंसा द्वारा सिद्ध करने के लिये थोड़े से ही नियमों की आवश्यकता है। वह नियम इतना ही है कि नित्य के जीवन-क्रम में आततायी को या तो अहिंसा द्वारा सुसंस्कृत करना, अथवा हिंसा द्वारा उसका संहार करना। इसी मानव-धर्म को गीता ने बताया है। गीता का यह मानव धर्म इस हिंसा-अहिंसा के प्रति अन्तिम शब्द है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसमें सुधार करने का अधिकार तो उसी मनुष्य को प्राप्त होता है, जो असंख्य हिंसक बलों के सामने निःशस्त्र होकर अकेला खड़ा हो जाय और इस कसौटी में उत्तीर्ण होकर, अपने सत्य अनुभव का उच्चारण करता हो। और इतना होने पर भी, उस पुरुष को, इस वस्तु के अधिकार या अनाधिकार के विषय में सूक्ष्म विवेक के बिना, तथा लोक संग्रह की दृष्टि को सामने रक्खे बिना, नगारे की तरह "अहिंसा-अहिंसा" का डिण्डिम बजाने का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता। क्योंकि इस प्रकार तो यह उच्चारण, सामाजिक दृष्टि पर ध्यान रखकर प्राप्त किये हुये सत्य के उच्चारण के बदले, व्यक्तिगत रङ्ग से रंगा हुआ एकपक्षीय वाक्य बन जाता है। इस प्रकार की व्यर्थ कल्पना—चाहे वह कितनी भी सुन्दर क्यों न हो—एक निष्प्राण वस्तु ही है। इसी कारण नित्य जीवन में तो अहिंसा का अर्थ इतना ही है—"यदि आर्य सुजनता को दैन्य समझ लिया जाय, तब तो युद्ध ही युगधर्म है।"

गीता में आततायी को मारने का स्पष्ट उपदेश है। तथा आततायी को संस्कारवान् बनाने का मानव-धर्म खोजने के लिये प्रत्येक धर्म आज्ञा देता है। इस विवेक की रेखा को अक्षुण्ण रखते हुये हिंसा-अहिंसा का समन्वय और साधना ही तत्त्व वस्तु है। जिस अहिंसा की योगीजन आकांक्षा करते हैं, वह "ले पूनमचन्द, मुझे दो पैसे की अहिंसा की पुड़िया तोल दे"—इस प्रकार प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है।

बाकी तो मानसिक, वाचिक और कायिक अहिंसा की बातें बघारने वाले हम लोग, जब तक अहिंसा का बाज़ार तेज़ हो, तभी तक ऐसी बातें बनाने वाले और काठियावाड़ी राजनीतिज्ञों को लजाने वाले नीतिज्ञ बन जाते हैं। इसकी अपेक्षा तो यह कहीं अच्छा है कि हम लोग जीवन के नित्य के प्रश्नों को हल करने के लिये, सामने आततायी न आये तब तक अहिंसक और आततायी आ पड़े तब हिंसक बन जाने का शुद्ध मानवधर्म स्वीकार कर लें। क्या इस मनोवृत्ति में अधिक स्पष्टता और सचाई नहीं है?

हमारे सहयोगी

विश्वभारती पत्रिका—(विश्वभारती, शान्तिनिकेतन की हिन्दी त्रैमासिक मुख पत्रिका), सम्पादक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वार्षिक मूल्य ६) रुपया, विश्वभारती के सदस्यों से केवल ४) रु०।

मिलने का पता—मैनेजर 'विश्वभारती पत्रिका', हिन्दी भवन, शान्तिनिकेतन, बङ्गाल।

पत्रिका का पहला अङ्क हमारे हाथ में है। "शान्तिनिकेतन में हिन्दी भवन की स्थापना के अवसर पर स्वर्गीय गुरुदेव ने यह इच्छा प्रकट की थी कि विश्वभारती से एक ऐसी हिन्दी पत्रिका प्रकाशित हो, जिसके द्वारा भारतवर्ष की साहित्यिक और सांस्कृतिक साधना का जो कुछ सर्वोत्तम है, उसका नियमित रूप से प्रचार और उन्नयन होता रहे। भारतवर्ष की वर्त्तमान अवस्था का विश्लेषण करके उन्होंने दिखाया था कि देश आज जिस प्रकार नाना भांति की संकीर्णताओं का शिकार बनता जा रहा है, उससे रक्षा पाने का सर्वोत्तम साधन साहित्य ही है।" जो इच्छा गुरुदेव के जीवन में पूर्ण न हो सकी, वह उनके निधन के बाद उनके महान उत्तराधिकारियों ने पूरी कर दिखाई। गुरुदेव की स्वर्गस्थ आत्मा को इससे सुन्दर और पवित्र श्रद्धाञ्जलि विश्वभारती वाले न दे सकते थे।

पत्रिका के सम्पादक बन्धुवर हजारी प्रसाद जी हिन्दी साहित्य के धुरन्धर विद्वान हैं। उनसे बढ़कर साहित्य समीक्षक और आलोचक हिन्दी में तो हमें कोई दूसरा दिखाई नहीं देता। उनका सम्पादन पत्रिका की सफलता की गारण्टी है। ११ वर्ष तक गुरुदेव की छत्रच्छाया में रहकर उन्होंने जो अगाध ज्ञानराशि एकत्रित की है, वह 'विश्वभारती पत्रिका' के पाठक सहज ही पा सकेंगे। गांधी जी पत्रिका को अपना आशीर्वाद देते हुए कहते हैं—"विश्वभारती से त्रैमासिक पत्रिका निकालने की योजना मुझे तो बहुत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही प्रिय लगती है। इस साहस में मेरी सम्पूर्ण सम्मति है।"

प्रस्तुत अङ्क में स्वर्गीय गुरुदेव की सात रचनाएं हैं, जिनमें दो रचनाएं ऐसी हैं, जो शायद अब तक हिन्दी में प्रकाशित नहीं हुईं। 'एशिया की जागृति में ही यूरोप का परित्राण है' नामक गुरुदेव का निबन्ध तो हर एक को पढ़ना चाहिये। उक्त लेख में गुरुदेव ने एक जगह लिखा है—"एशिया के नाना देशों में यह बात चल रही है कि साम्प्रदायिक धर्म मनुष्य के समस्त क्षेत्रों को ढँककर बैठ जाय, तो काम नहीं चल सकता। फ़िलस्तीन में शासन विभाग के एक ऊँचे ओहदे के अंग्रेज़ कर्मचारी की विदाई की सभा का आयोजन हुआ था। उस सभा में उक्त अंग्रेज़ कर्मचारी ने कहा कि—"फ़िलस्तीन मुसलमान देश है और इसकी सरकार भी मुसलमानों के हाथ में होनी चाहिये बशर्ते कि अल्पमत वाले यहूदियों और ईसाइयों का भी प्रतिनिधित्व उसमें रहे।" इस पर जेरुसलेम के मुफ़्ती हाजी आमिन-अल-हुसेनी ने उत्तर दिया—"हमारे लिये यह मुसलमान ग़ैर मुसलमान का प्रश्न नहीं है, बल्कि विशुद्ध अरब जाति का प्रश्न है। अपने अवस्थान काल में आपने निस्सन्देह देखा होगा कि इस देश में मुसलमान-अरब और ईसाई-अरब में कोई भेद नहीं है। हम ईसाइयों को अरब ही मानते हैं, अल्पमत जाति नहीं।" काश भारत के हिन्दू मुसलमान इस शिक्षा से लाभ उठाते! गुरुदेव की दूसरी रचना 'आधुनिक काव्य' हिन्दी के प्रत्येक कवि और कलाकार को पढ़ना चाहिये। अन्य लेखों में श्री नन्दलाल वसु का 'शिल्पी रवीन्द्रनाथ,' आचार्य क्षितिमोहन सेन का 'भारतीय संस्कृति के अध्ययन की एक उपेक्षित दिशा' अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी के लेख 'ख आदि शून्यवाची शब्द एवं आकाश के साथ उनका दार्शनिक सम्बन्ध' को अनुवादक महोदय टिप्पणियां देकर साधारण पाठकों के लिये और अधिक सरल बना सकते थे। इस तरह के लेखों की हिन्दी साहित्य में इसीलिये उपेक्षा होती है कि वे साधारण पाठकों की पहुँच के परे होते हैं। फिर भी अनुवादक ने अनुवाद को बेहद सरल बनाने की कोशिश की है। 'पुरानी पोथियों की विदेश यात्रा' अपनी तरह का अत्यन्त सुन्दर लेख है। अन्त में पंडित हजारी प्रसाद जी ने अपने प्रिय विषय 'रस' पर 'काव्य रस की परम्परा' शीर्षक से एक महत्वपूर्ण लेख लिखा है। हमें पूरा विश्वास है कि 'विश्वभारती पत्रिका' में अच्छी से अच्छी सामग्री पाठकों को मिलेगी। अभी तो यह पहला ही अङ्क है।

एण्टीक काग़ज़ पर साफ़ और सुन्दर छपी हुई यह सुरुचिपूर्ण पत्रिका बरबस ही पाठक का ध्यान आकर्षित कर लेती है। प्रत्येक हिन्दी पढ़ने वाले को इस पत्रिका का ग्राहक अवश्य बनना चाहिये। हम 'विश्वभारती पत्रिका' के महान, ऐश्वर्यपूर्ण, और सफल जीवन की कामना करते हैं।

आरती—दूसरे वर्ष का पहला अङ्क, नववर्षाङ्क, सम्पादक श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा 'मुक्त', प्रकाशक 'आरती मन्दिर', पटना। वार्षिक मूल्य ५) रु०, इस अङ्क का ।।।)

भाई प्रफुल्ल चन्द्र जिन अपार संकटों का सामना करते हुये बिहार के साहित्यिक प्राङ्गण में साहित्य की जो आरती कर रहे हैं, वह उन्हीं का साहस है। साहित्य की इस आरती को प्रज्वलित रखने में उन्हें अपने हृदय का रक्त देना पड़ रहा है। जिस उद्योग और परिश्रम से वे भारती के भण्डार में शिष्ट साहित्य का कोष बढ़ा रहे हैं यह निश्चित है कि उसकी अवहेलना अधिक दिनों तक नहीं हो सकती। हमें यह देखकर सन्तोष हो रहा है कि बिहार के अनेक गण्य मान्य लक्ष्मी पतियों की 'आरती' पर कृपा दृष्टि हुई है। देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद 'आरती' के महान संरक्षक बने हैं। परमात्मा करे 'आरती' बिहार के घर घर में प्रकाश फैलाये।

'आरती' का प्रस्तुत अङ्क अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। बाबू राजेन्द्र प्रसाद का 'युग और धर्म' नामक लेख बहुत सुन्दर है। भारतीय परिस्थिति और अहिंसा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर इस लेख से काफ़ी प्रकाश पड़ता है। श्री प्रभाकर माचवे कृत 'ललित कलाओं में माध्यम समस्या', श्री सुधांशु कृत 'कला गीत की प्रवृत्ति' उच्चकोटि के लेख हैं। राजा राधिकारमणसिंह की कहानी 'होटल और तीर्थ' सुन्दर है। श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री 'दिनकर' और 'केसरी' की कवितायें भी अनूठी हैं।

हम 'आरती' के भव्य जीवन की कामना करते हैं।

जीवन-सखा—(व्यायाम अङ्क) सम्पादक श्री बालेश्वर प्रसाद सिंह, ८७ हिम्मत गंज, इलाहाबाद। वार्षिक मूल्य ३)

प्रस्तुत अङ्क के साथ 'जीवन सखा' ने अपने सातवें वर्ष में प्रवेश किया है। स्वास्थ्य सम्बन्धी हिन्दी का यह अपने तर्ज़ का अकेला ही मासिक पत्र है। यह 'व्यायाम अङ्क' अनेक उपयोगी लेखों से भरा हुआ है। जीवन में व्यायाम का कितना महत्व है और उसके क्या तरीक़े हैं, यह बात इस अङ्क से भलीभाँति जानी जा सकती है। सूर्य नमस्कार, त्राटक, मालिश, मोटापा, आसन, यौगिक क्रियायें, प्राणायाम आदि पर लेख महत्वपूर्ण हैं। 'जीवन सखा' वास्तव में जीवन सखा है।

आज—(साप्ताहिक), शिक्षा - विशेषाङ्क, वार्षिक मूल्य ५) रु०, इस प्रति का।)

हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के उपलक्ष में आज ने यह सर्वाङ्ग सुन्दर विशेषाङ्क निकाल कर हिन्दी साहित्य के इस क्षेत्र की बड़ी कमी को दूर किया है। प्रस्तुत अङ्क में ४० लेख हैं। मुख पृष्ठ पर महामना मालवीय जी का सन्देश है। 'प्राचीन भारत के तीन शिक्षा केन्द्र', 'उच्च शिक्षा की समस्या', 'देश विदेश की वैज्ञानिक संस्थायें', 'मूक बधिरों की शिक्षा', 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा' आदि लेख विचारोत्तेजक हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में प्रस्तुत अङ्क में प्रचुर सामग्री है। आज के सम्पादकत्रय यह सुन्दर विशेषाङ्क निकालने के लिये हमारी बधाई के पात्र हैं।

जीवन—(राष्ट्रीय साप्ताहिक) सम्पादक श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द', वार्षिक मूल्य ३) रु०, एक प्रति का -)

अब तक इस पत्र के २१ अङ्क निकल चुके हैं। हमने प्रत्येक अङ्क को ध्यान से देखा है। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि श्री 'मिलिन्द' जी का नाम सम्पादक की जगह देखकर—हमने पहले ही समझ लिया था कि पत्र के पीछे एक उद्देश्य और राष्ट्र सेवा है। हमारी कल्पना के अनुरूप ही पत्र निकल रहा है। उच्चकोटि की कविताएं, निर्भीक टिप्पणियाँ, सादुल्ला की चटपटी बातें आदि 'जीवन' की विशेषताएं हैं। हमें विश्वास है देशी राज्यों में 'जीवन' जीवन का सञ्चार करेगा।

दि स्टूडेंट—(सोवियत् नम्बर) सम्पादक श्री ललिताशङ्कर, वार्षिक मूल्य ३) रु०, इस अङ्क का ॥)

प्रस्तुत अङ्क नवम्बर, दिसम्बर महीने का सम्मिलित अङ्क है। सोवियत् रूस के महान बलिदान और आत्मत्याग ने सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। सोवियत् की महानता को ठीक ठीक समझने के लिये सहयोगी का यह अङ्क अत्यन्त उपयोगी है। सोवियत् के सम्बन्ध में इस अङ्क में १९ महत्वपूर्ण लेख हैं। सभी लेख मननीय और पठनीय हैं। ऐसा उपयोगी और सुन्दर विशेषाङ्क निकालने के लिये भाई ललिताशङ्कर हमारी बधाई के पात्र हैं। विद्यार्थी सम्प्रदाय के इस अकेले पत्र की दिन दिन बढ़ती की हम कामना करते हैं।

समालोचनार्थ प्राप्त पुस्तकें

१—दर्शन और जीवन— श्री सम्पूर्णानन्द,
२—आराधना— श्री रजनीश,
३—अमर सत्य— श्री दुर्गा दत्त त्रिपाठी,
४—शिक्षा में नई दृष्टि—आचार्य हरिभाई त्रिवेदी,
५—जीवनादर्श— श्री ज्योतिःशरण रतूड़ी,
६—रेल की रात (कहानी संग्रह) श्री बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

७—अवरुद्धा (कविता संग्रह) ,, श्री 'विनोद'
८—नवीन भारतीय शासन विधान—
श्री रामनरायण यादवेन्दु
९—औपनिवेशिक स्वराज्य— ,,
१०—समाजवाद और गांधीवाद— ,,
११—पाकिस्तान— ,,
१२—भारत में साम्प्रदायिक समस्या— ,,
१३—पांचवां कालम क्या है— ,,
१४—हिटलर की विचार धारा— ,,
१५—मरीचिका—श्री दयाल गिरि गोस्वामी
१६—श्रीमद्भगवद्गीता ,,
१७—अचल सुहाग श्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा
१८—विहाग (कविता संग्रह)—श्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा
१९—हिन्दुओं की पोथी—पं० देवीदत्त शुक्ल
२०—गांधी जी— श्री जगतराम दवे
२१—एक धर्म युद्ध—श्री महादेव हरिभाई देसाई
२२—संस्कृत का अध्ययन—डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद
२३—सयानी कन्या से—श्री नरहरि परीख और श्री महादेव देसाई
२४—The Minister as a King-Maker-
Dr. Ishwar Topa
२५—भगवान बुद्धावतार— पं० विश्वनाथ शास्त्री
२६—भजन शिरोमणि—श्री कमलनाथ अग्रवाल

अपनी बात

आभार प्रदर्शन

संस्कृति अङ्क के दूसरे भाग के लेखों के लिये हम शिकागो के डाक्टर मङ्गलमूर्ति और लन्दन के डाक्टर आनन्द के अत्यन्त आभारी हैं। विदेशी विद्वानों के इतने महत्वपूर्ण लेख हमें बग़ैर इन बन्धुओं की सहायता के, प्राप्त न हो सकते थे। जो कुछ इस अङ्क की सफलता है वह इन्हीं बन्धुओं को जानी चाहिये।

बन्धुवर 'निराला' जी की कविता ३ फरवरी को मिलने के कारण सब से अन्त में प्रकाशित होरही है। हम 'निराला' जी के कृतज्ञ हैं कि उनकी कृपा से हम इसी महीने में होने वाले सन्त रविदास के जन्मोत्सव के महान आयोजन में अपनी श्रद्धाञ्जलि हिन्दी के एक प्रतिनिधि कवि की वाणी द्वारा भेंट कर सके।

प्रयत्न करने पर भी यह अङ्क ५ फ़रवरी को निकल रहा है। देरी के कारण ही यह अङ्क बग़ैर सम्पादकीय टिप्पणियों के जा रहा है। मार्च से विश्व-वाणी पहली तारीख़ को प्रकाशित हुआ करेगी।

भूल सुधार—(संस्कृति अङ्क : पहला भाग)
संस्कृति अङ्क पहले भाग के मुखचित्र के परिचय की पहली पंक्ति के पहले शब्द 'प्रस्तुत' की जगह 'प्रस्तुत' पढ़िये।

इसी अङ्क में आचार्य धर्मानन्द कौसाम्बी कृत—'भगवान बुद्ध का कर्मयोग' (पृष्ठ संख्या ४८–५२) में हर जगह, 'श्रवण' की जगह 'श्रमण' पढ़िये।

इसी अङ्क में श्रीमती सत्यवती मल्लिक के लेख 'पाञ्चाल पथ' पृष्ठ संख्या ११६ में, लेख-परिचय की चौथी पंक्ति में 'रावलपिंडी' की जगह 'जम्मू' पढ़िये। पृष्ठ ११७ में 'वसुन्धरा के दृश्य' की जगह 'वसुन्धरा का हृदय' पढ़िये। पृष्ठ संख्या ११८ के दूसरे कालम की अन्तिम से एक लाइन पूर्व 'कौंसिल नाग' की जगह 'कौंसर नाग' पढ़िये। पृष्ठ संख्या १२० में, दूसरे कालम की २२ वीं लाइन में 'नीड़ खोलते' की जगह 'नीड़ खोजते' पढ़िये। लेख में जहां जहां 'कौंसिल नाग' आया है 'कौंसर नाग' पढ़िये।

इन भूलों के लिये हमें खेद है और हम लेखकों और पाठकों के निकट क्षमाप्रार्थी हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्वभारती पत्रिका

[साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी हिन्दी त्रैमासिक]

संसार की समृद्ध चिन्ताओं का विवेचन, रवीन्द्र-साहित्य का नियमित प्रकाशन, उत्कृष्ट कलाकारों की कृतियां और उनकी समीक्षा—पत्रिका की अपनी विशेषताएँ होंगी।

—प्रथम अङ्क जनवरी १९४२ में प्रकाशित—

विषय-सूची

एक संदेश ... ... महात्मा गान्धी
एशिया के जागरण में ही यूरोप का परित्राण है ... ... रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अहिंसात्मक साध्य और साधन ... ... डा० राजेन्द्र प्रसाद
शिल्पी रवीन्द्रनाथ ... ... नन्दलाल बसु
वे काम किये जा रहे हैं (कविता) ... ... रवीन्द्रनाथ ठाकुर
भारतीय संस्कृति के अध्ययन की एक उपेक्षित दिशा ... ... क्षितिमोहन सेन
'ख' आदि शून्यवाची शब्दों का आकाश के साथ ... ... डा० आनन्द कुमार स्वामी
दार्शनिक सम्बन्ध ... तथा वासुदेव शरण अग्रवाल
आधुनिक काव्य ... ... रवीन्द्रनाथ ठाकुर
युद्धोत्तरकालीन यूरोपीय उपन्यास में धर्म ... ... डा०, ए० एरन्सन
गुरुदेव के आंसू ... ... गुरुदयाल मलिक
पुरानी पोथियों की विदेश यात्रा ... ... प्रह्लाद प्रधान
'रस' का पुराना अर्थ ... ... हजारी प्रसाद द्विवेदी

और समीक्षाएँ

मूल्य प्रति संख्या--१॥) वार्षिक मूल्य--६)

विश्वभारती-संस्था के सदस्यों से ४) : (डाक-व्यय माफ़)

पत्र व्यवहार इस पते से करें :—

व्यवस्थापक विश्वभारती-पत्रिका'

हिन्दी-भवन शांतिनिकेतन (बङ्गाल)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दी-मन्दिर, इलाहाबाद को आप जानते ही हैं

अब आपको

उसका समस्त प्रकाशन

सस्ता साहित्य मण्डल से मिला करेगा

क्योंकि

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
के
समस्त प्रकाशनों का स्टॉक
मंडल ने मोल ले लिया है
अतः
'मंडल' के स्थायी ग्राहकों और
'जी० सा०' के ग्राहकों को
पौने मूल्य में मिल सकता है

(१) कनाट सर्कस, नई दिल्ली
(२) दरीबा कलाँ, दिल्ली
(३) अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ
(४) खजूरी बाज़ार, इन्दौर
(५) १३२।१ हरिसन रोड, कलकत्ता
(६) ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

हिन्दी-मन्दिर के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

काव्य-आलोचना — (१) कविता-कौमुदी : पहला (हिंदी), दूसरा (हिंदी) चौथा (उर्दू) सातवां (बंगला)
(२) तुलसीदास और उनकी कविता—दो भाग

काव्य (३) पथिक (४) मिलन (५) स्वप्न (६) मानसी आदि

नाटक (७) जयन्त (८) वफ़ाती चाचा (९) प्रेमलोक (१०) वानर संगीत आदि

कहानियां (११) तरकस (१२) वीथिका (१३) यूरोप की कहानियां आदि

जीवनियां (१४) अशोक (१५) चन्द्रगुप्त (१६) बुद्ध (१७) मुसलिम सन्त आदि

कोष (१८) हिन्दुस्तानी कोष (१९) पाकेट डिक्शनरी

इसके अलावा किसानोपयोगी, महिलोपयोगी, तथा बालोपयोगी साहित्य

कुल मिलाकर ११५ पुस्तकें !

विशेष सूचीपत्र मँगाकर देखिए ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दी-कथा-साहित्य में यदि

कलात्मक,

सरस,

सुरुचिपूर्ण

कहानियाँ पढ़ना चाहते हैं तो केवल

कहानी

ही पढ़िये। अन्य बाज़ारू कहानी-मासिक-पत्रों की भाँति आपको इसमें विकृत साहित्य न मिलेगा। यह पत्रिका आपके बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी को रुचिकर और स्वस्थ सामग्री देगी। फिर भी इसका मूल्य सबसे सस्ता है।

सर्व-प्रशंसित विशेषांक या साधारण अङ्क की एक प्रति मँगाकर देखें।

साधारण प्रति चार आना : विशेषांक १९३९ चार आना

ताज़ा विशेषांक आठ आना : ,, १९४० चार आना

वार्षिक तीन रुपये

कहानी की प्रतियाँ सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, अमीनुदौला पार्क, लखनऊ, चौक बनारस, तथा कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, इलाहाबाद से भी मिल सकेंगी।

व्यवस्थापक 'कहानी', बनारस कैंट।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का एकमात्र प्रतिनिधि

हंस

जिसका प्रत्येक अंक किसी भी पत्रिका के विशेषांक से श्रेष्ठतर साहित्य से परिपूर्ण रहता है—क्योंकि हंस का प्रत्येक अंक साहित्य के लिये नई प्रेरणाएँ और नये संदेश लाता है; हंस हिन्दी साहित्य का ऐसा सजग और जागरूक नेता है जिसके पथ-प्रदर्शन में उसके वर्तमान और भविष्य का निर्माण हो रहा है। और हिन्दी के सजग पाठक उसके प्रति ऐसी ही श्रद्धा रखते हैं इसका उत्कृष्ट प्रमाण है कि गत अक्टूबर में प्रकाशित

कविता-अङ्क

की एक भी प्रति नहीं बची। आगे के अंकों की भी इतनी मांग है कि नियमित न रहने वाले पाठकों को निराश रहना पड़ता है।

यदि आधुनिक साहित्य की प्रगति समझने के लिये हंस की प्रतियां रखने की अनिवार्यता बढ़ती जा रही है तो आप क्यों निराश हों ?

अपना चन्दा तुरन्त भेजकर ग्राहक क्यों नहीं बन जाते ?

हंस में आपको जो

- कलापूर्ण कहानियाँ,
- विवेचनात्मक लेख,
- सरस कवितायें,
- खरी आलोचनाएँ,

पढ़ने को मिलेंगी वे आप अन्यत्र नहीं पा सकते। प्रत्येक रचना हिन्दी साहित्य की प्रगति को एक क़दम आगे बढ़ाती है, और एक नई टेकनीक, नई शैली और नई दृष्टि की ताज़गी से पाठक का ज्ञान-वर्धन और मनोरंजन करती है।

वार्षिक मूल्य ६), एक अङ्क का ।|)

व्यवस्थापक, हंस, बनारस कैंट

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क़ुरान और धार्मिक मतभेद

लेखक

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

भूमिका लेखक

भूतपूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद

राष्ट्रपति ने इस सुन्दर पुस्तक में क़ुरान की आयतों का हवाला देकर अकाट्य दलीलों के साथ यह साबित किया है कि इसलाम का उद्देश्य प्रेम का प्रचार करना है, नफ़रत का प्रचार नहीं। मिलाना है, लड़ाना नहीं। प्रत्येक हिन्दुस्तानी को, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इस पुस्तक का ज़रूर अध्ययन करना चाहिये।

मूल्य डाक ख़र्च सहित केवल एक रुपया

शीघ्रता कीजिये, केवल थोड़ी-सी प्रतियाँ और बची हैं।

मैनेजर, विश्ववाणी बुकडिपो, साउथमलाका, इलाहाबाद

प्रदीप

जनता के जीवन - अधिकार का पहरेदार

बीसवीं - सदी - राजनीति का हिन्दुस्तानी मासिक

योरोप हिटलर का आखेट पड़ा है

एशिया पर महासागर की अँधियारी भूल आयी

हिन्दुस्तान में जीवन-मौत के सवाल खड़े हैं

आपने ऐसी हालत में घर और बाहर की सही-पूरी जानकारी के लिये क्या प्रबन्ध किया है ?

आपने, जो आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं ! आज़ादी की ओर बढ़ रहे हैं !!

आज़ादी असम्भव नहीं, इन्सान का सहज अधिकार है, पर हमें उसके लिये तय्यार भी तो होना चाहिए।

हम क्या हैं ? कैसे हैं ? हमारी ज़रूरतें किस तरह की हैं ? कैसी आज़ादी उन्हें पूरा कर सकेगी ?

और कैसे वह आज़ादी हम पा सकेंगे ? अपने पास रख सकेंगे ?

—हमें यह सब अब समझना ही होगा—

प्रदीप हिन्दुस्तानी जनता की

यही सब जरूरतें पूरा करने की एक अनूठी कोशिश है

क्या आप उसकी एक कापी ढूंढकर नहीं पढ़ेंगे ?

सम्पादक : जगदीश, एम० ए०　　प्रकाशक : प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद, यू० पी०

वार्षिक : पांच रुपया　　आठ आना प्रति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकाशित हो गई

भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक—मनोहरलाल मिश्र, एम० एस-सी०, एल-एल० बी०

सिरेमिक विभाग, काशी विश्वविद्यालय

प्रस्तुत पुस्तक श्री मिश्र जी के बेहद परिश्रम और खोज का परिणाम है। भारतीय चीनी मिट्टी के व्यवसाय पर इतनी सुन्दर और महत्वपूर्ण पुस्तक हिन्दी में कोई दूसरी नहीं है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं, यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी के व्यवसाय में लगे हुए हर कारीगर, कुम्हार और दूसरे व्यवसाइयों के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। २९० पृष्ठों की इस सजिल्द पुस्तक का मूल्य है केवल १॥) रु०

मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

देशी राज्यों की चहारदिवारी से निकलने वाला

सर्व प्रथम लोक प्रिय राष्ट्रीय साप्ताहिक

प्रजा सेवक * **प्रजा सेवक** * **प्रजा सेवक**

अपने ढंग का निराला राष्ट्रीय पत्र है,

इसके सम्पादक हैं तपे हुए राष्ट्रसेवी और कर्मठ सेवक

पं० अचलेश्वरप्रसाद शर्मा

यदि आप राजपूताने के देशी राज्यों में मूक प्रजा की वर्तमान स्थिति, जागीरदारों के अवांछनीय कारनामे तथा दूसरी अन्य अजीबोगरीब रियासती बातें जानना चाहते हैं, तो शीघ्र ४) रु० भेजकर—

आज ही "प्रजा सेवक" के ग्राहक बन जाइये

प्रत्येक राजस्थानी-मारवाड़ी को, चाहे वह कहीं भी रहता हो, केवल "प्रजा सेवक" द्वारा ही अपने देश के सभी समाचार मिल सकेंगे।

यदि आप व्यापार करते हैं !

तो अपने व्यापार का विज्ञापन "प्रजा सेवक" में अवश्य दें। यह हज़ारों की संख्या में सभी रियासतों में जाता है और लाखों आदमियों द्वारा पढ़ा जाता है। आपके व्यापार की वढ़ोतरी के लिए यह सर्वोत्तम साधन है। विज्ञापन के रेट मँगाइये।

मैनेजर—"प्रजा सेवक" कार्यालय, गान्धी बाज़ार, जोधपुर।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हो गई

हज़रत मुहम्मद और इसलाम

लेखक 'भारत में अंगरेज़ी राज' के रचियता

पंडित सुन्दरलाल

लगभग २५० पृष्ठ की सजिल्द, सचित्र और एण्टीक काग़ज़ पर छपी इस सरल और सुन्दर पुस्तक का मूल्य

केवल डेढ़ रुपया : डाक खर्च अलग

विश्ववाणी के स्थायी ग्राहकों को पुस्तक केवल पौने मूल्य में

[डाक खर्च छै आना अलग]

१५ वर्षों की लगातार खोज, और मेहनत से सैकड़ों पुस्तकों के अध्ययन के बाद यह पुस्तक तय्यार हुई है। पुस्तक में अरब का भूगोल और इतिहास, प्राचीन अरबों के सामाजिक जीवन, उनके धार्मिक विश्वास, उनकी पूजा के तरीक़े, मुहम्मद साहब का जन्म, इसलाम का प्रचार, रोम और ईरान के साथ टक्कर आदि विषयों का अत्यन्त सरल और चित्ताकर्षक वर्णन है। चित्रों और नक़्शों से पुस्तक की उपयोगिता बेहद बढ़ गई है। पुस्तक इतने आकर्षक ढङ्ग से लिखी गई है कि प्राचीन घटनाएं मानों क़ब्र से निकलकर बोलने लगती हैं।

काग़ज़ की तंगी से पुस्तक का दूसरा संस्करण लड़ाई के बाद निकलेगा।
जल्दी से जल्दी अपना आर्डर भेजिये वरना प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।
इसी पुस्तक का उर्दू संस्करण १ फ़रवरी को प्रकाशित होगा।

मैनेजर, विश्ववाणी बुक-डिपो

साउथ मलाका, इलाहाबाद

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद।